सुमित्रानन्दन पन्त

और उनका

"आधुनिक कवि"

श्री तारकनाथ् बाली एम० ए०
आगरा कालिज, आगरा ।

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

दो शब्द

श्री तारकनाथ बाली की पुस्तक सुमित्रानन्दन पन्त पर पहली बार व्यापक दृष्टिकोण और निष्पक्ष मूल्यांकन को महत्त्व देती है, क्योंकि अब तक की आलोचनाएँ अपने विशेष पूर्वाग्रहों को लेकर लिखी गई हैं। यही कारण है कि इस रचना में बौद्धिक जागरूकता ही नहीं, विचारों को विकासपथ पर ले जाने वाली चेतना भी मिलती है।

सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी काव्य का एक स्तम्भ है। उसका अभी मूल्यांकन नहीं हुआ। केवल उसके प्रति नवीनता का चमत्कार ही देखना, वास्तव में उसके वाह्यरूपमात्र को देखना है, जबकि हमें उसके काव्य की आन्तरिक शक्ति को देखना है, देखना है उस सांस्कृतिक धरोहर को जो वह अतीत में से छान कर लाया है और वर्त्तमान से उसका तादात्म्य करके, अपने ही ढङ्ग से भविष्य के लिए प्रस्तुत कर रहा है। प्रश्न यह तो एक पक्षमात्र है कि आलोचक उसके निर्दिष्ट पथ को स्वीकार करता है या नहीं, प्रश्न यह है कि जिस गरिमावृत्ति को पन्त ने प्रस्तुत किया है वह मानव के लिए कितनी रसवन्ती है, कितनी सप्राण है और उसमें मानसिक स्तर की गहराइयों में हृदय को छूने की कितनी शक्ति है।

श्री तारकनाथ बाली ने पन्त के दो रूप स्वीकार किए हैं कि पन्त में बुद्धि और भाव दो पक्ष हैं और दोनों का ही उसमें साधारणीकरण हुआ है, ऐसे ही जैसे कि तुलसी और कबीर में। यह निस्सन्देह एक नया दृष्टिकोण है और वस्तुतः यह रसवाद के आधार साधारणीकरण को शास्त्रीय पक्ष में व्यापक बनाने का ही प्रयत्न नहीं, वरन् उनकी एक नयी देन भी है। मेरे मतानुसार तो यह द्वन्द्व रसवाद में पुराना है। अपने शब्दों में कहूँगा कि श्री तारकनाथ बाली ने रसवाद के आधार में केवल व्यक्ति को न लेकर, समाजपक्ष की भी स्वीकृति दी है, क्योंकि अन्ततोगत्वा वे भी मानवतावाद को ही सिसृक्षु की चेतना का मूल मानते हैं और इस प्रकार वे भी वर्त्तमान के बौद्धिक और

हृदयगत द्वन्द्वों को मिटाकर नये मानव को सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

आदर्श और यथार्थ को उन्होंने अपने-अपने अन्योन्याश्रित पक्ष में प्रगति माना है, और मेरे मतानुसार इस प्रकार उन्होंने इस दूसरी नयी बात को कहा है प्रगति मनुष्य के घिराव में नहीं, उसके व्यापकत्व में भी है।

उन्होंने पहली बार सुमित्रानन्दन पन्त पर ठोस विषय का प्रतिपादन किया है। अरविन्दवाद के प्रभाव को इतनी समीचीनता से पन्त के साथ रखकर नहीं देखा गया था।

मैं समझता हूँ हिन्दी में यह पुस्तक अपना विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि पन्त की विचारधारा की शृङ्खला का एक आभास आपको यहाँ मिलेगा, और उसमें पन्त के युगोचित मूल्यांकन का प्रयास भी स्पष्ट दिखाई देगा।

—रांगेयराघव

भूमिका

पन्त की अनेकरूप कला और बहुविध चिन्तन का 'परिदर्शन' मात्र करा देना ही प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। स्थान-स्थान पर पंत की मान्यताओं की यथोचित मीमांसा और आलोचना भी की गई है। 'चिन्तन' का विस्तार अधिक है। पन्त को समझने के लिए यह आवश्यक था।

इस पुस्तक में आलोचना-जगत के सामने कुछ नई मान्यताएँ रखी गई हैं। 'बुद्धिगत साधारणीकरण' की बात से अनेक विद्वान चौंकेंगे। किन्तु बुद्धिगत साधारणीकरण की कसौटी पर केवल आधुनिक साहित्य ही नहीं, कबीर और तुलसी की अनेक रचनाओं का भी सही मूल्यांकन करना आवश्यक है। 'रामचरितमानस' के उपदेशात्मक खण्डों और कबीर की साखियों के साहित्यिक उत्कर्ष का कारण तुलसी और कबीर के सिद्धान्तों का बुद्धिगत साधारणीकरण ही है।

बुद्धिगत साधारणीकरण की स्थापना भावगत साधारणीकरण को उखाड़ने के लिए नहीं की गई है। दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं पूरक हैं। यदि कोई यह पूछे कि दोनों सिद्धान्तों में से कौनसा अधिक महत्त्वपूर्ण है तो मैं उनसे यह पूछूँगा कि विनय-पत्रिका का 'केशव कहि न जाय का कहिए' पद अधिक महत्त्वपूर्ण है या 'सुनि सीतापति सील सुभाउ' पद अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा कबीर की साखियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं या उनके पद?

'यथार्थ, आदर्श और प्रगति' में मैंने तीनों प्रमुख वादों की नई विवेचना की है। इन वादों को अलग-अलग कटहरे समझना मुझे अवैज्ञानिक प्रतीत हुआ।

पन्त साहित्य के आलोचनात्मक और कलात्मक अध्ययन के लिए यह आवश्यक था कि कवि की नवीन रचनाओं के विषय में भी प्रकाश डाला जाए। 'चिन्तन' में मैंने पन्त के नवीनतम दृष्टिकोण का विशद स्पष्टीकरण और उचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है।

मैंने पन्त की विराट समन्वय भावना पर भी पूर्ण प्रकाश डालने की चेष्टा की है। एक विशेष बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह समन्वय परवर्ती काव्य में नहीं उत्तरा की भूमिका (शब्द के दोनों अर्थों में) है। पन्त ने स्वयं लिखा है कि उत्तरा में तो स्वर्ण-चेतना की दिव्य क्रीड़ाओं को संकेतात्मक कला में मूर्तिमान करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का भूमिका भाग 'सुमित्रानन्दन पन्त' नाम से पृथक भी छपा है।

अन्त में मैं उन सब विद्वानों का आभार स्वीकार करता हूँ जिनके उद्धरण मैंने पुस्तक में दिए हैं।

रक्षाबन्धन
सं० २०१२
माधव आश्रम, आगरा छावनी
३–८–५५

—लेखक

अनुक्रमणिका

आह्वान

आओ हे दुर्धर्ष वर्ष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन

श्री ममतामयी
मा को

सुमित्रानन्दन पन्त

अभिव्यञ्जना-पद्धति

भाव की तीव्रता भाषा की सस्वरता में, सघनता शक्तिमत्ता में और विशदता प्राञ्जलता में स्फुट होती है। यह सत्य भाव और भाषा के अभेद की ही प्रतिष्ठा करता है। सामान्य व्यक्ति के लिए जो मनोवेग मात्र हैं, जिन्हें कि वह वाणी में मुखर करने में असफल है, वही कवि के सुरीले भाव हैं। एक अँग्रेज विद्वान का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि कवि भावाभिव्यञ्जना के लिए शब्द ढूँढ़ने नहीं जाता, वरन् उसके भाव उन शब्दों में ही रहते हैं, जो कविता बनकर फूट निकलते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसके उत्तर में हम कवि की प्रतिभा और उसकी साधना या अभ्यास का ही नाम लेते हैं।

भाषा और भाव में, कलापक्ष और भावपक्ष में अभेद होने पर भी आलोचक उनका अलग-अलग विवेचन करते हैं। यह केवल सुविधा की बात है। वैसे तो साहित्य एक अखण्ड सृष्टि है और उसे शीर्षकों और उपशीर्षकों के कटहरों में बाँधकर सजाना अवैज्ञानिक है, किन्तु साहित्य में सरल अध्ययन के लिए इसके अतिरिक्त और उपाय भी क्या है? कौन यह मानने को प्रस्तुत न होगा कि साहित्य के चारों तत्त्वों—भाव, कल्पना, शैली और विचार—की सीमाएँ भौगोलिक सीमाओं सी निर्दिष्ट नहीं हैं।

'पल्लव' की भूमिका

'पल्लव' की भूमिका में कवि ने स्वयं ही काव्यके बहिरंग पर अपने विचार अत्यन्त काव्यात्मक शैली में प्रकट किए हैं। पन्त की अभिव्यञ्जना-पद्धति की सम्यक् आलोचना करने के लिए उनका सामान्य ज्ञान अनिवार्य है। नीचे उन्हें संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है—

(क) **भाषा का सामान्य विवेचन**—भाषा के सामान्य विवेचन में कवि ने शब्द और अर्थ के अभेद की ओर तथा युग की चाल के अनुसार भाषा की प्रगति की ओर संकेत किया है। इसमें से पहली बात ऊपर पल्लवित की जा चुकी है। रही दूसरी बात। सो भाषा एक सामाजिक संस्था है। समाज के

सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ भाषा की शक्ति, वाक्य-विन्यास, शब्दकोष आदि में परिवर्तन हुआ ही करता है। इसका इससे अधिक विस्तृत विवेचन भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में मिलेगा।

इसके पश्चात् कवि ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली के विरोध एवं खड़ी-बोली की आपेक्षिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। पन्त के अनुसार ब्रज-भाषा में कविता करने में दो दोष हैं। प्रथम यह कि ब्रज-भाषा में खड़ी-बोली जैसी शक्ति नहीं है। वह निष्प्राण है। और इसी कारण उसमें विभिन्न विषयों का कलात्मक स्फुरण असम्भव है। द्वितीय, यह एक बड़ी विडम्बना होगी यदि हम सोचें और बोलें एक भाषा में तथा लिखें दूसरी भाषा में।

(ख) कविता की भाषा की योग्यता—इसके अतिरिक्त कवि ने कविता की भाषा के काम्य गुणों के विषय में भी अपना मत प्रकट किया है।

कविता की भाषा का प्राण **राग** है। राग का अर्थ है शब्दों का पारस्परिक आकर्षण या सामरस्य। कविता का प्रत्येक शब्द अपने साथी के लिए अजनबी न हो, वह अपनी सत्ता सब से अलग न दिखाता हो, वह अन्य शब्दों के स्वर और सामर्थ्य में घुल-मिल कर एक प्राण हो जाए। एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले अनेक शब्द होते हैं। किन्तु प्रस्तुत के वर्णन में उनमें से किस का चयन करना होगा, यह अन्य शब्दों से उसके सामरस्य और भाव से उसके स्वरैक्य पर अवलम्बित होगा। कवि ने ऐसे अनेक उदाहरण दिए हैं, जिनमें पर्यायवाची शब्दों से भी वह भिन्न-भिन्न गुणों से युक्त अर्थ का बोध करता है। 'अनिल' में उसे कोमल शीतलता का अनुभव होता है, और 'वायु' में निर्मलता और लचीलेपन का, 'प्रभञ्जन' शब्द करता हुआ, बालू-पत्रों को उड़ाता ले चलता है, 'श्वसन' में सनसनाहट है, 'पवन' में कवि को ऐसे लगता है जैसे हवा रुक गई हो, 'समीर' लहराता हुआ बहता है।

कविता के लिए **चित्र-भाषा** और **चित्र-राग** की अपेक्षा होती है। चित्र-भाषा से कवि का अभिप्राय उस भाषा से है जिसका प्रत्येक शब्द सस्वर हो। उसका अर्थ उसमें से वैसे ही फूटा पड़ता हो, जैसे सेब की लालिमा बाहर छिटक पड़ती है। किन्तु शब्द की अर्थोद्बोधन की इस शक्ति की परख के लिए कवि का हृदय चाहिए। सामान्य पाठक इसे न देख पाएगा। किन्तु

यह शक्ति पाठक को प्रभाव की सघनता में लय कर देगी। पाठक के लिए इसकी यही उपयोगिता है।

भाव और भाषा के सामञ्जस्य को ही कवि चित्र-राग कहता है। वस्तुतः चित्र-भाषा और चित्र-राग में कोई भेद नहीं। विवेचन में भेद इसलिए पड़ जाता है कि चित्र-भाषा में कवि प्रत्येक शब्द और उसकी निजी शक्ति के सामरस्य की बात कहता है और चित्र-राग में भाषा और भाव के समग्र स्वरैक्य की ओर दृष्टिपात करता है।

भाषा का ऐसा ही विवेचन संस्कृत के प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गुण (माधुर्य्य, ओज और प्रसाद) तथा रीति (वैदर्भी, गौणी, पाञ्चाली) के सामञ्जस्य में मिलता है।

कविता के लिए अलंकार वहीं तक आवश्यक हैं जहाँ तक वह विषय को उदात्त रूप में प्रकाशित करने के लिए सहायक हों। कविता-कामिनी के लिए अलंकार भार-स्वरूप नहीं हार-स्वरूप हों।

खड़ी-बोली की कविता के लिए कवि के अनुसार मात्रिक छन्द ही अधिक उपयुक्त हैं। काव्य-संगीत के माधुर्य्य को सजाने के लिए उक्त छंद एक प्रधान साधन है। इसके अतिरिक्त स्वर ही काव्य-संगीत के 'मूल तन्तु' हैं। व्यञ्जनों का संगीत में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। तुकान्त कविता का संगीत विशेष मोहक होता है। अतुकान्त कविता में माधुर्य्य की मोहिनी नहीं 'कर्म का वेग' मिलता है। मुक्त छन्द वही सफल है जो लय से नियन्त्रित हो।

× × ×

छायावाद

कवि की कलापक्ष सम्बन्धी मान्यताओं को संक्षेप में स्पष्ट करने के पश्चात कवि के छायावादी रूप पर विचार करेंगे।

छायावाद की परिभाषा और स्वरूप के विषय में बड़ा भारी मतभेद है। किन्तु उन सब मतों का साङ्गोपाङ्ग व्योरा देना इस पुस्तक की सीमा से बाहर की बात है। शुक्लजी ने छायावाद को दो रूपों में ग्रहण किया है। अपने संकुचित रूप में वह एक शैली विशेष है जिसकी विशेषताएँ लाक्षणिक

वैचित्र्य, प्रतीक विधान, विशेषण-विपर्यय, विरोध-चमत्कार, मानवीकरण, अन्योक्ति-विधान, हैं। व्यापक अर्थ में छायावाद का प्रयोग रहस्यवादी गीतों के लिए भी किया जाता है।

ऊपर गिनाई हुई छायावादी शैली की सभी विशेषताएँ पन्त में मिलती हैं।

(१) लाक्षणिक वैचित्र्य—

"सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुञ्जार,"
(मौन-निमन्त्रण)

(भँवरे ही गुञ्जार बन जाते हैं = भँवरे गुञ्जारने लगते हैं)

(२) प्रतीक विधान—

"उषा का था उर में आवास"
('आँसू' की बालिका)

(उषा = दिव्य माधुर्य्य)

"सरल भौंहों का शरदाकाश
घेर लेते घन, घिर गम्भीर"
(अनित्य जग)

(घन = चिन्ताएँ)

(३) विशेषण विपर्यय—

"शान्त, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल!
अपलक, अनन्त, नीरव भूतल!"
(नौका विहार)

(शान्त ज्योत्सना = रात्रि के समय मनुष्य, पशु, पक्षी सभी शान्त हैं। नीरव-भूतल = धरती शान्त नहीं, धरती के रहने वाले शान्त हैं।)

(४) विरोध चमत्कार—

"नीरवतार" उषाकाल की अनिर्वचनीय शान्ति और हर्ष
"गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण;" (स्नेह)

(व्याख्या के लिए देखिए टीका)

(५) मानवीकरण— ("चाँदनी" कविता)

(६) अन्योक्ति— ("पतझर" कविता)

× × ×

अलङ्कार

पन्त की कविताओं में अनेक अलङ्कारों का अत्यन्त काव्योचित प्रयोग हुआ है। सबका गिनाना यहाँ लक्ष्य नहीं है। केवल साँग रूपक अलंकार के प्रयोग के विषय में कुछ कहना है।

प्रायः सभी आधुनिक कवियों में यह देखा जाता है कि अलङ्कारों के प्रयोग में भी वह शास्त्रीय-नियमों का उलंघन करते हैं। दूर तक चलने वाले अलङ्कारों में साँग रूपक मुख्य है। किन्तु इसका आद्योपान्त सफल निर्वाह आधुनिक युग के कवियों में बहुत कम मिलता है। कभी उपमा से आरम्भ करके बीच में रूपक का रूप खड़ा कर देते हैं, और कभी आरम्भिक रूप साँग-रूपक को अन्त में उपमा या उत्प्रेक्षा में बिगाड़ डालते हैं।

उदाहरण के लिए—

"रंगीले-गीले फूलों—से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलों से
खेलती थी तरङ्ग-सी नित।"

पहली दो पंक्तियों में उपमा है, बाल्य-सरिता' में 'रूपक' और 'फूलों' में रूपकातिशयोक्ति।

इसी प्रकार—

"खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यों बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झूला झरनों का झलमल हार···

प्रथम पंक्ति का रूपक बाद में 'का' जोड़ देने से खण्डित हो जाता है। यह तथ्य भी कवियों की स्वछंदता की प्रवृत्ति का द्योतक है।

अब साम्य-मूलक अलंकारों का थोड़ा सा विचार करेंगे। साम्य तीन प्रकार का हो सकता है। रूप या आकार का साम्य सदृश्य कहलाता है। गुणों का साम्य साधर्म्य कहलाता है और तीसरा है शब्द-साम्य जैसा कि श्लेष में मिलता है। साधर्म्य के आधार पर खड़े किए गए अलंकारों में अनुभूति की तीव्रता मिलती है। किन्तु विशुद्ध सादृश्य को लेकर चलने वाले अलंकारों में प्रायः अनुभूति का अभाव रहता है। पन्त ने जहाँ साधर्म्य को आधार बनाया है, वहां कल्पना बहुत रसीली हो गई है। जहाँ कवि की दृष्टि अनुभूति की ओर नहीं रही और वह आकार-साम्य पर चलने वाली कल्पना में उलझ गया है, वहाँ प्रभाव भी क्षीण हुआ है और दुरूहता भी आ गई है। उदाहरण के लिए चाँदनी को 'शब्द मुक्त शुचि आशय' या "एक अनन्त प्रतीक्षा" आदि कहना। यहाँ कवि केवल चाँदनी की नीरवता का वर्णन करने के लिये ये अप्रस्तुत लाता है जिनमें मूकता है। किन्तु प्रस्तुत-अप्रस्तुत में प्रभाव—साम्य नहीं है। फल स्वरूप ये कल्पनाएँ नीरस और दुरूह हो गई हैं।

× × × ×

विकास

समय परिवर्तन के साथ-साथ चेतना की साधना के अनुरूप ही मनुष्य के दृष्टिकोण में अन्तर होता जाता है। पन्त अपने युग की सभी विचार-धाराओं से प्रभावित हुए इस प्रभाव का विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ केवल यह देखना है कि विचार-जगत के विकास के साथ-साथ कवि के कला-पक्ष में क्या अन्तर आया है।

"वीणा" में छायावादी, शैली के कुछ नैसर्गिक प्रयोग पाए जाते हैं किन्तु वे बहुत कम हैं—'चपला-चुम्बित अभिवादन आदि। उनका चरम विकास 'पल्लव' में पाया जाता है। ग्रन्थि में एक कथा-धारा चलती है। अतः उसमें कई छन्द ऐसे है जो अपने अन्वित रूप में अलंकृत गद्य के नमूने बन जाएंगे।

उदाहरण के लिये पंक्तियाँ देखिए—

> इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
> थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,

लाज से रक्तिम हुये थे—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।'

यदि "थे पड़े मेरे नयन" का मेरे नयन पड़े थे करके अन्वय कर दिया जाए तो यह चारों पंक्तियाँ काव्यात्मक गद्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण बन जाएँगी। इस का पहला प्रधान कारण तो यही है कि ग्रन्थि में एक कथा चलती है और दूसरा यह कि अभी कवि की साधना विकासगामी है।

विशेष रूप से पल्लव की कविताओं में (आँसू, उच्छ्वास, पर्वतप्रदेश में पावस आदि में) एक ही कविता में कवि ने विभिन्न मात्रा वाली पंक्तियाँ रखी हैं। यथा—

नवोढ़ा वाल—लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रूक कर
सरकती है सत्वर।

मात्राओं के घटाने—बढ़ाने का मुख्य प्रयोजन है वर्ण्य-वस्तु का चित्र उद्भासित करना। ऊपर के छन्द में प्रथम तीन पंक्तियों के पढ़ते समय जिह्वा को ठहराना पड़ता है—मानो लहर ठहरी हुई हो। अन्तिम पंक्ति उसी शीघ्रता से पढ़ी जाती है, जिस शीघ्रता से लहर सरकती है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे प्रयोग अत्यन्त कलात्मक हैं और पंत को इनमें विशेष सिद्धि प्राप्त हैं।

"पल्लव" तक कवि का विषय रहा प्रेम। उसका ध्यान अन्य विषयों पर बहुत कम गया। गुञ्जन में भी प्रधान विषय तो प्रेम ही रहा किन्तु "तप रे मधुर-मधुर मन" 'प्रर्थना' आदि कविताओं में कवि की दृष्टि जीवन की ओर गई तथा 'एक तारा' एवं 'नौका-विहार' में दर्शन की भी छाया है। विषय परिवर्तन के साथ-साथ शैली में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। भाषा में क्षिप्रता और माधुर्य्य के साथ-साथ शक्ति, गम्भीरता और संयम भरने की भी आवश्यकता हुई। छायावाद का गहरा रंग हल्का हो गया। 'युगान्त' में और अधिक हल्का हुआ 'युगवाणी' और "ग्राम्या" तक आते-आते प्रायः समाप्त हो गया।

पन्त के काव्य-विकास में छायावाद के ह्रास का कारण था कवि का

मानव-क्षेत्र में प्रवेश। आधुनिक कवि की भूमिका में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि छायावादी काव्य की शैली में जीवन की विविधता को मुखर करने की शक्ति नहीं थी। छायावादी शैली से ही नहीं कवि अलंकारों से भी पराङ्मुख होने लगा। "नवदृष्टि" (युगवाणी) में वह कहता है :—

"खुल गए छन्द के बन्ध, प्रास के रजत पाश,
अब गीत, मुक्त, औ युगवाणी बहती अभ्यास।

और वाणी (ग्राम्या) में—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार॥'

कवि की व्यक्तिगत प्रेम की पीर छूट गई, छायावादी कोमल शैली छूट गई इतना ही नहीं भाव और अलंकार भी छूट गए। कवि विचारशील बन गया। कविता में विचारों को बाँधने की उत्सुकता हुई। अलंकार के भार को हटाने की इच्छा हुई।

कवि अपनी वाणी को न तो पूर्णरूप से विचारों से भर सका और न ही पूर्णरूप से अलंकारों से खाली कर सका। 'ग्राम चित्र' आदि कविताओं में भाव भी मिलते हैं और तो क्या 'वाणी' की पांचवीं और छटी पंक्तियों में ही अलंकार का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है—'···शब्द के पंख मार कर सको सुदूर मनो नभ में जन के विहार।'

इतना ही नहीं ग्राम्या में ही 'ग्राम चित्र' के आरम्भ में प्रकृति का मानवीकरण मिलता है। 'याद और गंगा में छायावादी शैली के प्रयोग मिलते हैं। किन्तु यह सत्य है कि अधिकाँश रचनाएँ जन-भाषा और जन-कल्पना के पास ही पास हैं।

ग्राम्या के पश्चात् कवि का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण फिर बदलता है और शैली में भी परिवर्तन होता है। ऐश्वर्य शाली प्रतीक योजना खड़ी की जाती है। मानव के हृदय जगत का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है। उत्तरा तक आते-आते शैली बिल्कुल बदल गई है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि 'उत्तरा' की शैली पल्लव की शैली की अपेक्षा अधिक सशक्त, सूक्ष्म और सांकेतिक है। ऐसा विषयानुरूप ही है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति एक विशद चिरंतन काव्य है। पन्त के लिए इस प्रकृति-काव्य का रूप भी सौन्दर्य है और प्राण भी। प्रकृति का स्थूल सौन्दर्य कवि के हृदय की सुषमा से मिल एक प्राण हो जाता है। और तब यह जानना कठिन हो जाता है कि हृदय ने प्रकृति से क्या लिया और क्या दिया।

प्रकृति के साथ पन्त का घनिष्ठ सम्बन्ध बचपन से ही रहा। उसके सौंदर्य ने सरल बालक—बाद के कवि—को मुग्ध किया, उसकी विशदता ने उसके हृदय पर गहरी छवि अङ्कित करदी, उसके व्यापारों ने कवि को अपने में लीन करने के लिए उकसाया। पंत की चेतन घंटों तक प्रकृति की सुषमा—जाली में उलझी रहती थी। उसके रूप ने चेतना पर एक अमिट प्रभाव छोड़ा जो कवि की रचनाओं में सौन्दर्य की रजत-राशि के रूप में बिखर गया।

प्रकृति के रूपों से भी अधिक कवि प्रभावित हुआ उसके व्यापारों से जिन्होंने उसके हृदय को प्रकृति की सजीवता का मूक सन्देश दिया। कवि प्रकृति को अपने से अलग विशिष्ट सत्ता में साकार एक नारी के रूप में देखने लगा। प्रकृति से तादात्म्यानुभूति की सरल कामना भी कई पंक्तियों में प्रतिबिम्बित हुई है। वहाँ कवि अपने को भी नारी के रूप में देखता है। 'वीणा' में यह प्रकृति बहुत स्पष्ट है जहाँ सर्वत्र कवि ने अपने को एक अबोध बालिका के रूप में चित्रित किया है। कवि को यह मानने में कोई संकोच नहीं कि प्रकृति-प्रेम ने जहाँ कवि के हृदय में सहृदयता की ज्योति बिखेरी, वहाँ उसे जन जीवन से पराङ्मुख भी भर दिया।

प्रकृति का चित्रण तीन रूपों में किया जाता है—आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में और अलंकार रूप में।

(१) आलम्बन रूप—इधर कुछ विद्वानों ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप से किया ही नहीं जा सकता। क्या यह सच है ? इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें काव्य क्षेत्र के दूसवे

पहलू जीवन क्षेत्र के अनुभव को परखना होगा। जीवन और काव्य एक चेतना के दो पहलू हैं। दोनों में ही चेतना का उतार चढ़ाव प्रकाशित होता है। जीवन के नित्य अनुभव में हम किसी हंसते हुए फूल को देखकर लहलहा उठते हैं, झाड़-झंखाड़ों को देखकर बुद्धि में भी अस्पष्ट उलझनें पड़ जाती हैं, मेघ-गर्जन से भय या उत्साह का उद्रेक होता है। यहाँ क्या प्रकृति के विविध रूप ही हमारे भावों को जगाने वाले कारण नहीं हैं ? यदि हैं, तो काव्य क्षेत्र में भी प्रकृति का आलम्बन रूप में ग्रहण योग्य है, इतना ही नही स्पृहणीय भी है। जो तथ्य जीवन में सत्य है, वह काव्य कल्पना में भी सत्य है।

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या पन्त ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है ? प्रस्तुत संग्रह की प्रथम कविता 'मोह' में कवि स्पष्टतः प्रकृति-प्रेम को नारी के मोह से श्रेष्ठ बतलाता है और उसी में लीन होने की कामना करता है। किन्तु अन्य रचनाओं में ऐसा नहीं है। "पर्वत प्रदेश में पावस" में पावस ऋतु का वर्णन आलम्बन स्वरूप कहा जा सकता है। "आँसू से भी" झिरददन्तों से उठ ऊपर—"आदि छन्द भी प्रकृति के आलम्बनत्व को स्वीकार करते दिखाई देते हैं। किन्तु हम इन वर्णनों को शुद्ध आलम्बन स्वरूप चित्रण नहीं मान सकते। "पर्वत प्रदेश के पावस" का अन्तिम छन्द और "आँसू" से कई छन्द प्रकृति की गौणता का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। इन दोनों कविताओं में प्रकृति प्रेम में वियोगी का प्रेम उसी प्रकार घुलामिला हुआ है जिस प्रकार कण्ठ-स्वरों में वीणा की मधुर झंकार। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं। किन्तु साथ-ही-साथ कवि की मनोवृत्ति का भी पूर्ण परिचय देते हैं। कवि को प्रकृति से अगाध प्रेम है, किन्तु वह अपने वियोगी हृदय को कहां छिपा दे ? वह भी बीच-बीच में कूक उठता है। अतः यह सिद्ध है कि कवि को प्रकृति से अनन्य प्रेम है, उसने उसकी विशदता का सूक्ष्म पर्यालोचन किया है, किन्तु वह उसके मृदुल ऐश्वर्य में हृदय के वियोग को पूर्णतः भुला नहीं पाया।

"झंझा में नीम" 'चांदनी' आदि रचनाओं का विवेचन आगे किया जाएगा।

(२) उद्दीपन रूप—यह जीवन का एक शाश्वत सत्य है कि दुख में

सारा संसार दुखी और सुख में सुखी दिखाई देता है। अपने भावों की यह विश्वजनीन अभिव्यक्ति की इच्छा काव्य-प्रेरणा का एक प्रधान तत्व है। जब मनुष्य दुखी होता है तो पुष्पों का हास उच्छ्वास में बदल जाता है, तारों की ज्योति म्लानता में परिवर्तित हो जाती है, और वर्षा दुख के आँसुओं का रूप धारण कर लेती है। प्रश्न यह होता है कि मनुष्य क्यों अपने भाव की सार्वभौम अभिव्यक्ति की कामना करता है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। और वह है चराचर की गूढ़ एकता। एक ही तार चराचर के हृदयों में बिंधे हुए हैं, उन्हें एकता में बाँधे हुए हैं। एक हृदय की झंकार समस्त ब्रह्माण्ड की बीणा में लहरें उत्पन्न कर देती है। अभेद का पर्दा तिरोहित हो जाता है।

उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्रण कई प्रकार से हो सकता है।

प्रकृति के मधुर मिलन व्यापार वियोगी की व्यथा को और भी उद्दीप्त कर देते हैं। यह मानव और प्रकृति का वैषम्य हुआ।

कवि कहता है—

"देखता हूँ, जब उपवन,
पियालों में फूलों के
प्रिये भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को......
तो—अकेली आकुलता सी प्राण !
कहीं करती तब मृदु आघात......।"

('आँसू' से)

(ख) २—वियोग-दाह के कारण प्रकृति के रम्य रूप भी उग्र एवं पीड़क दिखाई देते हैं—यथा

धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल,
आज सोने का सन्ध्याकाल
जल रहा जतुगृह सा विकराल;"

यह है अपने भाव की अनन्त अभिव्यक्ति। यह आरोपित साधर्म्य है।

(ग) ३—प्रकृति के साथ तादात्म्य करते हुए अपने दुख की अभिव्यक्ति

यथा—'मेरा पावस ऋतु सा जीवन' आदि ("आँसू"—से) यह मानव हृदय और प्रकृति-व्यापार का साधर्म्य हुआ ।

(३) अलंकार रूप—प्रस्तुत की विशद एवं गम्भीर अभिव्यक्ति के लिए कवि अप्रस्तुत विधान करते आए हैं । "मेरा पावस ऋतु सा जीवन" वाला चित्र प्रकृति का अलंकार रूप में सुन्दर प्रयोग है । किन्तु प्रकृति से अप्रस्तुत-चयन केवल प्रेम विषयक कविताओं में ही नहीं अन्य विषय वाली कविताओं में भी किया जाता है । प्रसाद का "मधुमय बसन्त यौवन वन के" वाला विशद-सूक्ष्म चित्र एक ऐसा ही चित्र है ।

(४) पृष्ठ भूमि के रूप में—पृष्ठ भूमि के रूप में प्रकृति चित्रण 'एक तारा' 'नौका विहार' आदि कविताओं के पूर्व मिलता है । इस प्रकार का सजीव वर्णन कविता की शक्ति को ऊर्जस्वित करने में सुतरां सहायक होता है । 'एकतारा' का आरम्भिक प्रकृति-चित्रण, कविता के प्रतिपाद्य-विषय की गंभीरता को कला के आवरण में प्रस्तुत करके, पाठक के हृदय को एक सहज गति दे देता है; जो दार्शनिक तथ्यों को आत्मसात कर लेती हैं ।

'ग्राम चित्र' एक ही कविता में हमें दो प्रकार का प्रकृत्ति चित्रण मिलता है । यहाँ डोलती वायु म्लान…" आदि के द्वारा कवि गाँव की करुण दशा के चित्रण को अधिक सशक्त कर देता है । और बाद में 'यह रवि राशि का लोक; जहाँ हँसते समूह में उडगण' आदि पंक्तियों में विषम चित्र प्रस्तुत कर पाठक को मर्माहत कर देता हैं ।

(५) रहस्य संकेत—शुक्ल जी के अनुसार चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैत-वाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है । किन्तु एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है । अद्वैतवाद का एक ही रूप हो सकता है, क्रम उसके लक्ष्य-मुक्ति-में नहीं है । किन्तु रहस्यवाद के अनेक स्वरूप हो सकते हैं । व्यक्त अखण्ड सत्ता का धूमिल भास भी रहस्यबाद है, और आत्मा—परमात्मा का मिलन परिरंभण भी रहस्यवाद । पन्त में हमें प्रथम स्वरूप दृष्टि गोचर होता है । (देखिए मौन-नियंत्रण) । प्रकृति के विभिन्न दृश्यों से कवि को एक अव्यक्त संकेत मिलता है । किन्तु वह उसे समझ नहीं पाता ।

छायावाद-रहस्यवाद के विरुद्ध मार्क्सवादी आलोचकों ने एकांगी नारा उठाया। उनके अनुसार ऐसा काव्य पलायन-प्रवृत्ति का प्रकाशन है, कायरता और भीरुता का परिचायक। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें एक बार फिर जीवन-क्षेत्र में उतरना पड़ेगा। क्या प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य को देख हमें उसमें किसी अव्यक्त सत्ता का लास-उल्लास दिखाई नहीं देता? क्या हम उसी से सन्तुष्ट रहते हैं जो हमारी इन्द्रियों की पकड़ में आता है? यदि हम ईमानदारी से सोचें तो हमें एक नहीं अनेक ऐसे क्षण मिलेंगे जिनमें हमारा मन दृश्य से उचाट हो जाता है। और इस अनासक्ति का कारण होता है दृश्य से असन्तोष। हम केवल रोटी-कपड़ा ही नहीं चाहते। इससे अधिक भी कुछ चाहते हैं। यह 'अधिक कुछ' ही ऊर्ध्वतल की सीमा है जिसका अन्तिम छोर भाव या बुद्धि की चरम साधना से एकरस है।

(६) दार्शनिक सत्यों की उद्भावना—जब मानव मन इस स्थूल दृश्य जगत से असन्तुष्ट होता है, जब वह अपने अन्तरंग की ओर झाँकता है तो उसे एक नई अनुभूति का आभास होता है, जो स्थूल नहीं सूक्ष्म है, जो जड़ नहीं आत्मिक है। आत्मा की सत्ता पर अविश्वास करने वालों से पूछिए किचरित्र-निर्माण से वे क्या समझते हैं? क्या चरित्र का एकमात्र सम्बन्ध स्थूल-भौतिक पदार्थों से ही है। चरित्र-चेतन का वह अंश है जो जड़ की यथार्थ सीमा का निर्धारण करता है।

अपने देश में अनेकानेक दार्शनिक मत रहे। कवियों ने किसी न किसी दार्शनिक मत को काव्य में ग्रहण कर स्वीकृति दी। दर्शन और काव्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। काव्य जीवन की भावात्मक व्याख्या है। दर्शन जीवन की विचारात्मक व्याख्या है। काव्य और दर्शन को परस्पर बाँधने वाला जीवन ही है।

विविध दार्शनिक ग्रन्थों में भी उपनिषद् का सूक्ष्म-गहन चिन्तन अधिकांश मनीषियों को आकर्षित करता रहा। कवि पन्त भी उपनिषदों से प्रभावित रहा है। "एक तारा" और "नौका विहार" में इसका स्पष्ट संकेत है। "एक तारा" की अन्तिम दो पंक्तियाँ हैं—

"जगमग-जगमग नभ का आँगन लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन।"

इनमें "एकोऽहं बहुस्याम" का स्पष्ट प्रभाव है। यह पंक्तियाँ सम्पूर्ण-कविता को एक अन्योक्ति का रूप दे देती हैं।

इसी प्रकार नौका विहार के अन्त में, यह संसार क्रम भी नौका-विहार सदृश वर्णित है।

प्रकृति के दृश्यों से सनातन सत्य को इस प्रकार संकेतित करना कल्पना की व्युत्पन्नता एवं चिन्तन की विशदता का परिचायक है। पाठक उन्हें पढ़कर चमत्कृत हो उठता है। यह एक अत्यन्त परिष्कृत एवं भावात्मक पद्धति है।

(७) **मानवीकरण**—यह ऊपर कहा जा चुका है कि कवि ने प्रकृति को अपने से अलग सजीव सत्ता वाली एक नारी के रूप में देखा है। इस दृष्टिकोण का कारण है प्रकृति के व्यापारों का मानवीय क्रिया कलापों से साम्य। मानवीय रूपों और व्यापारों की पृष्ठभूमि पर प्रकृति के रूपों और व्यापारों का साक्षात्कार करना कराना ही प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। उदाहरण के लिये 'चाँदनी' या 'लहरों का गीत' आदि कविताएँ दी जा सकती हैं। कवि चाँदनी को 'नभ के शतदल' पर बैठी हुई नायिका के रूप में देखता है।

यह सत्य है कि आधुनिक काव्य में मानवीकरण की यह प्रवृत्ति प्रधानतः पश्चिम के प्रभाद से आई है। किन्तु हमारे साहित्य शास्त्रीयों ने मानवीकरण से मिलते-जुलते एक अलंकार का उल्लेख किया है जिसका नाम हैं समासोक्ति अब हमें देखना यह हैं कि समास्पेक्ति और मानवीकरण में क्या भेद है और क्या समानता है। साहित्यदर्पणकार ने समासोक्ति की यह परिभाषा दी है—

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥

(जहाँ प्रस्तुत में समान व्यापार और लिङ्ग वाले विशेषणों द्वारा अप्रस्तुत वस्तु का आरोप किया जाता है, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।) चाँदनी कविता में भी हमें प्रस्तुत चाँदनी में अप्रस्तुत नायिका का आरोप दिखाई देता

है। इस दृष्टि से देखने पर समासोक्ति और मानवीकरण में कोई भेद नहीं दिखाई देता।

पन्त में ही नहीं अन्य आधुनिक कवियों में भी ऐसे वर्णन मिलते हैं जहाँ मानवीकृत प्रकृति-वर्णन में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत–मानवीय रूप व्यापार–ही अधिक मुखर हो उठे हैं। प्रस्तुत उनमें दब जाता है। ऐसे स्थलों में समासोक्ति का उपरोक्त लक्षण पूर्णतः घटित नहीं होता। किन्तु यह आधुनिक कवियों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का ही परिणाम है जिसकी ओर पीछे (साँग रूपक के विवेचन में भी) संकेत किया गया है।

उदाहरण के लिए 'चाँदनी' कविता के प्रथम दो छन्द लीजिए।

'नीले नभ के शतदल पर,
वह बैठी शारद्-हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष एकाकिनि !
वह स्वप्न-जड़ित नत चितवन
छू लेती अग-जग का मन,
श्यामल, कोमल चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन।"

इस वर्णन में प्रस्तुत पक्ष—चाँरनी का वर्णन—गौण पड़ गया है और अप्रस्तुत पक्ष—नायिका के स्वरूप ने—उसे दबा लिया है। प्रथम छन्द के पढ़ते समय पाठक के नेत्रों के सामने चाँदनी का चित्र नहीं, नायिका का ही चित्र आता है। उस चित्र की कल्पना किए बिना वह चाँदनी तक पहुँच ही नहीं सकता। और दूसरे छन्द में तो प्रस्तुत और भी अधिक धूमिल हो गया है। 'चितवन' का कोई स्वरूप हमें चाँदनी में नहीं मिलता। केवल उसके प्रसार भर को ही चितवन मान लेना पड़ता है। स्पष्टतः यहाँ कवि की कल्पना नायिका में उलझी हुई है। ऐसे स्थलों पर चित्र की धूमिलता के साथ-साथ प्रभाव-हीनता एवं दुरूहता आ जाती है। "लहरों के गीत" का पाठक पहली बार तो भौचक्का रह जाता है क्योंकि वहाँ कवि लहरों का नहीं मुग्धा नायिका के रूप-व्यापार पाठक के सामने रख रहा है। यदि कवि को मानवीय

व्यापार का वर्णन करना ही अभीष्ट है तो उसे इस प्रकार प्रकृति की खाल में न रखना ही उचित है।

यह तो हुई मानवीकरण की बात। इसके अतिरिक्त प्रकृति को मानवीय रूप में वर्णन करने के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का भी सहारा लिया जाता है। 'बादल' कविता में 'फिर परियों के बच्चों-से हम' में उपमा, और 'दुहरा विद्युद्दाम चढ़ाकर'' में सांग रूपक के द्वारा बादलों को 'वासव-सेना-से' दिखलाया है।

प्रकृति के मानवीकरण से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का प्रकाशन होता है। वह है मानव-सौन्दर्य और प्रकृति के सौन्दर्य के घनिष्ठ सम्बन्ध का रहस्य। ठीक है कि आलम्बन भिन्न-भिन्न हैं किन्तु दोनों ही—प्रकृति और नर-नारी—एक ही भावना सौन्दर्य आदि को जगाते हैं। जिस प्रकार एक मानव मानव के समस्त भावों का आलम्बन हो सकता है उसी प्रकार प्रकृति भी। यदि यह बात असत्य होती, यदि प्रकृति और मानवीय-प्रकृति में भेद या विरोध होता तो दोनों का संश्लिष्ट वर्णन कभी भी एकरस प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता है। यह निर्विवाद है कि मानव प्रकृति के बिना अधूरा है, और प्रकृति मानव के बिना अधूरी है। यह सत्य है कि दोनों ही एक दूसरे से विच्छिन्न रूप में भी मानव भावों के आलम्बन हो सकते हैं और होते भी हैं, किन्तु दोनों की उचित सम्बद्धता में तीव्र प्रभावोत्पादकता है।

एक बात और। प्रकृति का मानवीकरण साहित्य-क्षेत्र की ही विशेषता है। जीवन में हम कभी भी प्रकृति को इस रूप में नहीं देखते और देखते भी हैं तो बहुत कम। साहित्य प्रकृति को मानवके समतुल्य प्रतिष्ठापित कर मानव हृदय को व्यापकता एवं दिव्यता प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कुछ अन्य भी बातें हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

प्रकृति की चित्रपटी में ही दर्शन के गूढ़ रहस्यों को झलकाने की बात ऊपर कही जा चुकी है। इसके अतिरिक्त जीवनके अन्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी कवि प्रकृति से सहायता लेता है। 'सुख-दुःख' कविता में कवि बादल

और चाँद के खेल का वर्णन करता है। 'अनित्य जग' में कवि संसार की अनित्यता दिखाने के लिए ही कहता है—

"आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी साँस!"

इस दृश्य से कवि द्वारा प्रदर्शित संसार की परिवर्तनशीलता की करुण अनुभूति हृदय में गम्भीर रूप ग्रहण कर उदित होती है। इसी प्रकार "नित्य जग" में भी "अतल से एक अकूल उमंग" वाले छन्द में प्रकृति का दर्शन से मधुर मिश्रण किया है। "एक ही तो असीम उल्लास" में कवि वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का काव्यात्मक प्रतिपादन करता है।

(८) प्रस्तुत-अप्रस्तुत—पन्त में कई स्थानों पर हमें प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सामञ्जस्य भी मिलता है और मानव भावना का व्यापक प्रभाव भी, जिसे जायसी की एक प्रधान विशेषता माना जाता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सामञ्जस्य के स्थल हैं "ग्रन्थि से—" की 'इन्दु पर, उस इन्दुमुख पर—' वाली पंक्तियाँ उधर चन्द्रमा उदित है, उधर कवि के सामने बाला का मधुर मुख। उधर बाल रात्रि (सन्ध्या) है, इधर अलक। "एक तारा" में 'गंगा के चल-जल में·········किस मग!' तक भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत का मधुर सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है।

(९) व्यापक प्रभाव—मानव भाव का प्रकृति में व्यापक प्रसार इन स्थलों में देखा जा सकता है।

इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में·· ···" (ग्रन्थि) कवि के हृदय की जिज्ञासा सारी प्रकृति में विद्यमान है।

देखिए संसार की अनित्यता के कारण सारा विश्व किस प्रकार आतंकित है—

"अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास
डालता पातों पर चुपचाप
आँख के आँसू नीलाकाश

सिसक उठता समुद्र का कन,
सिहर उठते उडगन !"

इसी प्रकार "एक तारा" में 'आकांक्षा के उच्छ्वसित वेग' से सागर-रवि, शशि, उडगन सभी व्याकुल और स्पन्दित हैं।

"आँसू की बालिका" में एक बहुत ही सुन्दर छन्द है जिसमें निराश व्यक्ति को प्रकृति से सहानुभूति और करुणा का आश्वासन मिलता है—

तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा !

प्रकृति और मानव के तादात्म्य के ऐसे करुण एवं मर्मस्पर्शी चित्र कम ही मिलेंगे।

१०—मानसीकरण—"गंगा" कविता में हमें प्रकृति का एक और ही ढङ्ग का चमत्कारपूर्ण प्रयोग दिखाई देता है। इसमें कवि भौगोलिक परिचित गंगा से भिन्न एक लोक चेतना की गंगा की मंजुल कल्पना करता है। यह गंगा का प्रतीक प्रयोग भी नहीं, समासोक्ति या अन्योक्ति भी नहीं है। इसे ही मैं प्रकृति का मानसीकरण कहता हूँ। ये अन्य सभी पद्धतियों से अधिक परिमार्जित एवं प्रभावपूर्ण है। एक परिचित मूर्त्त दृश्य के समानान्तर एक सूक्ष्म एवं जटिल दृश्य को इस कुशलता से रखना उद्‌बुद्ध प्रतिभा का ही काम है। गंगा के प्रति जो सात्विक, मधुर भावनाएँ हृदय में विद्यमान हैं, "वह जन-मन से निःसृत गंगा" को देखकर और भी दिव्य एवं सशक्त रूप धारण कर लेती हैं।

प्रकृति के प्रति बदलता हुआ दृष्टिकोण

चेतना से बढ़कर सजग एवं व्यग्र कोई अन्य पदार्थ नहीं है। वह प्रतिक्षण प्रभावित होती रहती है, नए भाव-रूपों का जन्म देती रहती है। यह परिवर्तन होती अवश्य है। यह बात दूसरी है कि वह विकास का पथ पकड़े, या अवनति की गर्त में फिसल पड़े।

प्रकृति का मूर्त्त रूप सुषमा से भरा पूरा है। वह चेतना को प्रभावित करता है। मानव-समाज भी मानव के अन्तर्जगत पर स्पष्ट प्रभाव अङ्कित कर देता है। यह प्रभाव प्रकृति के मूर्त्त रूप को विविध भावनाओं में रंग डालता है। जैसे-जैसे यह प्रभाव बदलता जाएगा, प्रकृति का रंग भी परिवर्तित होता जाएगा।

वीणा में गीतों के विषय तीन हैं—कवि की माँ की पूज्य स्मृति, प्रकृति का रम्य प्रांगण, और विराट् शक्ति के प्रति विनीत निवेदन। किन्तु मूलतः इन तीनों में बहुत साम्य है। प्रकृति को कवि माँ की कृति बताता है—

"यह चित्र मा! जो तूने है
चित्रित किया नयन सम्मुख……।"

माँ के प्रति उसकी भावना भक्ति से रंगी है। ईश्वर- संबन्धी प्रार्थनाओं में और माँ के प्रति प्रस्फुटित उद्‌गारों में कहीं-कहीं कोई भेद प्रतीत नहीं होता।

आरम्भ में ही कवि ने कुछ आदर्श बना लिए थे। तभी तो वह प्रकृति से शिक्षा प्राप्त करना चाहता है प्रकृति के प्रति उसके मन में कोमल जिज्ञासा का भाव भी है।

'ग्रन्थि' में कवि के प्रणय की असफलता सिसकती दिखाई देती है। कवि के सूक्ष्म-विस्तृत प्रकृति-निरीक्षण का उपयोग इस कृति में प्रचुर-अमंद अप्रस्तुत-विधान में ही लक्षित होता है। 'ग्रन्थि' की सांद्र करुण धारा, संस्कृत-बहुला पदावली उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि की लम्बी लड़ियाँ सहसा प्रिय प्रवास की याद दिला देती हैं।

'पल्लव' में प्रकृति का शैली गत प्रयोग बहुत ही विशद एवं प्रांजल बन पड़ा है। लाक्षणिक मूर्त्त विधानों की प्रचुरता है। जहाँ एक ओर कवि बाल-जाल को ठुकरा कर प्रकृति प्रेम में बंधे रहने की भावना प्रकट करता है, वहाँ उसे अपनी प्रिया 'एक कालिका में ही संपूर्ण बसन्त' सी दिखाई देती है। प्रकृति-प्रेम और वियोग बेदना की मिश्रित लहरियों के सुन्दर हार 'आँसू' 'उच्छ्‌वास' आदि में मिलते हैं। अभी तक कवि की दृष्टि प्रकृति के कोमल और रम्य रूप की ओर गई थी। सहसा उसके जीवन में कोई भयंकर आघात होता है। बौद्धिक-संघर्ष चरम-सीमा को प्राप्त कर 'परिवर्तन' में बरस पड़ता

है। प्रकृति के उग्र रूप की ओर उसकी दृष्टि जाती है। यह उग्र रूप उद्दीपन के उग्र रूप से भिन्न है। यह भयंकरता भाव गत नहीं, यथार्थ है। सभी को इसका अनुभव होता है। कवि को जग की अनित्यता का ज्ञान होता है, फिर निष्ठुर परिवर्तन का तूफान उठ खड़ा होता है और अन्त में नित्य जग की करुण शान्ति का स्वर सुनाई पड़ता है।

कवि की चेतना पर परिवर्तन ने जो आघात किया उसने उसे संवेदनशील बल दिया। उसका चिन्तन 'गुञ्जन' में अधिक संतुलित रूप प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। 'नित्य जग' के समन्वय में क्षणिक तुष्टि थी और वह भी संभवतः व्यक्तिगत। पल्लव के बाद कवि का संपूर्ण प्रयत्न समन्वय-जन्य तुष्टि को स्थायी एवं लोक-ग्राह्य बनाने को उत्सुक हुआ उसका विषण्ण हृदय दर्शन की ओर लपका जिसकी छाप 'एक तारा' एवं 'नौका बिहार' में प्राप्त हुई। प्रकृति भी कवि के चिन्तन को परिपुष्ट करने में संलग्न दिखाई देती है। साथ ही साथ 'चाँदनी' जैसी कविताएँ भी मिलती हैं जो कवि की प्राचीन प्रवृत्त की अवशिष्ट मणियाँ हैं। "मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण" कविता में प्रिया के उल्लास का व्यापक प्रभाव प्रकृति पर पड़ता दिखाई देता है।

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि का चिन्तन और भी अधिक यथार्थ हो जाता है। समन्वय की भावना को मार्क्सवाद का स्थूल निर्दिष्ट आधार प्राप्त हो जाता है। प्रकृति गौण हो जाती है। मानव प्रधान हो जाता है। प्रकृति की यह गौणता आपेक्षिक दृष्टि से ही है। युगवाणी में 'झंझा में नीम' 'जीवप्रसू' आदि में प्रकृति का आलम्बन रूप मिलता है। ग्राम्या में गाँव की प्रकृति का वर्णन है (ग्राम चित्र, ग्राम श्री)। वह सुखद भी है और कुरुप भी। कवि प्रकृति से प्रेम करता है किन्तु भौतिकता के आवरण में वह बहुत कुछ छिप गया है। उत्तरा तक आते-आते प्रकृति के नए रूप में दर्शन होते हैं। प्रकृति के विभिन्न दृश्य प्रतीकवत् प्रयोग में लाए जाते हैं। अन्योक्ति का रूप 'पतझर' में मिलता है। किन्तु अन्योक्ति की अपेक्षा प्रतीक रूप ग्रहण करना कवि को अधिक अभीष्ट है। प्रकृति का प्रतीक रूप में वर्णन अपेक्षतः सरल है। उत्तरा में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी मिलता है, मानवीकरण भी

दिखाई देता है। एक स्थान पर प्रकृति में खो जाने की भावना—'वीणा' की रचनाओं में जिसकी प्रचुरता है—प्राप्त होती है—

"तुम मुझे डुबा लो अपने में
या मुझमें जाओ स्वयं डूब,
तुम फूटो मेरा मोह चीर
ज्यों कढ़ती भू को चीर दूब।" 'शरद चेतना

यहाँ शरद को नव चेतना का प्रतीक माना हैं। किन्तु प्रकृति प्रेम भी ध्वनित होता है।

रस सिद्धान्त की उपयोगिता

कवि पन्त के विषय में यह कहा जाता है कि उसने अपने 'गुञ्जन' के बाद के काव्य में रस सिद्धान्त की उपेक्षा की है। किन्तु केवल इतना कह देना पर्याप्त नहीं है और इसीलिए यह कथन असङ्गत सिद्ध हो जाता है। कवि पन्त पर ही यह आक्षेप क्यों ? सभी आधुनिक काव्य का परीक्षण करने पर क्या हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते ? पन्त के काव्य में रसानुभूति खोजने से पहले हमें रस सिद्धान्त की सामान्य बातों को समझ लेना होगा।

यह सभी जानते है कि भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में रस का विवेचन कर उसकी प्रतिष्ठा की। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। नाटक में कथावस्तु का एक विशिष्ट संगठन होता है। रस की दृष्टि से देखते हुए उस सङ्गठन विशेष की अपेक्षा कथावस्तु का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि साहित्य की जिन शैलियों में घटनाएँ और व्यापार सम्बद्ध होकर कथा वस्तु के रूप में रहते है, उनमें रसानुभूति का प्रसार आवश्यक हो जाता है। उपन्यास कहानी आदि आधुनिक युग की उपज हैं। उनमें कथावस्तु रहती है। इसलिए उसमें प्रसंगानुकूल मधुर या कठोर भावों की अनुभूति पाठक को होती ही है। प्रबन्ध प्राचीन काल में रचे ही जाते थे। उनमें भी रस की एक अविच्छिन धारा प्रवाहित रहती है जो कथा के नीरस मरु-अंशों को भी स्निग्ध करती हुई चलती है। निबन्ध, गीतकाव्य, रिपोर्ताज आदि साहित्य-शैलियों का उपरोक्त साहित्य-रूपों से एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि इनमें सम्बद्ध कथा का अभाव है। इसलिये इनमें रस की छान बीन करते समय हमें इन्हें एक भिन्न दृष्टिकोण से देखना होगा।

क्या गीत रसोद्रेक करने में समर्थ हैं ?

अब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि क्या गीत रसोद्रेक करने में समर्थ हैं ? इस प्रश्न को सुलझाते समय हमें यह बात सदैव ध्यान में रखनी पड़ेगी कि गीतों में कथाधारा का अभाव रहता है।

यह सत्य है कि पन्त के सभी गीतों में हमें रस छलकता दिखाई नहीं देता। प्राचीन काल में भी गीतों की रचना की जाती थी। उदाहरण के लिए हम विद्यापति, सूर और तुलसी को ले सकते हैं। उनके गीतों को पढ़ते समय हमारा हृदय रस से सिक्त हो उठता है। फिर भी हमें कुछ ऐसे पद अवश्य मिलते है जिनमें रसानुभूति का अभाव मिलता है। उदाहरण के लिए हम तुलसी का प्रसिद्ध पद 'केशव कहि न जाय का कहिए' ले सकते हैं। इसमें रस प्रवाह नहीं है। फिर भी यह तुलसी के सर्व श्रेष्ठ पदों में से माना जाता है। कारण इसमें कला की कुशलता के साथ-साथ विचारों की सघनता भी है। मार्मिक अभिव्यक्ति ने दार्शनिक विचारों को भी साहित्य का माधुर्य प्रदान कर दिया है। अतः यह सिद्ध है कि गीतों की श्रेष्ठता का आधार केवल उनकी रसोद्रेक विषयक शक्ति ही नहीं है। विचारों की महत्ता और अभिव्यक्ति की मौलिकता एवं उत्कृष्टता भी गीत को श्रेष्ठ बना सकती है।

आधुनिक युग के साहित्य और प्राचीन युग के साहित्य की प्रवृत्तियों में उतना ही अन्तर है जितना इन युगों की प्रवृतियों में है। युग का विकास होता हैं, मानव चेतना का उन्नयन होता है, नवीन मूल्यों और मानों का आविर्भाव होता है और प्राचीन मूल्यों और मानों का नाश या परिवर्तन होता है। कल के साहित्यकार की दृष्टि भाव की ओर अधिक रहती थी। आज का कलाकार बौद्धिक चेतना के प्रति भी सजग है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन साहित्यकारों में बौद्धिक जागरण का अभाव था। नही यह बात नहीं हैं। किन्तु उनका बौद्धिक चिंतन गीतों में अभिव्यक्ति न होकर महाकाव्य के रूप में जनता के सामने आता था। तुलसी का लोकानायकत्व का आधार उनकी विनयपत्रिका आदि नहीं, वरन् उनका रामचरितमानस है। सूर लोकानायक क्यों न हो सके? क्या उनमें अनुभूति की वह तीव्रता वहीं थी जो तुलसी में हैं? अधिकाँश विद्वान मानते हैं कि सूर की अनुभूति तुलसी की अनुभूति से अधिक गम्भीर और गहरी थी। किन्तु सूरदास ने समाज की ओर से अपनी आँखें बन्द कर लीं। वह केवल कवि थे। तुलसी कवि होने के साथ-साथ समाज के सुधारक भी थे। उनका साहित्यिक महत्व भी है और सामाजिक भी। सामाजिकता का पूर्ण अभाव किसी भी कवि में नहीं होता। सूरदास ने निर्गुण हठयोग का

खण्डन कर अपनी सामाजिक-सजगता का परिचय दिया है। किन्तु यह गौण है। तुलसी में यह प्रधान होगई है। एक बात और भी समझ लेनी चाहिए। सामाजिक सजगता का अभाव किसी कवि का मूल्य कम नहीं कर देता। क्योंकि यह कलाकार की असमर्थता का नहीं रुचि की विशेषता का परिचायक है। रामचरितमानस में अनेक स्थल ऐसे है जहां रस का वेग क्षीण हैं। तुलसी की सामाजिकता या दार्शनिक धर्म परायणता वेग से मुखरित हो उठी है। किन्तु उन स्थलों का भी अपना महत्व है।

जिस प्रकार तुलसी में हमें कवित्व और सामाजिकता का सामंजस्य मिलता है, उसी प्रकार पंत में भी। सामंजस्य के रूप का विवेचन आगे के अध्याय में किया जायगा। यहाँ केवल इतना जान लेना है कि कवि में जहाँ रस धारा क्षीण हुई है, वहाँ उसकी सामाजिकता प्रबल हो उठी हैं। किन्तु पन्त ने अपने युग-चिन्तन की अभिव्यक्ति भी गीतों में ही की। उन्होंने तुलसी सा मानस नहीं लिखना चाहा। क्यों?

पन्त ने इस प्रकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। छायावादी शैली और व्यक्तिवादी भावों में जकड़े हुए गीतों को चिंतन के अनन्त क्षेत्र में घूमने की स्वच्छन्दता दी और आधुनिक युग की प्रायः समस्त चिन्तन धाराओं को अपने में बाँध लिया। गीतों में प्रतिपाद्य विषय की ऐसी विभिन्नता कहीं मिलेगी भी नहीं।

गीत और निबंध

जहाँ तक वर्ण्य-विषय की बहुरंगता का प्रश्न है, पन्त के गीतों की तुलना आधुनिक साहित्य में प्रचलित निबंधों से की जा सकती है। ऊपर इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि निबंध में भी रस का अभाव रहता है। यहाँ भावात्मक निबंध अपवाद स्वरूप है। निबंध में छोटे-से छोटे लेकर बड़े-से बड़े विषय का प्रतिपादन किया जाता है। पन्त के गीतों में भी ऐसा ही मिलता है। पन्त के अतिरिक्त अन्य आधुनिक कवियों ने भी विविध-विषयों को गीतों में ही बाँधा है। प्रश्न हो सकता है कि विचारात्मक विषय को गीतों में प्रस्फुटित करने की अपेक्षा यदि कवि उन्हें निबंधों में खोलते तो अच्छा होता है। यह ठीक है। कारण निबंध में विचारों को पल्लवित करने के लिए अवकाश

रहता है, गीत में नहीं। किन्तु गीत की शैली वर्ण्यवस्तु के महत्व को बढ़ा भी सकती है। और फिर विषय की स्पष्ट अभिव्यक्ति का कारण प्रतिभा है न कि शैली। इन सब बातों को देखने के लिए पन्त की 'महात्माजी के प्रति' कविता ली जा सकती है। यह विचारात्मक कविता है। किन्तु क्या निबंध में यह विचार इससे अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त किए जा सकते हैं? मुझे इसके सन्देह है। हाँ बाल-बुद्धि के लिए अपेक्षित सरलता कविता में नहीं है, और वह तो शायद निबंध में नहीं होती।

अब प्रश्न हो सकता है कि निबंध और इन कविताओं में क्या भेद है? स्पष्ट है कि यह भेद विषय पर आधारित नहीं है वरन् शैली पर आधारित होता है। निबंधकार और कवि की शब्द साधना में भेद होता है।

बुद्धिगत साधारणीकरण

यहाँ एक और प्रश्न उठता है। हम ऊपर उन गीतों का उल्लेख कर चुके है, जिनमें रसानुभूति का नितान्त अभाव है। तो 'वाक्यं' रसात्मकं काव्यं' साहित्य की प्रसिद्ध एवं मान्य परिभाषा—अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हो गई और रस-सिद्धान्त का एकच्छत्र साम्राज्य समाप्त होगया। किन्तु रस सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक उपयोगिता के कारण उसका त्याग अवांच्छनीय है। आवश्यकता इस बात की है कि हम आधुनिक युग की परिस्थितियों के अनुरूप उसकी नई परिभाषा करें। रस शब्द में नई शक्ति भर दें। यह आवश्यक भी है और स्वाभाविक भी। प्राचीन सिद्धान्तों को नवीन परिस्थितियों की आग में जला कर उन्हें नए रूप में ढालने की आवश्यकता प्रत्येक युग के व्यक्ति को रही है।

डाक्टर रांगेय राघव ने ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर इस मत की स्थापना की है कि प्राचीन काल में मानव-मानव की समता का जो नाद उठा उसकी अभिव्यक्ति बौद्धिक जगत में आत्मा की अखण्ड एकता के रूप में और भाव जगत (साहित्य जगत) में रस और साधारणीकरण की समता के रूप में हुई। यह तो हुई चेतन जगत की एकता की बात। आज विज्ञान के युग ने "वसुधैव कुटुम्बकम्"—मानव-मानव के एकत्व की भावना को साक्षात प्रति-

फलित कर दिया है। आज भूत जगत की एकता भी स्थापित हो गई है। तो आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है उपरोक्त चेतन जगत की एकता का भूत जगत की एकता से सामंजस्य। कवि पन्त ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

ऊपर रस के प्राण—एकत्व भावना का उल्लेख हो चुका है। किन्तु जैसा कि स्पष्ट है उस युग में भी एकत्व की प्रतिष्ठा के दो क्षेत्र-दर्शन और साहित्य, बुद्धि और हृदय—थे ही। आज की माँग है बुद्धि और हृदय के एकत्व की, दर्शन और साहित्य के सामंजस्य की, तर्क और भाव के सामरस्य की। यही समत्व भावना की अन्तिम सीढ़ी होगी। इसी में आकर हमारे ऋषियों और साहित्य शास्त्रियों द्वारा प्रवर्त्तित एकत्वबुद्धि की चरम प्रतिष्ठा होगी और प्रत्यक्ष उपयोगिता में उसकी महिमा अनुपम होगी।

'आधुनिक कवि' की भूमिका में कवि ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि बुद्धि और हृदय में कोई विरोध नहीं है। कुत्सित तर्कों में उलझकर, या अंध-विश्वासों में फंस कर ही मानव की अवनति होती है। आज के युग में बुद्धि और हृदय में विरोध नहीं, दोनों को कदम से कदम मिलाकर मानव कल्याण के लिए अग्रसर होना चाहिए। 'ज्योत्स्ना' में कवि ने कुमार से कहलवाया है।

"दार्शनिक जिस सत्य के दर्शन प्रज्ञा द्वारा करता है, कवि को उस सत्य को हृदय से सींचकर सजीव कर देना होता है,..." पृ० ६२

दार्शनिक और कवि, बुद्धि और हृदय दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। दोनों मिलकर ही सत्य का साक्षात्कार कराने में समर्थ है। माध्यम भिन्न-भिन्न हैं। एक बुद्धि के द्वारा देखता है दूसरा हृदय के द्वारा। इस सत्य का घोष कवि 'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप—' आदि पंक्तियों में भी करता है।

इस नवीन स्वस्थ दृष्टिकोण को अपनाने के कारण कवि के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह रस की नवीन परिभाषा दे। कुमार कहता है—

"हम जीवन को सार-रूप में ग्रहण कर सकते हैं, संसार रूप में नहीं। जीवन के इस सार से, सत्य के इस सारल्य से, मनुष्य को मिलाकर, कला उसे सब से मिला देती है। यही सत्य का एकत्व, काव्य का लोकोत्तरानन्द रस

है।" पृ० ६१ इस परिभाषा में हम उसी विशद एकत्व भावना की प्रतिष्ठा पाते हैं जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

रसानुभूति लोकानुभूति का साहित्यिक संस्करण है। लोक-पक्ष में जो कार्य, कारण और सहकारी होते हैं, वही साहित्य क्षेत्र में क्रमशः अनुभाव, विभाव और सञ्चारी कहलाते हैं। साधारणीकरण के सिद्धान्त के विषय में दो मत हैं। प्रथम यह कि साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म को होता है, दूसरा यह कि साधारणीकरण का संबंध सामाजिक के हृदय से है न कि आलम्बन आदि से। साधारणीकरण सम्बन्धी मूल वाक्य यह है कि रसलीन सामाजिक को विभावादि साधारणतया प्रतीत होते हैं। उपरोक्त दोनों मतों को इसी से खीचा जा सकता है। प्रथम मत के अनुसार साधारणीकरण एक क्रिया है, दूसरे मत के अनुसार साधारणीकरण अवस्था है। यदि साधारणीकरण क्रिया है तो भी उसका फल होता है हृदय की मुक्ति, और यदि वह अवस्था है तो वह है हृदय की मुक्ति की अवस्था।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या आलम्बन मूर्त्त व्यक्ति या जगत ही हो सकता है? क्या बौद्धिक सिद्धान्त और नैतिक आदर्श मनुष्य के आलम्बन नहीं हो सकते? इसका उत्तर हमें लोकानुभूति से ही मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति का किसी-न-किसी दार्शनिक सिद्धान्त, किसी-न-किसी नैतिक आदर्श के प्रति लगाव होता है, किसी से विरक्ति भी हो सकती है। किसी के लिए आध्यात्मिक चिन्तन स्पृहणीय है और किसी के लिए व्यर्थ का ढोंग। जो भी हो, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य के जगत में भी बौद्धिक मतवाद और नैतिक आदर्श आलम्बन रूप में ग्रहण किए जा सकते हैं। पन्त की समाजवाद, गांधीवाद, विकासवाद आदि सम्बन्धी कविताओं में यह सूक्ष्म विचार-धाराएँ ही आलम्बन के रूप में ग्रहण की गई है।

सूक्ष्म-चिन्ताओं का साहित्य में आलम्बन रूप ग्रहण करना आज के युग के लिए आवश्यक भी है। क्योंकि विज्ञान के चमत्कारों ने आज के युग को इतना प्रभावित नहीं किया जितना उन चमत्कारों पर आश्रित मतवादों ने। उनकी उपयोगिता परखना, उनके काले और शुभ पक्षों का उद्‌घाटन करना, उनके प्रति जनता की रुचि को मार्जित करना साहित्यकार का कर्तव्य है। इन

मतवादों की सूक्ष्मता दुरुहता को जन्म देती है। चेतना सम्बन्धी चिन्ताओं की अगोचरता कहीं कहीं गुह्यता भी बन सकती है। इस दोष को बचाने के लिए कवि पन्त ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्णधूलि' जैसे मूर्त्त प्रतीक ही नहीं बसन्त, शरद आदि चिरपरिचित प्रकृति के रूपों और परिवर्तनों को भी प्रतीकवत् ग्रहण किया गया है।

अब प्रश्न आता है आलम्बन रूप में ग्रहण किए गए इन सिद्धान्तों के साधारणीकरण का। साहित्य चिन्तन में अभी तक भावगत साधारणीकरण की ही बात की जाती रही है। किन्तु क्या यह आवश्यक है कि साधारणीकरण (समत्व) भावों का ही हो सकता है ? (साधारणीकरण को समत्व कहने पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऊपर हम समत्व को साहित्य का प्राण सिद्ध कर चुके हैं।) यह मानना अनुभूत सत्य के विपरीत होगा सभी विचार गत समत्व की अनुभूति जीवन में करते हैं। इसी समत्व के आधार पर ही तो बड़े-बड़े राजनैतिक-सामाजिक दल बनाए जाते हैं जो महान कार्य करते हैं। बौद्धिक समन्वय संभव भी है और इसका अबाध महत्व भी। साहित्य में भी इसकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः साधारणीकरण बुद्धिगत भी हो सकता है।

यहाँ यह शंका उठ सकती है कि यदि साहित्य में बुद्धिगत साधारणीकरण को मान लिया गया तो राजनैतिक दलों और दार्शनिक मतवादों में भी तो यह संभव है। फ़िर साहित्य में और राजनीति या दर्शन में क्या भेद रह जाता है ?

समत्व साहित्य का प्राण है। समत्व और एकांगिता में कटु विरोध है। अतः साहित्य की दूसरी प्रधान विशेषता हुई उसकी उदारता उसकी स्वर्थहीनता और यही विशेषता उसे दर्शन या राजनीति के दलों से अलग करती है। सभी राजनैतिक दल या दार्शनिक संप्रदाय एकांगी होते हैं। उनकी अपनी सभी मान्यताएँ सत्य हैं और जो इसके बाहर है वह सभी झूठ और त्याज्य। आज-कल ऐसी एकांगिता साहित्य में बहुत भरी जा रही है। मार्क्सवादी साहित्य-कार और आलोचक एकांगी हैं, उनकी कृतियों में स्वार्थहीनता नहीं है, इसीलिए वह राजनीति से अभिन्न है और कुछ ऐसे भी साहित्यकार और

आलोचक हैं जिन्होंने मार्क्सवाद के उपयोगी तत्वों को अपनाया है। पन्त ने भी ऐसा ही किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुद्धिगति साधारणीकरण के मान लेने से साहित्य के सच्चे रूप और प्राण को अधिक शक्ति और पुष्ट आधार मिलता है। गम्भीर दृष्टि से आज के साहित्य का अवलोकन करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धिक साधारणीकरण को साहित्य और साहित्यकार स्वीकार कर चुके हैं। आलोचक को इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर साहित्य के एक स्थायी मानदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित करना है। साहित्य में भाव की अपेक्षा बौद्धिकता प्रधान होती जा रही है। जब साहित्य में भाव का साम्राज्य था जब भावगत साधारणीकरण मान्य हुआ। आज भी रसीले साहित्य के लिए इस कसौटी का प्रयोग होता है। आज साहित्य में बौद्धिकता प्रधान है, तब बुद्धिगत साधारणीकरण के प्रतिपादन और स्वीकृति की आवश्यकता प्रतीत हूई। इस सत्य कों न समझने वाले प्रायः कहा करते हैं कि कविता का युग समाप्त होरहा है। यह भ्रान्त धारणा हैं जो अधपचे चिन्तन का परिणाम है। कविता का युग न ही समाप्त हुआ है और न ही होगा। कविता नई प्राण-शक्ति में उल्लसित हो रही है। काव्य-दर्शन में आमूल परिवर्तन हो रहा है।

काव्य के अन्तरंग का यह ह्रास और विकास सदैव से चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल में कविता का विषय वीर भावना थी। भक्तिकाल में बदलकर वह भक्ति हुई। रीतिकाल में श्रृङ्गार और आधुनिक काल में जो कुछ भी सुन्दर और ग्राह्य था वह सभी काव्य के अन्तरंग में समाता जा रहा है। यह काव्य के विकास का परिचायक है। उसकी सामर्थ्य का बढ़ना लोक के कल्याण के लिए ही है। कोई समय था जब केलि-क्रीड़ा के नग्न चित्र साहित्य में प्रस्तुत किए जाते थे। उन्हें गन्दगी कहा गया, पाप कहा गया। इधर फ्रायडवादी लेखकों ने फिर वही तमाशे आरम्भ किए। उनका कटु विरोध हुआ, और हो रहा है। युग की धारा बदलती है, जीवन-क्षेत्र के उपेक्षित प्राङ्गण सिंचित हो काव्य-प्राङ्गण में लहलहा उठते हैं। इस विकास क्रम को समझना चाहिए।

सूक्ष्म चिन्ताओं का आलम्बन रूप में ग्रहण करने और बुद्धिगत साधारणी

करण को मानने में एक भ्रान्ति भी बाधा बन सकती है। वह है बुद्धि की अपेक्षा हृदय का श्रेष्ठ समझना। इस भ्रान्तधारणा के पोषक प्रसाद की कामायनी का आधार लेंगे, पन्त की उक्तियों का आधार लेंगे, किन्तु उन्हें यह समझना चाहिए कि जहाँ-जहाँ भी सूक्ष्म-चेताओं ने बुद्धि को निकृष्ट बताया है, वहाँ वह बुद्धि का अर्थ वह नहीं लगाते जो उपरोक्त धारणा के पोषक लगाएँगे। जो बुद्धि शुद्ध श्रद्धा को कुण्ठित करदे, जो तर्क प्रशस्त विश्वास को खण्डित करदे वह अवश्य त्याज्य है। किन्तु बुद्धि और हृदय के सामरस्य की बात ऊपर भी कही गई है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पुरुष बुद्धि का प्रतीक है, नारी हृदय की प्रतीक है। जिस प्रकार नारी और पुरुष के मधुर-मिलन से जीवन लहलहा उठता है उसी प्रकार बुद्धि और हृदय के प्रिय सामरस्य से ज़ीवन प्रबुद्ध हो उठता है। आज के युग में इसी प्रबोधन की आवश्यकता है। और वह तभी अवतरित होगा जब बुद्धि और हृदय का संघर्ष मिट जाएगा, जब दोनों का ग्रन्थि-बन्धन हो जाएगा। इसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में भी जब भावगत साधारणीकरण और बुद्धिगत साधारणीकरण दोनों एक दूसरे के पूरक मानों के रूप में ग्रहण कर लिए जायँगे, तभी साहित्य के विशद्, पूर्ण एवं प्रांजल स्वरूप का विकास होगा। पन्त के स्वर्ण-काव्य और उत्तरा आदि परवर्ती रचनाओं का सही मूल्यांकन तभी होगा, जब इन दोनों सिद्धान्तों पर उसे कसा जाएगा।

रसानुभूति और बौद्धिक सहानुभूति

अब हमें यह देखना है कि पन्त के व्यक्तित्व के विकास का कवि के राग तत्व पर क्या प्रभाव पड़ा है। साहित्य का प्राण जीवन है। यदि जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाए तो स्वाभाविक है कि साहित्य का स्वरूप भी बदल जाएगा।

"वीणा"—'वीणा' में कवि का सर्व प्रथम प्रयास है। उसमें न तो जीवन की विभिन्नता के दर्शन की आशा की जा सकती है और न ही किसी विशिष्ट बौद्धिक जागरण की। इन रचनाओं में कवि का प्रकृति-प्रेम अत्यन्त सरलता से व्यक्त हुआ। बचपन की स्वाभाविकता में ही कवि के हृदय में कुछ

आदर्शों के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। उनकी पूर्ति के लिए वह प्रार्थना करता है। विनम्र स्वरों और प्रकृति के चित्रण में रस सी गहराई नहीं है किन्तु भाव सी मोहकता अवश्य है। इस संग्रह में जिन गीतों में सबसे अधिक प्रभावात्मकता दिखाई देती है, वह हैं इनके रहस्यात्मक स्पर्श से अनुप्राणित गीत। कवि ने अपने को बालिका के रूप में चित्रित किया है। उस समय कवि का जीवन एकाकी एवं असङ्ग था। स्वभावतः उसे किसी साथी की कामना सताने लगी। वह बालिका के मृदुल स्वरों में अज्ञात प्रीतम को पुकारने लगा। इन स्वरों का कोमल माधुर्य्य अनन्य है। पवित्र प्रेम की यह किरण ग्रन्थि में प्रणय के वेग से प्रखर हो उठी। माँ को सम्बोधित कर लिखे हुए गीत भी पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। वीणामें रसानुभूति की गम्भीरता नहीं वरन् मनोहर स्थायित्व है। स्थायित्व का कारण है मानव-जीवन की सहज भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति। गम्भीरता के अभाव का कारण भी यही बचपन की सरलता है। वीणा की इन चार पंक्तियों में कवि ने अपने मानसिक दृश्य का सच्चा चित्र खींचा है—

स्वप्न देखती थी मैं मादक,
किन्तु अचिर, अस्फुट सुखमय,
लता कुञ्ज में सोई हूँ मैं,
सुरभित सुमनों पर निर्भर।

"ग्रन्थि और पल्लव—वीणा की मृदुल झङ्कार ग्रन्थि में सशक्त राग बनकर प्रकट हुई। ग्रन्थि में रसानुभूति पूरी-पूरी मात्रा में मिलती है। मिलन का माधुर्य्य भी है, प्रेम का सौन्दर्य भी है और वियोग का गाम्भीर्य भी है। प्रेम की असफलता ने हृदय की गम्भीरता को जगाया जिसे हृदय ने वाणी में सँजो दिया। 'पल्लव' में ग्रन्थि का वियोग-गाम्भीर्य कला के वैभव एवं प्रकृति के ऐश्वर्य की गोद पाकर और भी निखर उठा। वियोग की आग और भी चमक उठी। अनुभूति तीव्रतम हो उठी। विराट जीवन के अबाध परिवर्तन के प्रति उद्बुद्ध कवि की सजगता "परिवर्तन" में सघन हो उठी। "निष्ठुर परिवर्तन" में कला का चरमोत्कर्ष है। वैसे सारी कविता में अनुभूति की तीव्रता है।

"गुंजन"—'गुञ्जन में कवि अपने व्यक्तित्व से बाहर झाँकता है। 'परिवर्तन' की बहिर्मुखी-प्रवृत्ति में तूफान सा भयंकर वेग था। उसे सन्तुलित करने की आवश्यकता थी। 'गुञ्जन' में यह आवश्यकता पूर्ण हुई। उसमें 'पल्लव' सी रस-सघनता तो नहीं है, किन्तु विषय की व्यापकता अवश्य है। पल्लव में हृदय ने बुद्धि को दबा लिया था। 'गुञ्जन' में बुद्धि उभरने लगी थी किंतु हृदय को दबाने के लिए नहीं वरन् अपना सहज गौरव प्राप्त करने के लिए। हृदय का अबाधित सञ्चरण भी कुछ कविताओं में मिलता है। वह स्वाभाविक है। कई रचनाओं में बुद्धि ने हृदय की शक्तियों को व्यापकता प्रदान की है। 'तप रे मधुर-मधुर-मन' में हृदय की विश्व-करुणा का आधार बुद्धि ही है। कहीं भी बुद्धि ने हृदय को आक्रान्त कर अपने आप को भ्रष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया है। 'गुञ्जन' में अनुभूति उद्बोधन की किरणों से मण्डित है। 'पल्लव' पाठक के स्वार्थ व्यक्तित्व को गला देता है, किन्तु उसका परमार्थ-व्यक्तित्व में परिणय गुञ्जन में ही आकर होता है। बौद्धिक चिन्ताएँ साहित्य के हृदय को कैसे शक्ति प्रदान करती हैं, यह 'गुञ्जन' में ("एक तारा", "नौका विहार" आदि में) देखा जा सकता है। 'गुञ्जन' में अनुभूति की गम्भीरता उदात्त हो उठी है।

'युगान्त,' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या'

'गुजन' में कवि हृदय ने व्यक्ति से बाहर झांका है, संसार के कल्याण की कामना भी की है, किन्तु वह वस्तु स्थिति के अध्ययन की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ। यह हृदय का काम भी नहीं है। यथार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि कवि हृदय पर नहीं बुद्धि पर अधिक विश्वास करे। उसने ऐसा ही किया। उसकी समीक्षात्मक चेतना संसार में उन्मुक्त संचरण करने लगी। हृदय पीछे छूटने लगा। यथार्थ के सत्य-ज्ञान के लिये यह अपेक्षित भी था। 'युगान्त' से 'युगवाणी' और 'युगवाणी' से ग्राम्या में हृदय निरंतर दबता गया, छिपता गया। 'युगान्त' में कवि के हृदय-युग का प्रायः अन्त हो गया, 'युगवाणी' में युग को बुद्धि की वाणी प्राप्त हुई, जो 'ग्राम्या' में ग्रामिणों तक सीमित हो गई। ग्राम्या की भूमिका में ही कवि ने

गाँव के यथार्थ के प्रति अपनी बौद्धिक सहानुभूति की बात की है। बौद्धिक सहानुभूति का रूप समझना होगा।

प्रश्न होता है कि बौद्धिक सहानुभूति और हार्दिक-सहानुभूति में क्या भेद है? इसमें पहली बात तो यह समझने की है कि जिसके साथ हमारे हृदय का पूरा-पूरा लगाव है, उसके दुख में हमें उससे हार्दिक सहानुभूति होगी। जिसके साथ हमारा सन्बन्ध हृदय तक नहीं पहुँचा, केवल बुद्धि तक--व्यवहार-ज्ञान तक ही रहा है, उसके दुख में हमें उससे बौद्धिक सहानुभूति ही होगी। तो क्या पन्त के हृदय का ग्राम्य जीवन से भीतरी लगाव नहीं है? नहीं, बिल्कुल नहीं। क्योंकि यदि ऐसा होता तो 'प्रतिक्रियात्मक साहित्य' का ही जन्म होता और फिर ग्राम्य-जीवन की वर्तमान सिद्धान्तहीन, अतिनैतिक, अन्ध विश्वासी अवस्था के साथ किसके हृदय का लगाव हो सकता है? कवि ने ग्रामीण-जीवन को जीवन के रूप में नहीं जर्जरित निष्प्राण आदर्शों के खण्डहर के रूप में देखा है। उससे हृदय का लगाव कैसा?

बौद्धिक सहानुभूति की उपरोक्त मीमांसा में कोई यह दोष निकाल सकता है कि वह केवल दिखाने की चीज है, केवल एक बिडम्बना मात्र है। इस दोष का सही निराकरण करने के लिये हमें केवल बौद्धिक सहानुभूति जो एक सूक्ष्म मनोदशामात्र है, में नहीं उलझे रह जाना चाहिए। हमें बौद्धिक सहानु-भूति करने वाले व्यक्ति तक बढ़ना पड़ेगा। बौद्धिक सहानुभूति व्यक्ति के स्वभाव का परिचय नहीं देती, वरन् व्यक्ति का स्वभाव ही बौद्धिक सहानुभूति के स्वरूप को निर्दिष्ट करता है। किसी ओछे व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित बौद्धिक सहानुभूति एक पाखण्ड मात्र होगी। कवि पन्त द्वारा प्रदर्शित बौद्धिक सहानु भूति का एक निराला मूल्य है क्योंकि यही आगे चलकर लोक की मङ्गल साधना में प्रतिफलित होती है। ग्रामीणों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करने वाले पंत के विरुद्ध तो बहुत से आलोचक उठ खड़े हुए, किन्तु आज ऐसे भी बहुत से महानुभाव हैं जिन्हें जनता के प्रति केवल शाब्दिक सहानुभूति है। उनका क्या किया जाय?

एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह सामने आता है कि क्या बौद्धिक-सहानुभूति में हृदय बिल्कुल दबा रहता है ? शब्दों पर ध्यान देने वाले तो कहेंगे कि जब सहानुभूति है ही बौद्धिक तो फिर उसमें हार्दिकता का सवाल ही क्या है। किन्तु यह अमान्य है क्योंकि केवल शब्द के आधार पर निर्णय देना नासमझी का काम है। मनोवैज्ञानिक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि इसमें रागात्मकता भी रहती ही है। मानव के भीतर बुद्धि और हृदय के दो कटघरे नहीं हैं। दोनों चेतना की दो सरणियाँ है, अतः मूलतः एक ही हैं। किसी की बुरी दशा देखकर हृदय पर प्रभाव पड़ता ही है। यह प्रभाव ही सहानुभूति है। किन्तु जब मानव इसी में न डूबकर, उस बुरी दशा के कारणों का विश्लेषण करने में तत्पर होता है तो तभी इस हृदय की सहानुभूति में बौद्धिकता मिल जाती है और बौद्धिक सहानुभूति का उदय होता है। यहाँ बुद्धि दो काम करती है। एक तो उस बुरी-दशा के कारणों पर विचार करती है, और दूसरा उसके नाश के उपाय सोचती है और नवीन कल्याणमय दशा का निरूपण करती है। बुद्धि के ये दोनों व्यापार पन्त साहित्य में देखे जा सकते हैं। पाठक को 'ग्रामचित्र' आदि रचनाओं में भावानुभूति होती ही है। यह ठीक है कि वह सघन नहीं है और ऐसी कविताएँ भी कम हैं।

"स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा' आदि परवर्ती काव्य

जिस प्रकार 'युगान्त', 'युगवाणी और 'ग्राम्या' में बुद्धि के प्रथम व्यापार का प्रसार है, उसी प्रकार 'स्वर्णकिरण' आदि परवर्ती काव्य में उसके दूसरे व्यापार का। वैसे तो 'युगान्त' आदि में ही कवि भविष्य निर्माण के उपकरणों का संग्रह करता दिखाई देता है किन्तु उनका पूर्ण प्रकाश परवर्ती काव्य में ही बिखरा दिखाई देता है। इस काव्य का सही मूल्यांकन केवल भावगत- साधारणी करण ही नहीं कर सकता। इसके लिए बुद्धिगत साधारणीकरण का प्रयोग करना पड़ेगा। जब कि कवि द्वारा प्रस्तुत आलम्बन का आधार सूक्ष्म बौद्धिक-चिन्ताएँ हैं तो फिर उसे भाव पर परखाना असङ्गत है। शास्त्रीय-सिद्धान्तों की कसौटी सुनार की कसौटी नहीं है जो सब प्रकार के सोने के मूल्य से अवगत करा दे। साहित्य कसौटी के लिए नहीं है, कसौटी साहित्य के लिए है।

प्रणय और प्रेम

मानव को प्रणय दान देने का अधिकार है, प्राप्त करने का नहीं। वह किसी को प्रणय या प्रेम के आदान के लिए विवश नहीं कर सकता। पुष्प पवन को सुरभि बाँट सकता है, उससे प्राप्त नहीं कर सकता। मानव जीवन में यह आदर्श निसर्गतः प्रतिष्ठित है। द्वाद्वात्मक भौतिकवाद या ऐतिहासिक यथार्थवाद इसकी व्याख्या नहीं कर सकता। यदि वह इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न करता भी है, तो प्रणय वासना के मृत रूप में परिवर्तित हो जाता है। जैसे ही वैज्ञानिक जीवन-तत्व (Protoplasm) के रहस्य की जानकारी के लिए प्रयोग आरंभ करता है, वह मर जाता है।

'वीणा' में कवि प्रणय के वास्तविक रूप से अनभिज्ञ है। रहस्यात्मक गीतों में धूमिल प्रणय के हल्के उद्‌गार दिखाई देते हैं। इस संग्रह में प्रेम (मानव-प्रेम) का स्वरूप अधिक निर्दिष्ट है। इसका स्फुरण कवि के आदर्शों के रूप में सञ्चित है। प्रार्थना है—

कुमुद कला बन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर मा।
जग का तिमिर त्रास हरदूँ—
नीरव रजनी में निर्भय! पृ० ४.

बिल्कुल इससे मिलते-जुलते उद्‌गार 'युगान्त' के 'कलरव' में और ग्राम्या की 'वाणी' में प्रस्फुटित हुए हैं।

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छबि।
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात, फिर आवें रवि।" कलरव

ज्योतित कर जन मन के जीवन का अन्धकार,
तुम खोल सको मानव उर का निःशब्द द्वार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!—वाणी ३५

आगे चलकर भी कवि लोक के मङ्गल विधान की कामना करता है। यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि वीणा से लेकर उत्तरा युगपथ और आगे तक भी कवि की विचार धारा में एक साम्य है और वह है मानव प्रेम का।

ग्रन्थि और पल्लव में प्रेम के स्वर को प्रणय के नाद ने डुबो दिया। यह कवि की असफलता नहीं है। यह मानव जीवन की एक स्वाभाविक घटना है। वाला का तिरस्कार कर प्रकृति प्रेम में लीन रहने की कामना करने वाला व्यक्ति प्रेम की लहरों में बेसुध होगया। प्रकृति पीछे पड़ गई। नारी-सुषमा प्रधान हो गई। स्वभावतःही प्रणय का नशा चढ़ने पर प्रकृति और संसार बिलीन हो जाते है। प्रणय की असफलता ने जलते में घी का काम किया। कोमल हृदय रो उठा। प्रणय की असफलता के लिए भी कहा जा सकता है विरह है अथवा यह वरदान! एक ओर जहाँ इस निराशा ने कवि को संसार से विमुख कर दिया, वहाँ उसकी खोई हुई शक्तियों को झकझोर दिया। कला भी निखर उठी और भाव भी। रूप भी लहरा उठा और हृदय भी। बौद्धिक चेतना अभी सोई हुई थी। कवि के लिए दूसरा आघात था विश्व की क्षणभंगुरता का अट्टहास। इसने कवि की बौद्धिक चेतना को भी जगा दिया। फलतः गुञ्जन में हृदय की झंकार भी मिलती है, और बौद्धिक चेतना की प्रार्थना भी। गुंजन में एक ओर तो कवि ज्योतिर्मय जीवन से 'जग के उर्वर आँगन' में वरसने की प्रार्थना करता है, मन को 'विश्ववेदन' में प्रतिपल तपने की प्रेरणा देता है, तो दूसरी ओर कामिनी से यह विनम्र अनुरोध भी करता है कि 'आज रहने दो यह ग्रह काज।' किन्तु यह सत्य है कि यहाँ ग्रंथि पल्लव जैसा प्रणय का उच्छ्वसित वेग नहीं हैं। हाँ प्रार्थना का स्वर तो वही हैं जो वीणा में है किन्तु अधिक सुरीला और निखरा हुआ।

वीणा से लेकर गुञ्जन तक कवि प्रणय और प्रेम की भावनाओं में ही लीन रहा। उसने इन दोनों के आलम्बनों—नारी और मानव की यथार्थ दशा का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। अभी तक उसकी बहिर्दृष्टि में तीव्रता नहीं आई थी। उसका अन्तर्मन अवश्य विकसित हो चुका था। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि बाह्य निरीक्षण की गहराई या व्यापकता के अभाव के कारण कवि की रचनाओं के मूल्य में कोई कमी नहीं हुई।

क्योंकि अनुभूति का अपना निजी मूल्य होता है। भक्त की अनुभूति ही उसे इतना दिव्य बना देती है कि उसे पत्थर में भी भगवान के दर्शन होने लगते हैं।

युगांत से लेकर ग्राम्या तक कवि ने सजग होकर वहिरंग जीवन की अवस्था व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। प्रणय की आलम्बन नारी की दशा भी देखी और प्रेम के आलम्बन का रूप भी समझा। गत युगों में पुरुष ने नारी को जड़-उपयोगी पदार्थ के समान ही पाल रखा था। वह पुरुष की तुष्टि का साधन मात्र बन कर रह गई थी। पुरुष के सभी विधानों ने नारी परतंत्रता की महिमा गान की। राजनीति ने नारी को दबाया, धर्म ने उसे कुचला-समाज ने उसे मिटा देने का प्रयत्न किया। मानव यह भूल गया कि नारी का भी समाज में कुछ स्थान होता है। नारी की इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व मनुष्य पर है। इसी लिये कवि पुकार उठता है कि अब नारी को मुक्त करो और अब उसे भी अपनी सत्ता और शक्ति को समाज के कल्याण में लगाने दो।

इसी प्रकार मानव भी अपनी दुर्बलताओं के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। अन्धविश्वासों ने उसे जकड़ लिया है। वासना ने उसे वीर्य-हीन कर दिया है। ईर्ष्या-द्वेष से उसका हृदय मलिन हो गया है। वाद-विवाद से उसकी बुद्धि कुठित हो गई है। आलस्य ने उसमें जड़ता भर दी है। बहिरंग और अन्तरंग जीवन के अभावों की चक्की में वह पिसता जा रहा है। मानव की सफलताएँ ही उसके लिये घातक बन रही है। इतना ही नहीं, प्रकृति की भयंकरता भी क्षण-क्षण मानवता को ग्रसती जा रही है। मानव का कल्याण हो तो कैसे? पन्त प्राचीन, अर्वाचीन, देशी-विदेशी सभी विचार-धाराओं के आश्रय में जाता है किन्तु मानव-मुक्ति का द्वार कहाँ प्राप्त हो? कभी वह अद्वैतवाद—मार्क्सिवाद के समन्वय की बात कहता है, कभी गाँधीवाद मार्क्स-वाद के समन्वय की बात कहता है, और कभी अध्यात्मकवाद भूतवाद के समन्वय की बात कहता है। अन्त में अरविंद के दर्शन में उसे मानव मुक्ति के दर्शन होते हैं। उस मुक्ति के क्रम और भावी मुक्त-समाज का विशद चित्रण ही कवि का उद्देश्य बन गया जो स्वर्णकिरण और बाद की रचनाओं में मुखरित हुआ।

चिन्तन

साहित्य और दर्शन

साहित्य और दर्शन दोनों का उद्देश्य एक है—जीवन की व्याख्या करना। दोनों के रूप में जो भेद दिखाई देता है, उसका कारण है दृष्टिकोण की विभिन्नता। साहित्य जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण रखता है यद्यपि यह सत्य हैं कि उसमें बौद्धिकता का भी समावेश रहता है। दर्शन जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण रहता है। बर्गसां और श्री अरविन्द आदि कुछ ऐसे भी दार्शनिक हैं जो बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्त्व देते हैं किन्तु इस दृष्टिकोण का आधार भी बुद्धि ही है। इसके साथ ही साथ यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि साहित्य का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार होता है जबकि दर्शन एक बँधी हुई परिपाटी पर चलता है। संसार की किसी भी भाषा का साहित्य मनुष्य के लिए आकर्षण का विषय हो सकता है और होता है। किन्तु दर्शन के भीतर अनेक मत हैं जिनका एक दूसरे से विरोध है। इस-लिए दर्शन के किसी भी एक विशिष्ट मत को वह विश्वजनीन स्वीकृति प्राप्त नहीं हो सकती, जो साहित्य की निसर्ग सिद्ध विशेषता है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव में विकास होता रहता है। शारीरिक विकास की अपेक्षा मानसिक विकास कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में किसी भी व्यक्ति का मानसिक जीवन ही उसका सच्चा जीवन है। बाह्याचार उसी की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रस्तुत लेख में हमें कवि पन्त के मानसिक विकास का संक्षिप्त परिचय देना है। 'पल्लव' तक का काव्य कवि के 'हृदय का काव्य' है। उसके पश्चात् बौद्धिक जागरण का काल आता है। 'गुञ्जन' संक्रान्ति काल की—हृदय से बुद्धि की ओर प्रगति के अवसर की—रचना है। 'युगांत' से लेकर 'ग्राम्या' तक के काल को मैं कवि का अध्ययन काल मानता हूँ, जिसका पूर्णपरिपाक परवर्त्ती काव्य में हुआ। 'गुञ्जन' के काल के पश्चात् कवि पर अनेक सिद्धान्तों और वादों का प्रभाव पड़ा है। विद्वानों को कवि के

इस मानसिक विकास में अन्तर्विरोध दिखाई देता है। कवि उसे विकास के प्रकाश में दिखाने की चेष्टा करता है। विकास की पूर्ण-गतिविधि का विश्लेषण आगे किया जाएंगा। किन्तु एक बात कवि में प्रत्येक काल में दिखाई देती है। वह है उसका दर्शन के प्रति मोह—विशेष रूप से प्राचीन भारतीय दर्शन के प्रति। इसके अतिरिक्त कवि ने आधुनिक दर्शन का भी अध्ययन किया है। दर्शन के इतने विविध रूपों का सम्मिलन हिन्दी के किसी भी अन्य कवि में दिखाई नहीं देता। इसीलिए आरम्भ में ही दर्शन के सामान्य रूपों का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

दर्शन के दो रूप

संसार में हम जो कुछ भी देखते हैं, उसे दो प्रधान तत्त्वों में बाँट सकते हैं। एक है पदार्थ (matter) और दूसरा है चेतना (consciousness)। अब दो प्रश्न उठते हैं। प्रथम क्या ये दोनों सत्य है ? द्वितीय क्या इनमें से कोई एक प्रधान है और दूसरा गौण ? कपिल, देकार्त आदि अनेक दार्शनिक दोनों को समान रूप से सत्य मानते हैं। दूसरे प्रश्न के दो उत्तर हो सकते हैं। एक तो यह कि चेतना प्रधान है और पदार्थ गौण, या मिथ्या है। (हीगेल पदार्थ को गौण और शंकर उसे मिथ्या मानता है।) दूसरा यह कि पदार्थ ही प्रधान है और चेतना उसकी उपज है। (मार्क्स यही मानता है।) इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन में दो प्रधान गुट हो सकते हैं। एक तो वह जो चेतना के महत्व पर बल देता है और दूसरा वह जो पदार्थ को चेतना से ऊपर ठहराता है। प्रथम अध्यात्मवादी गुट है और दूसरा भौतिकवादी। इसी बात को फ्रेडरिक एंजल्स (Frederick Engels) ने इस प्रकार कहा है—"The great basic question of all philosophy, especially of more recent philosophy, is that concerning the relation of thinking and being.........spirit to nature.......which is primary, spirit or nature ....The anwers which the philosophers gave to this question split them into two great camps" (i. e. Idea-

lism and Materialism) इन दो अवस्थाओं के अतिरिक्त एक तीसरी अवस्था भी हो सकती है जिसमें कि चेतना और पदार्थ दोनों को ही अज्ञात मान लिया जाता है। यह शून्यवाद है। एंजल्स इससे परिचित नहीं था।

यह तो हुआ दर्शन का एक मूल प्रश्न कि सत्य क्या है ? अब दूसरा प्रश्न सम्मुख आता है कि सत्य कैसा है ? दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय इस प्रश्न के उत्तर में कहता है कि सत्य विकासशील है। दूसरा दल यह कहता है कि सत्य अचल एवं स्थाणु है। दूसरे दल के सभी दार्शनिक अध्यात्मवादी है। सत्य के विकासशील मानने वाले दार्शनिकों में भी दो दल हैं। पहला तो उन दार्शनिकों का जो पदार्थ को प्रधान मानते हैं। इनका सिद्धान्त भौतिक विकासवाद है। दूसरा उन विचारकों का जो चेतना को प्रधान मानते हैं। इनका सिद्धान्त आध्यात्मिक या चेतन विकासवाद है। डार्विन और मार्क्स भौतिक विकासवादी हैं। हीगेल और श्री अरविन्द आध्यात्मिक विकासवादी हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न दार्शनिकों में समन्वय की प्रवृत्ति भी रही है। हीगेल और श्री अरविन्द ने पदार्थ और चेतना के कटु विरोध को दूर कर उनके समन्वय का प्रयत्न किया। श्री अरविन्द ने विकास और अचलता के समन्वय का भी प्रयत्न किया है।

कवि को प्रभावित करने वाले स्रोत

दर्शन की सामान्य विवेचना के पश्चात् कवि को प्रभावित करने वाले स्रोतों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है। यह ऊपर कहा जा चुका हैं कि कवि देशी-विदेशी अनेक सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। यहाँ केवल उन्हीं सिद्धान्तों और स्रोतों के विषय में कहा जाएगा जिनका कवि की कृतियों पर सघन प्रभाव पड़ा है। वे हैं—उपनिषद् दर्शन, अद्वैतवाद, स्वामी विवेकानन्द, मार्क्सवाद, गांधीवाद और श्री अरविन्द का दर्शन। इसके अतिरिक्त हीगेल के दर्शन से भी कवि प्रभावित हुआ है। किन्तु उसके स्वतन्त्र विवेचन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसका प्रभाव श्री अरविन्द के प्रभाव में ही अन्तर्भूत हो जाता है।

१—उपनिषद् दर्शन

उपनिषद् सूर्य के समान हैं जिन्होंने न जाने कितने चन्द्रमा जैसे नक्षत्रों को ज्योतित किया है। भारतवर्ष में जितने भी चिन्तक हुए, वे सभी किसी न किसी रूप में उपनिषदों से प्रभावित हुए। विरोधी दार्शनिक मत भी उपनिषदों को ही अपना आधार बनाने में समर्थ होते हैं। इसके कारण यह हैं कि न तो वे किसी एक व्यक्ति की रचना है, न ही एक युग में उनका निर्माण हुआ, और न ही उनका उद्देश्य किसी सम्बद्ध दर्शन-मत की स्थापना करना रहा है। एस० राधाकृष्णन ने लिखा है—"The aim of the upanisads is not so much to reach philosophical truth as to bring peace and freedom to the anxions human spirit." उपनिषदों का उद्देश्य व्यग्र आत्मा को शान्ती और स्वाधीनता प्रदान करना है। यही कारण है कि आज तक उनका महत्व अक्षुण्ण है।

उपनिषदों का उद्देश्य क्या है? सत्य का साक्षात्कार—सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। साधन क्या है? सत्य—"सत्यमेव जयति नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयों ह्याप्त कामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्" सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं—सत्य से ही देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्तकाम ऋषि लोग उसको प्राप्त होते हैं जहाँ उस सत्य का परम निधान है—(मुण्डकोपनिषद् ३-१-६) साधक उसे कैसे प्राप्त कर सकता है? सत्य रूप होकर—यस्तू विज्ञान वान्भवति समनस्कः सदा शुचिः (कठोपनिषद् १-३-८) सारे उपनिषदों का सार यही है कि साधक सत्य स्वरूप होकर, सत्य के मार्ग पर आरूढ़ होकर सत्य तक पहुँचता है।

केनोपनिषद् का आरंभ ही इस जिज्ञासा से होता है "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः" आदि। श्वेताश्वतरोपनिषद् का आरंभ भी 'किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता' (संसार का कारण ब्रह्म कैसा है? हम कहाँ से उत्पन्न हुए?) आदि जिज्ञासा से हुआ है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक ही है और वह है ब्रह्म।

संशयात्मा यह सुनकर चौंक उठेंगे। किन्तू उन्हें यह समझना चाहिए कि तर्क से भी बढ़कर एक प्रमाण है और वह है अनुभव। उपनिषद में बुद्धि की शंकाओं का-तर्क का समाधान अनुभव द्वारा ही किया गया है।

ब्रह्म कैसा है ? इसका एक उत्तर यही है कि वह अवाङ्मनस गोचर है। यह बात उपनिषदों में स्थान-स्थान पर कही गई है। केनोपनिषद् के यक्षो-पाख्यान में, तथा न तत्र चक्षुगच्छतिन वाग्गच्छति," (१-३-) यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्" १।४ आदि मन्त्रों में यह बात स्पष्ट की गई है। तो वह कैसे प्राप्त होता है ? 'यमेवैष विवृणुते तेन लभ्यः" (कठोपनिषद १-२-२३) जिसे वह स्वयं वरण करता है, वही उसे जान सकता है। गुरु से ज्ञान प्राप्ति का भी आदेश दिया गया है "तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्" मुण्डको-पनिषद् १-२-१२

इसके बाद प्रश्न यह होता है ब्रह्म और जगत तथा ब्रह्म और आत्मा में क्या सम्बन्ध है ? कहीं जगत को ब्रह्म कहा गया है (पुरुष एवेदं विश्वं, कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्—मुण्डकोपनिषद् २ १-१०), कहीं जगत को ब्रह्म का निवास कहा गया है—(ईशवास्यकिमदं सर्वं—ईशो० १) और कहीं जगत को ब्रह्म का "हिरण्यमय पात्र" (ईश० १५) कहा गया है। माण्डूक्यो-पनिषद् में आत्मा को ब्रह्म कहा गया है— (सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतूष्पात् । (माण्डुक्य०-२) । और कभी ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार मानी गई है जिस प्रकार अग्नि से चिंगारियाँ निकलती हैं जो फिर उसी में विलीन हो जाती हैं। (मुण्डको० २-१-१)

आज विज्ञान के युग में इस सारे विवेचन को मानने में अनेक बाधाएँ हैं। किन्तु यदि इस सत्य को स्वीकार कर लिया जाए कि अनुभव तर्क से कहीं अधिक विश्वासनीय है, तो यह सारे विघ्न दूर हो जाएँगे। कवि पन्त आरंभ से ही आस्तिक रहा है। इसके लिए उपनिषदों में स्वाभाविक आकर्षण है।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जीव को साधना करनी पड़ती है। आज का बुद्धि जीवी प्राणी भी इस साधना के महत्व को अस्वीकार नहीं कर सकता। उपनिषद् का ऋषि उद्बोधन का आह्वान करता है—

उत्तिष्ठत जाग्रत, वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया ।
दुर्गं पथस्तत्कवयनो वदन्ति ॥ कठो १-३-१४

इस मन्त्र की शक्ति से कौन इन्कार कर सकता है ? आलस्य अविवेक

आदि दुर्गुणों की निन्दा की गई हैं। ये सफलता के शत्रु हैं। मनुष्य और मनुष्य की एकता की दृढ़ प्रतिष्ठा उपनिषदों में मिलती है। यह समत्व आज के मानव का सबसे बड़ा स्वप्न है। उसी ने पंत को विशेष प्रभावित किया।

(२) अद्वैतवाद–वेदांत सूत्र गीता और उपनिषद प्रस्थानत्रयी का आधार लेकर शंकराचार्य ने अद्वैतमत की प्रतिष्ठा की। अद्वैतवाद के सूक्ष्म विवेचन और सम्बद्ध विश्लेषण का ही चमत्कार है कि उपरोक्त तीनों ग्रन्थ पीछे पड़ गए और अद्वैतवाद प्रधान होगया। यद्यपि अन्य आचार्यों ने प्रस्थान त्रयी के आधार पर अद्वैत के खण्डन का प्रयत्न किया किन्तु उसकी महत्ता कम नहीं हुई। आज भारत के अधिकाँश विचारक अद्वैतवाद की भूमिका पर ही इन तीनों ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं।

अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म एकमात्र सत्य है। आत्मा भी ब्रह्म है और जगत भी। किन्तु जीव अपने को ब्रह्म नहीं समझता। वह दुखी रहता है, मृत्यु से डरता है, परिवर्तनशील है, नाशवान है, फिर वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्म कैसे हो सकता है? इन सभी मुसीबतों का कारण है अविद्या या माया कृत अभ्यास। जीव अपने को बंधा हुआ, और मर्त्य समझने लगता है। जब कि वास्तव में वह ब्रह्म ही है। इस बात को समझाने के लिए हार के खो जाने का दृष्टान्त दिया जाता है। किसी स्त्री ने हार पहना हुआ था। किन्तु वह भूल गई और समझी कि वह कहीं खो गया है। वह उसे ढूँढ़ने लगी। किंतु वह मिलता कैसे? वह बहुत दुःखी होकर रोने लगी। किसी ने उसे बताया कि हार तो गले में ही है। वह प्रसन्न होगई। अब देखिए कि क्या उस स्त्री का हार कहीं उससे दूर था? क्या उसे वह कहीं बाहर से प्राप्त हुआ? क्या उसे प्राप्त करने के लिए उसे कोई कर्म करना पड़ा? नहीं। हार तो पहले से ही था। केवल वह भ्रम में थी कि हार उसके पास नहीं है। जैसे ही उसे उसकी सखी ने बताया, उसे ज्ञात हुआ कि हार तो उसके पास ही है। इसी प्रकार जैसे ही गुरु अधिकारी शिष्य से कहता है "तत्त्वमसि" (वह तुम हो) उसे ज्ञान हो जाता है। ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती वह तो जीव है ही। केवल वह अपने यथार्थ ज्ञान को खो बैठता है अर्थात् माया में डूब जाता है। इस कथा से यह भी सिद्ध हो जाता है कि कर्म से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

ढूँढ़ने से हार प्राप्त नहीं होता। केवल ज्ञान ही सत्य को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए संसार का त्याग आवश्यक है।

अब प्रश्न यह होता है कि ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति कैसे होती है? उपनिषदों में कहीं भी जगत सो असत्य नहीं माना गया किन्तु शंकराचार्य संसार को मिथ्या मानता है। सत्य ब्रह्म से मिथ्या जगत की उत्पत्ति कैसे? इसे समझाने के लिए रस्सी और सांप का दृष्टान्त दिया जाता है। अंधेरे में एक रस्सी पड़ी हुई थी। एक मनुष्य ने उसे सर्प समझा। वह चिल्लाने लगा, डर कर भागने लगा। इतने में एक व्यक्ति प्रकाश लेकर वहां आया। देखा तो वह रस्सी थी। मनुष्य का डर और दुख भाग गया। क्या रस्सी सचमुच सांप बन गई थी? इसी प्रकार ब्रह्म जगत में परिवर्ति नही होता। क्या रस्सी में सांप देखने से रसी में कोई विकार आया है? इसी प्रकार दृश्य जगत ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को विकृत नहीं करता है।

अब प्रश्न होता है कि माया क्या है? माया की कोई सत्ता नहीं वह केवल भाव रूप है, व्यक्तिकृत है। वह है क्योंकि जब तक हम संसार में रहते हैं, हमारे लिए परेशानियाँ पैदा होती रहती हैं किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से वह नहीं है क्योंकि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। इसीलिए उसे अनिर्वचनीय कहा जाता है। अनिर्वचनीय का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि माया ऐसा पदार्थ है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। माया की अनिर्वचनीयता विचारकों की असमर्थता नहीं है, वरन् यह माया का स्वरूप है। जो वस्तु है भी (सांसारिक या व्यवहारिक दृष्टि से) और जो चीज नहीं भी है (पारमार्थिक दृष्टि से) उसका विशेषण अनिर्वचनीय के अतिरिक्त अन्य कौनसा शब्द हो सकता है?

दही दूध का विकार है। दूध यथार्थ में दही का रूप धारण कर लेता है। किन्तु सांप रस्सी का विवर्त है, विकार नहीं क्योंकि रस्सी में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार संसार ब्रह्म का विवर्त है। इसीलिए अद्वैतवाद को विवर्तवाद कहा जाता है। माया का आधार लेकर कई उसे मायावाद भी कहते है। माया और विवर्त तो दृश्य जगत की व्याख्या के लिए हैं। वैसे तो विवर्त भी अयथार्थ है, और माया भी भाव रूप है। माया और विवर्त शंकर के दर्शन के सत्य आधार नहीं हैं, उसका आधार है ब्रह्म और आत्मा का

अनन्यत्व। इसीलिए अद्वैतवाद नाम ही उचित है।

ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है, निश्चेष्ट, स्वयंप्रकाश है। जीव अन्धकार में डूबा है। फिर जीव को ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो? ईश्वर वह है जो माया से खेलता है और इसके साथ ही उसे अपने पूर्ण ब्रह्म होने का भी ज्ञान है। ज्ञान और माया दोनों एक साथ ही ईश्वर में विद्यमान है। ईश्वर ही जीव पर अनुग्रह कर उसे सत्य का ज्ञान कराता है।

ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। संसार व्यवहारिक सत्य है। और रस्सी में साँप का दर्शन प्रातिभासिक सत्य है। परमार्थिक दृष्टिकोण से संसार और रस्सी में के साँप दोनों ही समान रूप से मिथ्या हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि संसार रस्सी के साँप से अधिक सत्य है। दोनों का भेद अज्ञान के क्षेत्र के भीतर ही है क्योंकि भेद-बुद्धि अज्ञान की ही प्रतीक है। यह भेद इसलिए है कि प्रातिभासिक सत्य तो थोड़े समय में ही नष्ट हो जाता है, व्यावहारिक सत्य (संसार) के नाश में देर लगती है।

जिस प्रकार मनुष्य के लिए रस्सी प्रातिभासिक सत्य है, उसी प्रकार जगत ईश्वर के लिए प्रातिभासिक सत्य है। तो क्या ईश्वर भी इसमें विकम्पित या भयभीत होता हैं। नहीं! इन्द्रजाली पर इन्द्रजाल का कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि यह सब मिथ्या है।

प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्य के भेद का आधार मान कर कई विद्वानों को यह कथन है कि शंकर संसार को भी सत्य की एक कोटि में मानता है। किन्तु यह गलत है।

आत्मा और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान ही मुक्ति है। यह अभेद ज्ञान तभी होगा जब वह जीव सभी भेदों को मिथ्या समझ लेगा।

मुक्ति का साधन है ज्ञान। ज्ञान और कर्म में प्रकाश और अन्धकार का सा विरोध है। कर्म का सम्बन्ध योग क्षेम से रहता है, जो अविद्या के भीतर है। ज्ञान-कर्म समुच्चय भी गलत है क्योंकि सत्य और झूठ का समन्वय कैसे हो सकता है। भक्ति भी अमान्य है क्योंकिं वह भी भक्त और भगवान का द्वैत मानती है।

यह ज्ञान तर्क ज्ञान नहीं है क्योंकि तर्क की अपनी सीमा है और ब्रह्म तर्क

से नहीं जाना जा सकता। यह ज्ञान अनुभव ज्ञान है, स्वयं प्रकाश ज्ञान है, जो तर्क से उत्कृष्ट है।

(३) **स्वामी विवेकानन्द**—आधुनिक युग में अद्वैत के तीन प्रधान व्याख्याता हुए—स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ। इनकी विचार धारा से भी कवि पंत प्रभावित हुआ। इसलिए स्वामी विवेकानन्द की विचार धारा का निरूपण उपयोगी होगा।

स्वामी विवेकानन्द अद्वैतवाद को ही दर्शन का चरमरूप मानते थे। किन्तु आधुनिकयुग में सर्वत्र भौतिकवाद अविश्वास और बौद्धिकता का साम्राज्य था। सारे दर्शन को पलायन वृत्ति का प्रतीक माना जाने लगा। अद्वैतवाद के केवल एक पक्ष—संसार के मिथ्यात्व को लेकर उसे असफल एवं असिद्ध घोषित किया गया। यह भी कहा जाने लगा कि शंकर मनुष्य को जीवन विमुख होना सिखाता है। संसार को मिथ्या मान लेने पर सदाचार का कोई महत्व नहीं रहता। स्वामी जी ने इन सभी आक्षेपों के उत्तर दिए।

शंकर के आलोचकों ने संसार के मिथ्यात्व को उसकी असफलता माना। स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के मूल पक्ष पर बल दिया और वह है आत्मा और ब्रह्म का अभेद संसार और ब्रह्म का अभेद। स्वामी जी के विचारों को उन्हीं के शब्दों में देना अधिक उचित होगा।

सर्व प्रथम उन्होंने धर्म और दर्शन पर बढ़ते हुए अविश्वास का युक्ति-युक्त खंडन किया। इसके साथ ही पश्चिमी विद्वानों द्वारा भारतीय धर्म-साधना पर लगाए गए आरोपों का भी उन्हें उत्तर देना था। भारत-विभूत के ऐश्वर्य को संसार के सम्मुख रखना था।

चाहे किसी भी भौतिक विषय को लिया जाए, यदि उसका पूर्ण एवं सूक्ष्म तक अध्ययन किया जायगा, तो वह विषय बतना सूक्ष्म हो जाएगा कि वह भौतिक न रह कर अभौतिक हो जायगा। 'The gross melts in to the fine, physfs into metaphsics, in every department of knowledge' (The science anb Philosphy of Religion p. 3.) और आज विज्ञान हमें बताता है कि पदार्थ (mélts) और गति (motion) दोनों ही मूल सत्य शक्ति (energy) में लय हो जाते

हैं। गणित शास्त्र में हमें Wave particle aspect of energy का नाद सुनाई देता है जिसके अनुसार यह मान लिया गया है कि लहरें और अणु -शक्ति के दो रूप हैं।

यह प्रश्न किया जाता है कि क्या धर्म और दर्शन मनुष्य का पेट भर देंगे। एक बच्चे के सामने न्यूटन के गति के नियमों के प्रयोग कीजिये। वह आप से पूछ बैठता है कि क्या इन प्रयोगों से 'टाफी' बन जायगी। आप कहते नहीं। और वह कहता है कि तब यह प्रयोग बेकार हैं। स्वामी जी ने लिखा है—

"हमें उच्च सिद्धान्तों का मूल्यांकन निम्न स्तरों से नहीं करना चाहिए। प्रत्येक सिद्धान्त का मूल्यांकन उसके अपने स्तर से ही करना चाहिए। और अनन्त का मूल्यांकन अनन्त के स्तर से करना चाहिए।"

(वही पृ० ४)

यदि मनुष्य का संसार भी ऐन्द्रीय सुखों तक सीमित है, तो मनुष्य और पशु में क्या भेद रहा? ऐन्द्रीय सुखों की ही प्रधानता स्वीकार करना जीवन के अनुभव के विपरीत भी है। कारण—

"हम जानते हैं कि पशु जितना आनन्द ऐन्द्रीय अनुभवों से प्राप्त करता है, उससे अधिक आनन्द मनुष्य बौद्धिक अनुभवों में प्राप्त करता है। और हम यह भी देखते हैं कि अपने बौद्धिक क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य अपने आत्मिक क्षेत्र में अधिक आनन्दित रहता है।"

वेदान्त के विरुद्ध एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि वह हमें संसार से विमुख करता है, अकर्मण्यता सिखाता है और सदाचार का तिरस्कार करता है। स्वामी जी ने लिखा है—

"मेरा उद्देश्य यह दिखाना है कि सदाचार और परमार्थ के उच्चतम आदर्श और उच्चतम दार्शनिक सत्य में सामरस्य है। सदाचार और नीति की महिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए आपको अपने उच्चतम सत्य को झुकाना नहीं पड़ेगा, वरन् सदाचार और नीति के यथार्थ आधार तक पहुंचने के लिए आपका उच्चतम दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्यों पर विश्वास करना होगा।

मनुष्य का ज्ञान उसके हितों का खण्डन नहीं करता।"

(प्रैक्टिकल वेदान्त—पृ० ११०)

वेदान्त की अकर्मण्यता के विषय में स्वामी जी कहते हैं—

"यदि अकर्मण्यता को आलस्य के अर्थ में ग्रहण किया जाए, तो निश्चित है कि वह हमारा लक्ष्य नहीं हो सकती।......और न ही वासना के मिश्रण से अकर्मण्यता कर्मण्यता बन सकती है। जो वास्तविक कर्मण्यता वेदान्त का लक्ष्य है, वह कभी भी न टूटने वाली शाश्वत शान्ति से युक्त है।......और हम सब जानते हैं कि कार्य की सफलता के लिए यही अवस्था सर्वश्रेष्ठ है।"

(वही पृ० ४)

स्पष्टतः यहाँ गीता का निष्काम कर्मयोग और स्थितिप्रज्ञ के महत्व की प्रतिष्ठा है।

संसार के बढ़ते हुए संघर्ष को देखकर व्यक्ति का साहस छूटा जारहा है। कई तो इससे भयभीत होकर जंगलों में चले जाते हैं, और कुछ व्यक्ति की शक्तियों पर अविश्वास कर समाज की शरण में जाते हैं। ये दोनों प्रवृत्तियां ही कायरता की परिचायक हैं। मनुष्य को आत्मशक्ति पर विश्वास होना चाहिए। व्यक्ति के अन्दर उमंग की ऐसी तरंग है जिसके वेग के सामने कोई भी वाधा नहीं टिक सकती है। वेदान्त व्यक्ति को आत्मविश्वास सिखाता है। मनुष्य पापी नहीं है जैसा कि ईसाईयों के धार्मिक मानते हैं, वह शक्ति हीन नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है :—

"वह नास्तिक है जिसे अपने आप में विश्वास नहीं है।"

(वही पृ० १६)

वेदान्त के विरुद्ध एक यह आक्षेप भी लगाया जाता है कि वह व्यक्तित्व का नाश करना सिखाता है। अपने व्यक्तित्व को ब्रह्म में लीन करने को कहता है। रत्नाकर ने 'उद्धव शतक' में गोपियों के मुख से यही कहलवाया है कि "सागर में बूंद के गिर जाने से सागर का क्या बन-बिगड़ जाएगा, हाँ बूंद की बुंदता मिट जाएगी।" इसके उत्तर में कहते हैं—

"किन्तु वेदान्त का लक्ष्य व्यक्तित्व का नाश नहीं, उसका यथार्थ साक्षात्कार है।

(वही पृ० ७३)

स्वामी विवेकानन्द के युग में भी डार्विन के विकासवाद का बड़ा जोर था किन्तु जड़ और अन्ध विकास किसी को भी मान्य नहीं है। पश्चिम के वैज्ञानिकों ने भी डार्विन का कड़ा विरोध किया है और बर्गसाँ, अलैग्जैण्डर तथा मॉर्गन आदि ने चेतन विकासवाद की प्रतिष्ठा की है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—

"………और जिस परिवर्तन की समष्टि को हम विकास कहते हैं, उसका कारण है आत्मा, जो निरन्तर अपनी असीम शक्ति का अधिकाधिक प्रकाशन किया करती है।" (वही पृ० ८३)

और आगे—

"उस असीम शक्ति के प्रकाशन का अर्थ है उससे परिचित होना। धीरे-धीरे यह विराट देव जाग रहा है, अपनी शक्ति से अवगत होता जा रहा है, और प्रबुद्ध होता जा रहा है। जैसे-जैसे उसकी चेतना उद्‌बुद्ध होती जाती है, उसके बन्धन टूटते जा रहे हैं, उसकी शृङ्खलाएँ पाश-पाश होती जा रही है, और वह दिन अवश्य आएगा जब यह देव अपनी असीम शक्ति और अबाध कौशल का ज्ञान प्राप्त कर, अपने पाँव पर तन कर खड़ा हो जाएगा। आइए हम सब मिलकर उस दिव्य जागरण को शीघ्र पूरा होने में सहायता दें।"

(वही पृ० ४८५)

श्री अरविन्द ने उपनिषद् दर्शन और चेतन विकासवाद का सामञ्जस्य किया है। श्रीअरविंद ने 'इस देव' से मिलते-जुलते गुणों वाले नॉस्टिक व्यक्ति की भावना की है। पन्त के नवमानव पर इन दोनों की छाया है।

स्वामी विवेकानन्द ने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का कहाँ तक निर्वाह किया है, यह प्रश्न विवादग्रस्त है। किन्तु यह स्पष्ट है कि स्वामी जी के विचारों में शंकर से पर्याप्त विभिन्नता लक्षित होती है और यह विभिन्नता आधुनिक युग की माँग थी। शंकराचार्य के लिए नीति-शास्त्र (ethis) केवल दृश्य जगत के भीतर की चीज है किन्तु स्वामी जी उच्चतम दार्शनिक सत्यों से उसके समन्वय की बात करते हैं। शंकर ने यह निर्दिष्ट रूप से आदेश

दिया कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए सन्यास आवश्यक है, किन्तु स्वामी जी के अनुसार व्यक्ति संसार में रहकर ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द ने संसार के विवर्त और माया पर कहीं भी बल नहीं दिया। स्पष्टतः स्वामी जी शंकराचार्य की अपेक्षा प्रस्थानत्रयी के अधिक निकट हैं। उन्होंने अद्वैत को आधुनिक युग के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। किंतु यह भी सत्य है कि उन्होंने शंकर अद्वैत का मूल सिद्धांत–ब्रह्म और आत्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता—को पूर्णतः स्वीकार किया है, स्वीकार ही नहीं किया, परिस्थितियों के अनुकूल उसका विशद् वैज्ञानिक विवेचन भी किया है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" में से स्वामीजी प्रथक की अपेक्षा दूसरे सत्य की ओर कहीं अधिक आकृष्ट हैं।

४--**मार्क्सवाद**—इस अध्याय के आरम्भ में ही दर्शन के दो रूपों का भेद स्पष्ट किया गया है। भौतिकवाद पदार्थ को प्रधान मानता है। तो फिर चेतना कहाँ से उत्पन्न हुई ? पदार्थ से।

ऐंग्लस ने कहा है कि "चेतना का जन्म मानव-मस्तिष्क से होता है और मनुष्य प्रकृति की उपज है।"

ऐंजल्स ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि चेतना और प्रकृति के अन्य रूपों में कोई विरोध नहीं क्योंकि चेतना प्रकृत्ति की उपज है। यह तो हुआ भौतिकवाद का सामान्य रूप।

मार्क्स ने इसमें द्वन्द्ववाद (Dialectics) इतिहास की भौतिक व्याख्या (The naturalist conception of History) और वर्ग संघर्ष (Class Struggle) के सिद्धान्तों को जोड़कर उस वाद का जन्म दिया जिसे मार्क्सवाद कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्सवाद भौतिकवाद का ही एक विशिष्ट रूप है।

दून्द्ववाद- ऊपर कहा जा चुका है कि सत्य या विकासशील हो सकता है, या स्थाणु। मार्क्स के लिए पदार्थ सतत् गतिशील है। विश्व में अनेक व्यापार चला करते हैं, क्रिया–प्रतिक्रिया हुआ करती है, जिसके फ़लस्वरूप संसार में सर्वत्र गति दिखाई देती है। यह गति सदैव उन्नति की

ओर होती है। विकासवाद और दून्दूवाद में भेद है। विकासवाद के अनुसार विकास एक निश्चित् सीधी दिशा में, निश्चित चाल से होता है। किन्तु मार्क्स के अनुसार यह विकास सीधी दिशा में नहीं वरन् टेढ़ी-मेढ़ी दिशा में, आकस्मिक और क्रान्ति के रूप में होता है। क्योंकि इस प्रगति का कारण संघर्ष-द्वन्द्व है, इसलिए इसके सिद्धान्त को द्वन्द्ववाद कहा जाता है। राहुल ने अपने दर्शन दिग्दर्शन में लिखा है कि "गतिवाद को ही द्वन्द्ववाद भी कहते हैं।" (पृ० ३५७)

मार्क्स ने यह द्वन्द्व सिद्धान्त हीगेल के दर्शन से ग्रहण किया।

अब प्रश्न यह होता है कि इस गतिवाद का, इस द्वन्द्ववाद का स्वरूप क्या है? पहले एक अवस्था (thesis) होती है। फिर उसके विरोध में प्रतिक्रिया (antithesis) का जन्म होता है। अवस्था और प्रतिक्रिया के संघर्ष के फलस्वरूप एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें प्रथम दोनों अवस्थाओं का सामंजस्य पाया जाता है। इसे समन्वय (Synthesis) कहते हैं। प्रतिक्रिया अवस्था का प्रतिषेध करती है और समन्वय प्रतिक्रिया का प्रतिषेध करता हैं—अर्थात् समन्वय प्रतिषेध (प्रतिक्रिया) का निषेध है। यह समन्वय ही आगे के विकास क्रम में अवस्था बन जाता है, जिसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है और फिर एक समन्वय हमारे सामने आता है। इस प्रकार यह द्वन्द्ववाद सीधी गति में (In straight line) न चलकर टेढ़ी-मेढ़ी (spiral) गति में चलता है। इसी बात को इस रूप में दिखाया जा सकता है—
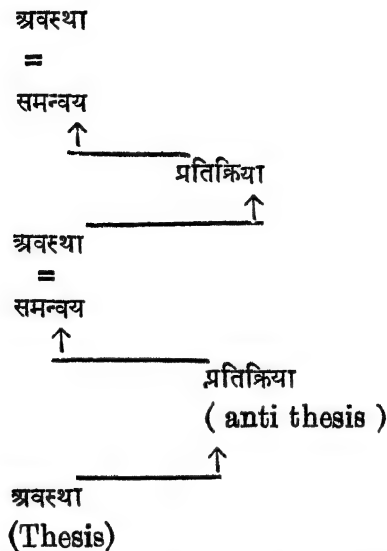
हम भारत के आधुनिक इतिहास से ही इस द्वन्द्वात्मक परिवर्तन का उदाहरण देते हैं। १९४७ से से पूर्व यहाँ अंग्रेजों का राज्य था। यह अवस्था हुई। इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया यह हुई कि भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आन्दोलन आरम्भ किया। तीसरे चरण में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। यह प्रथम दोनों का समन्वय हुआ। अब स्वतन्त्र भारत ही अवस्था बन गया प्रगति के लिये आन्दोलन छिड़ा। प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई गई (प्रतिक्रिया) इस योजना की पूर्ति ही समन्वय है। इसी प्रकार विकास का क्रम आगे बढ़ता जाता है।

इतिहास की भौतिक व्याख्या

भौतिकवाद को स्वीकार कर लेने के पश्चात् मार्क्स के सामने दूसरा प्रश्न था अपने भौतिक सिद्धान्त के आधार पर मानव समाज, समाज के इतिहास और सामाजिक चेतना की व्याख्या करना। यह ऊपर बताया जा चुका है कि भौतिकवादियों के अनुसार पदार्थ से चेतना का उदय होता है। जब वे भौतिक

दृष्टिकोण से सामजिक चेतना और उसकी प्रगति की व्याख्या करने के लिए अग्रसर होते हैं, तो यह सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि उसका जन्म और विकास समाज की भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल ही होता है।

अब प्रश्न उठता है कि समाज की भौतिक परिस्थिति का क्या अभिप्राय है? किसी भी समाज के उत्पादन के साधन ही—रोटी, कपड़ा आदि पैदा करने के उपाय ही—उसकी भौतिक परिस्थिति के परिचायक हैं। उत्पादन के साधन सदैव एक से नहीं रहते। युग की चाल के साथ-साथ वे भी बदलते रहते हैं।

उत्पादन के साधनों के अनुरूप ही समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्माण होता है। मानव के ये समाजगत सम्बन्ध अनिवार्य हैं, मनुष्य अपनी इच्छा से उन्हें बना या बिगाड़ नहीं सकता क्योंकि वे तो उत्पादन के साधनों द्वारा ही नियंत्रित हैं। केवल पारस्परिक सम्बन्ध ही नहीं, व्यक्ति की बौद्धिक चेतना और विचार-परिपाटी के जन्मदाता भी यही उत्पादन के साधन हैं। समाज की दशा समाज के चिन्तन के अनुरूप नहीं होती, वरन् समाज का चिन्तन समाज के उत्पादन के साधनों के अनुसार हुआ करता है। साहित्य की आत्मा और उसके मान-दण्डों का निर्धारण करने वाले भी ये उत्पादन के साधन ही हैं। मार्क्स ने लिखा हैं कि "भौतिक उत्पादन के साधन ही जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करतेहैं। चेतना मानव के जीवन को नियन्त्रित नहीं करती, वरन् सामाजिक जीवन चेतना का नियन्त्रण करता है।"

जब उत्पादन के साधन बदल जाते हैं, तो समाज की चिन्तन धारा और पारस्परिक सम्बन्धों का भी बदलना आवश्यक हो जाता है। पुरानी विचार-धारा और सामाजिक-संगठन अपने मूल्य खो बैठते हैं। सामाजिक क्रान्ति का जन्म होता है। नए चिन्तन और सामाजिक रूप-रेखा का जन्म होता है।

सुमित्रानन्दन पन्त ने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में भारतवर्ष के इतिहास की भौतिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उसे ही यहाँ उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। भारतीय इतिहास के आदिम पशुजीवी युग में उत्पादन का साधन था पशु-पालन। राम और कृष्ण के युग में—कृषि युग में—उत्पादन

का साधन हुआ खेती। बस समाज की सारी व्यवस्था बदल गई। आदिम युग में मनुष्य के यौन सम्बन्धों पर कोई नियन्त्रण नहीं था। राम ने अपने युग के अनुरूप एक नारी व्रत का पालन किया। खेत पर काम करने वाले मनुष्य के लिए एक पक्के और सच्चे साथी की आवश्यकता थी। किन्तु स्त्री-पुरुष की दासी नहीं है। कृष्ण ने नारी-स्वतंत्रता के लिए सफल प्रयत्न किया। आज का युग यन्त्र-युग है। यन्त्र ही उत्पादन का साधन है। इसलिए सामंत-वादी सामाजिक संगठन का बदलना अनिवार्य है।

वर्ग-संघर्ष

इतिहास हमें बताता है कि प्रत्येक युग में जातियाँ आपस में लड़ती रहीं। राष्ट्रों में परस्पर युद्ध होते रहे। एक ही राष्ट्र में बसने वाले विभिन्न वर्ग भी आपस में लड़ते रहे। मार्क्स ने इस विश्व-व्यापी और सर्व-युगीन संघर्ष का कारण वर्ग-संघर्ष बताया। उसका कहना है कि "वर्तमान समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।"

प्रधान वर्ग दो ही हैं। एक शोषक जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार है और दूसरा शोषित। शोषक और शोषित वर्ग का यह संघर्ष सदैव से चलता आया है, चल रहा है और तब तक चलता रहेगा जब तक कि वर्गों को पूर्णतः मिटा नहीं दिया जाता।

मार्क्स यह भी मानता है कि आज के युग में बूर्जुआ वर्ग के विरुद्ध केवल सर्वहारा ही पूर्णतः प्रगतिकामी है। मध्य वर्ग तो रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी हैं।

इसके अतिरिक्त मार्क्स यह भी मानता है कि प्रत्येक वर्ग-संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है।

अर्थ-संचय और क्रान्ति

किसी भी वस्तु का मूल्य दो दृष्टियों से देखा जाता है। प्रथम तो यह कि वह मानव की आवश्यकता पूरी करती है, और द्वितीय, उसके बदले में कोई भी दूसरी वस्तु प्राप्त की जा सकती है। बदले में दूसरी वस्तु प्राप्त करने की शक्ति ही उस वस्तु का मूल्य कहलाती है। पहले वस्तुओं का आदान-प्रदान

वस्तुओं द्वारा ही होता था। अर्थ (money) नाम की कोई चीज नहीं थी। धीरे-धीरे अर्थ का आविर्भाव हुआ और वस्तुओं के क्रय-विक्रय का एकमात्र साधन यह अर्थही बना। धीरे-धीरे अर्थ ने पूँजी (capital) का रूप धारण किया।

मानव जाति का इतिहास हमें यह बताता है कि पूँजी धीरे-धीरे कम से कम हाथों में पुञ्जीभूत होती जाती है। उसी को मार्क्स ने "Historical tendency of capitalist accumulation" कहा है। फिर दो वर्ग बन जाते हैं। एक पूँजीपतियों का शोषक वर्ग, दूसरा सर्वहारा का शोषित वर्ग। शोषक कम मजदूरी पर अधिक काम चाहते हैं। मजदूर अपनी मजदूरी का पूरा लाभ स्वयं उठाना चाहते हैं। पूँजीपतियों और मजदूरों में संघर्ष का आरम्भ होता है। यह वर्ग-संघर्ष जोर पकड़ जाता है। फिर रक्त-क्रान्ति होती है और वर्गहीन समाज की स्थापना होती है, जिसमें अर्थ का समान वितरण होता है।

५—महात्मा गांधी

महात्मा गांधी ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर संघर्ष किया, किन्तु मार्क्सवादी गांधी को प्रतिक्रियावादी ठहराते हैं, क्योंकि उसने रक्त-क्रान्ति नहीं होने दी। पन्त भी रक्त-क्रान्ति के विरुद्ध हैं। गांधीवाद का संक्षिप्त विवरण देने के पश्चात् ही पन्त का गांधीवाद के प्रति दृष्टिकोण निर्धारित किया जा सकता है।

गांधीवाद के तीन पहलू हैं—राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक। राजनीतिक क्षेत्र में गांधी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का संघर्ष आता है। सामाजिक क्षेत्र में भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बात है और धार्मिक-क्षेत्र में गांधी की आध्यात्मिक शक्ति का निरीक्षण करना है। जहाँ तक महात्मा गांधी के धार्मिक स्वरूप का प्रश्न है, वह बुद्ध और ईसा की परंपरा में आते हैं। उनका क्रान्तिकारी रूप राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में लक्षित होता है। वे सन्त भी थे और क्रान्तिकारी भी। कोएसलर का कहना है कि आज के युग में ऐसी प्रतिभा की आवश्यकता थी जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ क्रान्ति के बीज भी हों।

महात्मा गांधी की राजनीति और समाज-सुधार का आधार है धार्मिक चेतना। उन्होंने लिखा है—"मेरी देश-भक्ति मेरे धर्म से नियन्त्रित है।" किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि महात्माजी कोरे आदर्शवादी रहे या उन्होंने जनता की कमजोरियों का ध्यान किए बिना अपने विश्वास पर अन्ध दृढ़ता से काम किया। आदर्श के साथ-साथ उनका ध्यान भारत की वर्तमान जनता की ओर भी रहा।

महात्मा गांधी ने स्पष्ट घोषणा की कि मैं "व्यावहारिक आदर्शवादी" हूँ।

महात्मा गांधी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि ब्रिटिश साम्राज्य-वादियों से किसी प्रकार का भी समझौता नहीं हो सकता है, क्योंकि उसकी नीति का आधार है पाशविक शक्ति।

महात्माजी के सिद्धान्त थे सत्य और अहिंसा। सत्य को उन्होंने अपनी जीवनी में निरपेक्ष सत्य (Absolute Truth) माना है। राजनीति के क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के प्रयोग पर कई विद्वान आक्षेप करते हैं। उसके उत्तर में कई विद्वान यह कहते हैं कि उस समय भारत की दशा ऐसी थी कि वह सशस्त्र क्रान्ति कर ही नहीं सकता था। किन्तु दोनों बातें गलत हैं। ब्रिटिश साम्राज्य बर्बर शारीरिक शक्ति का प्रतीक था। उसके प्रति गांधी ने विद्रोह किया। बर्बरता को पाशविकता से नष्ट करने का प्रयास और भी भयंकर था। सत्य और अहिंसा आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक हैं। महात्माजी ने कुटिल शरीर को आत्मा से परास्त करने का निश्चय किया।

इतना ही नहीं महात्मा गान्धी के सामने केवल अपने देश का ही प्रश्न नहीं था। सारे विश्व की अशान्ति का दृश्य उनके सामने था। उस अशान्ति का कारण था—और है—मानव का नैतिक पतन। यह निश्चित हैं कि संसार में शान्ति तभी हो सकती है जब मानव-तंत्र नैतिकता में दृढ़ आधारित हो।

अन्य बातों में महात्मा जी के विचारों से विरोध रखते हुए भी टैगोर ने इस सम्बन्ध में उनका पूर्ण समर्थन किया। उन्होंने कहा कि "भारत की निहत्थी जनता ही यह सिद्ध कर सकती है कि नैतिक शक्ति पाशविक शक्ति

से अधिक ताकत रखती है। हमारा युद्ध आध्यात्मिक युद्ध है—मानवता की मुक्ति के लिए संघर्ष है।"

अहिंसा की नीति अपनाना कायरता का प्रतीक नहीं है अहिंसक को हिंसक की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। महात्मा जी ने कहा है कि कायरता और हिंसा दोनों में से हिंसा को ही मैं पसंद करूँगा। किन्तु अहिंसा हिंसा से कहीं अधिक उदात्त है।

महात्मा गान्धी 'गत आदर्शों के अन्तिम दीपशिखोदय'' नहीं हैं, यह ऊपर की विवेचना से स्पष्ट हुआ होगा। महात्मा जी की दृष्टि भूक से तड़पते हुए भारत पर पड़ी और उस करुण परिस्थिति को मिटाना ही महात्मा जी ने अपना उद्देश्य बनाया। जब सारा भारत भूक से तड़प रहा है तो मेरा केवल एक कर्त्तव्य है और वह है भूकों के लिए भोजन जुटाना। व्याकुल रोगियों को कबीर के पदों से बहलाना असंभव है।"

(महात्मा गांधी—रोमें रोलाँ)

६—श्री अरविन्द

मानव की आकांक्षाएँ क्या हैं? वह पूर्ण ईश्वरत्व, उन्मुक्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अपरिमित आनन्द और अबाध स्वतंत्रता चाहता है। वह आज भी यही चाहता है, कल भी यही चाहता था, और आगे भी यही चाहेगा।

चेतना और पदार्थ का सामरस्य—आध्यात्मिक क्षेत्र में भी मानव साधना का लक्ष्य यही कामनाएँ हैं और भौतिक क्षेत्र में भी। हमें बताया जाता है कि शंकराचार्य आदि ज्ञानियों ने भूत-जगत का पूर्ण तिरस्कार करके जीवन की चरम सफलता—ये सभी विभूतियाँ प्राप्त कीं। आज हम देखते हैं कि विज्ञान आत्म-जगत का पूर्ण तिरस्कार कर मनुष्य के उच्चतम लक्ष्य की पूर्ति—इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति में—संलग्न है। विज्ञान और आध्यात्म का यह युद्ध आज भी चल रहा है। क्या यह संभव है कि दोनों का उद्देश्य एक होते हुए भी उनमें भयंकर शत्रुता हो?

श्री अरविन्द ने यह सिद्ध किया है कि चेतना और पदार्थ में यह विरोध देखने का कारण है मानव की संकुचित दृष्टि। इस प्रकार की समस्याएँ तभी उठती हैं जब मानव-चेतना में उलझनें हो, जब वह भीतरी सामरस्य के दर्शन

करने में असमर्थ हो। हमें अपने में जो गलतियाँ दिखाई देती हैं, वे सभी सत्य हैं—भले ही अनिर्दिष्ट रूप में।

वास्तव में देखा जाए तो पदार्थ और चेतना में कोई विरोध नहीं है। दोनों में सामरस्य है। उपनिषदों में पदार्थ को भी ब्रह्म कहा गया है। यह कहना भ्रम है कि संसार असत्य है (शंकर)। विज्ञान ने भौतिक आधार पर जो प्रगति की है उसे भ्रम कहकर नहीं ठुकराया जा सकता। इसके साथ ही साथ ऋषियों-मुनियों ने कठोर साधना करके जिन आत्मिक शक्तियों का उपार्जन और गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन किया है, उन्हें झूठा कह देना भी बुद्धि की विकृति प्रदर्शित करना है।

चेतना और पदार्थ दोनों की उपयोगिता को स्वीकार कर लेने के पश्चात्, उन्हें सत्य मान लेने के पश्चात् हमारे सामने प्रश्न आता है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? किस प्रकार हम चेतना और पदार्थ में सामरस्य स्थापित कर सकते हैं? इस समस्या को हल करने के लिए हमें दो बातें स्वीकार करनी हैं—प्रथम हमें एक सर्वव्यापी सत्ता को पहचानना है जो इन दोनों तत्वों को उचित महत्व और गरिमा पदान करती है। द्वितीय, जब हम उस सर्वव्यापी सत्ता और चेतना तथा पदार्थ के पारस्पिरिक सम्बन्ध पर विचार करेंगे तो विकासवाद का सिद्धान्त ही सारी गुत्थियों को सुलझाता है। श्री अरविन्द के दर्शन का मूल है उपनिषद्—ज्ञान और विकासवाद का समन्वय। उपनिषद् का ज्ञान ही विकासवाद को वास्तविक एवं पूर्ण सिद्धान्त बनाने में समर्थ है। श्री अरविन्द ने लिखा है कि प्राचीन पूर्वी ज्ञान और आधुनिक पश्चिमी विज्ञान के समन्वय की ओर ही आज का युग बढ़ रहा है।

उपनिषद् ज्ञान और आधुनिक विकासवाद के स्वरूप को समझने के लिए हमें पहले मूल सत्य से चलना पड़ेगा।

मूल सत्य—संसार में हमें परिवर्तन का ज्ञान होता है। स्वानुभूति में हमें एकरसता का ज्ञान होता है। यह मैं जानता हूँ कि मैं वही हूँ जो परसों था, कल था, आज हूँ या कल हूँगा। सत्य के ये दो ही रूप हो सकते हैं—एक स्थिर, दूसरा गत्यात्मक। ये दोनों ही सत्य हैं।

"अतः हमारे सामने दो सत्य हैं—एक विशुद्ध सत्ता और द्वितीय विश्व-

सत्ता—सत्ता का सत्य और गति का सत्य। किसी एक को अस्वीकार करना आसान है किन्तु सच्ची और फलवती योग्यता तो चेतना के सत्यों को समझने और उनके पारस्परिक सम्बन्धों के उद्घाटन करने में हैं।"

(डिवाईन लाईफ प्रथम भाग पृ० ११६)

जो स्थिर है वह ही ब्रह्म है और यह विकासशील सत्य है चेतन-शक्ति।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या ये दो ही मूल सत्य हैं या इनसे परे भी कुछ है? हाँ मूल सत्य तो शुद्ध चैतन्य (Absolute) है। वह अवाङ्मनसगोचर है। स्थिरता और गतिशीलता तो उस शुद्ध चैतन्य पर मानव-मस्तिष्क के आरोप हैं। हम उसे जान नहीं सकते इसलिए हमें उपरोक्त दोनों सत्यों को स्वीकार कर लेना चाहिए।

उपरोक्त दो सत्यों—स्थिर सत्ता और चेतन शक्ति—को मान लेने पर यह प्रश्न आता है कि उन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? तन्त्रशास्त्र में जो शिव और शक्ति का अभेद स्वीकार किया गया है उसी प्रकार श्री अरविन्द स्थिर सत्ता और चेतन शक्ति को एक मानते हैं।

"शक्ति सत्ता से संपृक्त है। शिव और काली, ब्रह्म और शक्ति दो नहीं हैं जो अलग-अलग किए जा सकें। सत्ता से संपृक्त शक्ति शान्त हो सकती है या गतिवान हो सकती है। किन्तु जब वह शक्ति शान्त है तब भी वह रहती है और न मिटती है, न कम होती है तथा न ही उसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन आता है।"

(वही पृ० १२५)

अब प्रश्न यह होता है कि स्थिर सत्ता से शक्ति का उदय कैसे होता है? क्यों होता है? तो इसके उत्तर में श्री अरविन्द कहते हैं कि यह एक शाश्वत सत्य है। ब्रह्म अनन्त उल्लास की अभिव्यक्ति शक्ति की इस सजगता और क्रीड़ा में होती है।

"अचल से गति का उदय एक सनातन सत्य है।"

(वही पृ० ११६)

"संपूर्ण सृष्टि या परिवर्तन इस आत्माभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।" (वही पृ० १६६)

सृष्टि क्रम (विकासवाद)

मूल सत्यों को स्थिर कर लेने के पश्चात अब यह देखना है कि सृष्टि का क्रम क्या है ? चेतन शक्ति किस प्रकार अपने आप को अभिव्यक्त करती है ? विकास का क्या रूप है ?

भौतिक विकासवादी यह मानते हैं कि पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है। उनके अनुसार विकास की शक्ति सजग नहीं है, चेतन नहीं है, जड़ है। किन्तु श्री अरविन्द शक्ति को चेतन मानते हैं। कारण, संसार में सर्वत्र हमें उपयोगिता और उपादेयता लक्षित होती है। प्रकृति का क्षुद्र से क्षुद्र अवयव भी कुछ उपयोगिता रखता है। यदि विकास कामी शक्ति जड़ है, तो यह उपयोगिता कैसे सम्भव हो सकती थी ?

सच्चिदानन्द और चेतन शक्ति में अभेद है। जो कुछ हमें दिखाई देता है, सभी सच्चिदानन्द की आनन्द-क्रीड़ा है। संसार रूप में सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति के—सृष्टि-क्रम के—दो रूप हैं। एक अवरोहण (involution) दूसरा आरोहण (evolution)। अवरोहण की क्रिया आरोहण की क्रिया के ठीक पिवरीत है। अवरोहण की दशा में सच्चिदानन्द से अतिमन का (Supermind) उदय होता है, अतिमन से मन (mind) का, मन से प्राण (life) का और प्राण से पदार्थ (matter) का। यह सभी सच्चिदानन्द की चेतन शक्ति के रूप में अभिव्यक्ति है। आरोहण की क्रिया में पदार्थ के भीतर बद्ध यह चेतना शक्ति ही उच्छ्वसित हो उठती है, प्राण को जन्म देती है, प्राण से मन को, मन से अतिमन को और अन्तिम अवस्था में अतिमन सच्चिदानन्द में लय हो जाता है। श्री अरविन्द ने सच्चिदानन्द की सृजनात्मिका शक्ति को माया कहा है। माया के दो रूप हैं। नीच माया तो संसार के भेदों को और विषमताओं को जन्म देती है। पदार्थ प्राण, और मन तक की अवस्थाएँ नीच माया के भीतर हैं। अतिमन में उच्च माया का क्षेत्र है, जहाँ भेद—बुद्धि और विषमताओं का नाश हो जाता है। सृष्टि-क्रम को—अवरोहण और आरोहण की क्रिया को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं—
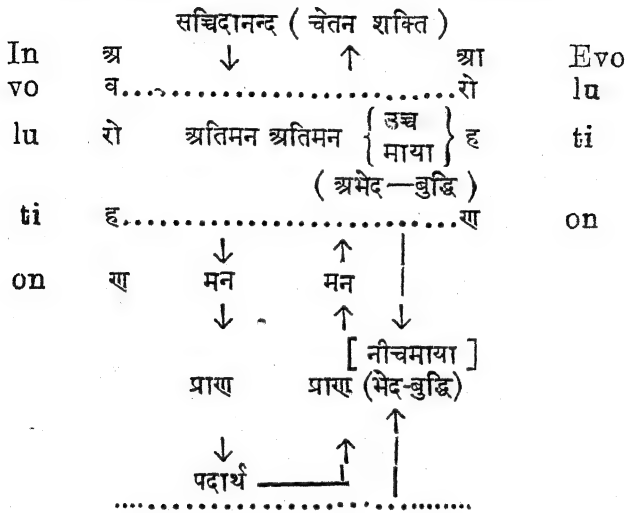
जड़ विकासवाद में विश्वास करने वालों का कहना है कि पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है, वह पदार्थ से महत् नहीं, उससे गौण है। किन्तु उनसे प्रश्न किया जाता है कि क्या चेतना अव्यक्त रूप से पदार्थ में वर्तमान नहीं है ? उसे पदार्थ में अव्यक्त रूप से वर्तमान मान लेने से दोनों को समान महत्व प्रदान करना पड़ेगा और चेतना को पदार्थ से सर्वथा भिन्न तत्व मानना पड़ेगा किन्तु यह भौतिकवादी स्वीकार नहीं कर सकता। और यदि वह यह कहे कि चेतना अव्यक्त रूप में पदार्थ में वर्तमान नहीं है तो उसे यह मानना पड़ेगा कि चेतना के अभाव से चेतना का आविर्भाव हुआ। किसी अभाव से किसी चीज का भी जन्म होना अवैज्ञानिक है। श्री अरविन्द के विकास सिद्धान्त का मूल मन्त्र है—"जो कुछ पदार्थ में अव्यक्त रूप से विद्यमान नहीं है, वह उस से उदित नहीं हो सकता।"

(वही पृ० १३३)

पदार्थ में प्राण अव्यक्त रूप से वर्तमान है, प्राण में मन और मन में अतिमन अव्यक्त रूप से वर्तमान है।

निम्न मूल्यों से उच्च मूल्यों के आविर्भाव के मूल में वही चेतन शक्ति है।

किन्तु उच्च मूल्यों के उदय होने पर निम्न मूल्यों का तिरस्कार करना मूर्खता है। मन या अतिमन के उदय पर संसार को मिथ्या या विवर्त कह देना गलती है। सच तो यह है कि उच्च मूल्यों को निम्न मूल्यों का अपनी उन्नति के साधन के रूप में प्रयोग करना चाहिए और आज ऐसा हो भी रहा है।

मनुष्य का स्थान संसार में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि केवल उसे ही मन की—बौद्धिक-चेतना की प्राप्ति हुई है और फिर उसी में ही अतिमन का उदय होगा। किन्तु अभाव-पीड़ा आदि का कारण है मन का संकुचित और अविद्या ग्रस्त होना। नीच माया ही अविद्या है जिसके कारण मनुष्य अपने आपको संसार से बिल्कुल अलग एक इकाई के रूप में देखने लगता है। किन्तु अति-मन के उदय होने पर—जो उच्च माया या विद्या का क्षेत्र है—इस भेद बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य भेद में अभेद और अभेद में भेद देखने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण मानव जाति का विकास अति चेतना की ओर हो रहा है। इस नव चेतना को ही कवि पन्त स्वर्ण-किरण और स्वर्ण धूलि कहता है और उसके समस्त परवर्ती काव्य में इसी नव-चेतना के सौन्दर्य सुख और समृद्धि के गीत हैं। श्री अरविन्द ने लिखा है कि अतिमन के उदित हो जाने पर जीवन और संसार बदल जाएगा। अतिमन से विभूषित मानव को श्री अरविन्द ने द्रष्टा (Gnostic Being) कहा है। यही पन्त का नव-मानव है। ईसाई मत के आरम्भिक काल में विद्वानों का एक ऐसा दल भी उठ खड़ा हुआ था जो श्रद्धा को नहीं ज्ञान को मुक्ति का साधन मानता था और जो व्यक्ति का जन्म मूल तत्व के निरन्तर विकास का फल मानता था। इस दल के व्यक्ति को Gnostic कहा जाता था। यह द्रष्टा या नव-मानव सभी प्रकार के बन्धनों और अभावों से मुक्त होगा। किन्तु अतिमन् का उदय ही विकास-क्रम का अन्त नहीं है। अभी तो सच्चिदानन्द में लीन होना है। इसका साधन है ज्ञान। मनुष्य का मनुष्यत्त्व ही है ईश्वरत्व की प्राप्ति। श्री अरविन्द के शब्दों में—

"To fulfil God in life is man's manhood"

(same p. 56)

कवि के चिन्तन का विकास

'वीणा'—वीणा में हमें तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं—प्रकृति-प्रेम, माँ का प्रेम, आदर्श के प्रति मोह। इस आरम्भिक काव्य में जो प्रार्थ-नाएँ मिलती हैं उनमें माँ के प्रेम और आदर्श के मोह का मधुर मिलन दिखाई देता है। अधिकांश प्रार्थनाएँ व्यक्तिगत हैं। किन्तु संसार के कल्याण की भावना भी कुछ गीतों में प्रस्फुटित हुई है।

"कुमुद कलाबन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ!
जग का तिमिर त्रास हर दूँ—
नीरव रजनी में निर्भय।"

यह आदर्श चिन्तन सर्वत्र कवि के साथ रहा है। माँ के अनन्य प्रेम ने ही कवि के हृदय में माँ के प्रति भक्ति-भावना जाग्रत कर दी है। फलस्वरूप कवि माँ से ही प्रार्थना करने लगता है। 'वीणा' के भावों में गम्भीरता नहीं है किन्तु उनमें सरलता है, मंजुल प्रेम की सरस निश्छल अभिव्यक्ति है। इसी-लिए सभी गीत अत्यन्त मोहक बन पड़े हैं। कविके एकान्त जीवन की नीरसता ने उसके हृदय में कामना जाग्रत की जो रहस्यात्मक प्रेम के रूप में प्रकट हुई। कवि ने प्रायः अपने को बालिका के रूप में चित्रित किया है। रहस्य-भावना से भरे हुए ये गीत उत्कृष्ट कोटि के हैं।

याद है क्या न प्रात की बात ?
खिले थे जब तुम बन कर फूल,
भ्रमर बन, प्राण! लगाने धूल
पास आया मैं, चुपके शूल
चुभाए तुमने मेरे गात ···
निठुर! यह भी कैसा अभिमान ?

जहाँ तक चिन्तन का प्रश्न है, कवि में अभी सरलता मिश्रित जिज्ञासा है, अभी उसकी चेतना स्वप्न-लीन है।

"स्वप्न देखती थी मैं मादक, किन्तु अचिर, अस्फुट सुखमय,
लता कुंज में सोई हूँ मैं, सुरभित सुमनों पर निर्भय।"

ग्रंथि-पल्लव—अचानक कवि के हृदय में प्रेम का बाण लगता है जो चिर-वियोग का शल्य छोड़ जाता है। 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' में इस मर्म-पीड़ा की ही विवृत्ति का कलात्मक वैभव है। इसका वर्णन होचुका है। जहाँ तक चिंतन का सवाल है, पल्लव की "परिवर्तन" कविता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ से कवि का जागरण काल आरम्भ होता है। कवि को संसार की अनित्यता का निष्ठुर ज्ञान होता है और वह कराह उठता है—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !

\+ + + ×

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;

(अनित्य जग)

संसार की अचिरता देखकर समुद्र का मन भी सिसक उठता है और उडगन भी सिहर उठते हैं। निष्ठुर परिवर्तन के झाँझावात में "पददलित धरातल टलमल हिल-हिल उठता है।" कवि सोचता है कि आखिर इस अनित्यता का कहीं अन्त भी है? संसार में कहीं आनन्द और सुख भी है? उत्तर में उसे संसार की क्षणभंगुरता में छिपे हुए स्थायी सनातन तत्व का ज्ञान होता है। कवि के लिए यह 'विश्व का तत्व पूर्ण दर्शन' है। अनित्य जग से ठीक विपरीत ज्ञान होता है।

"मूँदती नयन मृत्यु की रात खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर बात बीज बोती अज्ञात !"

(नित्य जग)

कवि को सुख और दुख दोनों के महत्त्व का ज्ञान होता है। जीवन के लिए दोनों आवश्यक हैं—

"आज का दुख कलका आह्लाद, और कल का सुख आज विषाद;"

पन्त के पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यह विचार पन्त के

चिन्तन का एक **प्रधान स्तम्भ** है। और यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि चिन्तन की प्रौढ़ावस्था में दुख-सुख के सामंजस्य का यही सत्य हिंसा और अहिंसा, क्रान्ति और शान्ति के तुल्य महत्व के रूप में प्रकट हुआ। यहाँ कामायनी की यह पंक्तियाँ अनायास ही याद आ जाती हैं—

"दुख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात।"

"नित्य जग" के विषय में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। प्रथम, यह कविता भी कवि की निराशा की छाया से बची नहीं है जैसा कि इन पंक्तियों से प्रकट होता है—

"अलभ है इष्ट अतः अनमोल, साधना ही जीवन का मोल।"

द्वितीय, नित्य जग का दार्शनिक चिन्तन कवि के जिज्ञासु और विकासशील व्यक्तित्व को स्थायी शान्ति प्रदान करने में असमर्थ होता है। कारण इस बौद्धिक उथल-पुथल का कारण समाज की करुण दशा का आघात नहीं है, कवि के व्यक्तिगत जीवन की कोई करुण घटना है। आघात व्यक्तिगत है, चिन्तन व्यक्तिगत है इसीलिए उसका हल भी प्रमुखतः व्यक्तिगत ही है। नित्य जग कविता भारतीय चिन्तन से ओत-प्रोत है।

कला की दृष्टि से परिवर्तन कविता—विशेष रूप से 'निष्ठुर परिवर्तन' उत्कृष्ट है—हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। यह कविता एक अन्य दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। कवि के मानसिक आघात और उसके क्रन्दन की शान्ति होती है आध्यात्मिकता में। गुंजन के बाद की रचनाओं में कवि की चेतना को समाज आहत करता है, सामाजिक समस्याओं का हल भी उसे मिलता है आध्यात्मिकता में—श्री अरविन्द के दर्शन में। यहाँ हमें पन्त के चिन्तन के **द्वितीय स्तम्भ** पर पहुंचते हैं और वह है कवि का आध्यात्मिकता के प्रति मोह। जिस प्रकार अनित्य जग और निष्ठुर परिवर्तन का उत्तर है नित्य जग उसी प्रकार युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या का उत्तर मिलता है अरविन्द के दर्शन में।

गुंजन

ऊपर यह कहा जा चुका है कि 'परिवर्तन' कविता से ही कवि का जागरण

काल आरम्भ होता है। गुंजन में कवि की चेतना पूर्ण रूप से सजग हो गई है। आगे सारे काव्य में हमें कवि की उद्बुद्ध बुद्धि के ही दर्शन होते हैं।

ऊपर-नित्य जग में जिस आध्यात्मिकता में कवि को जीवन की समस्याओं का समाधान मिलता है, उसी का निखार और परिमार्जित प्रसार हमें गुञ्जन में लक्षित होता है। वियोग और प्रणय के गीत भी मिलते हैं। कवि अपने व्यक्तित्व से बाहर झाँकने का प्रयत्न कर रहा है। 'गुञ्जन' के विषय में एक यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि यहा तक कवि के चिन्तन का विकास किसी भी वाद-विशेष में उलझा नहीं दिखाई देता है। हाँ इतना अवश्य है कि कवि उपनिषद् दर्शन, अद्वैत और स्वामी रामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रभावित है। किन्तु-कवि की प्रतिभा उनमें फँसी हुई नहीं तपी हुई दिखाई देती है। उपरोक्त तीनों विचार-धाराओं का प्रधान स्वर है मानव जीवन के लिए अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि। (अद्वैतवाद केवल निःश्रेयस की सिद्धि को ही लक्ष्य बनाता है।) अद्वैत सिद्धान्त की मधुर व्यंजना 'एक-तारा' कविता में लक्षित होती है। चाँदनी के अन्तिम छन्द में भी इसी की छाया है। किन्तु प्रधानतया कवि ने अद्वैत 'को ग्रहण न कर उपनिषदों और स्वामी विवेकानन्द आदि आधुनिक विचारकों के आध्यात्मिक स्वरों को वाणी दी है। उनका प्रधान नाद है आस्तिकता और मानवतावाद या विश्व बन्धुत्व। और कवि में दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। "नीरवतार" 'तप' और 'प्रार्थना' आदि कविताओं में दोनों बातें दिखाई देती हैं। यद्यपि 'नीरवतार' बहुत पहले की रचना है, किन्तु कवि ने उसे गुञ्जन में संग्रहीत कर उचित ही किया है। यह रचना इस काल की न होते हुए भी गुञ्जन के पन्त की प्रति-निधि रचना है। इसमें इस काल के चिन्तन की सभी विशेषताएँ लक्षित होती हैं। कला की दृष्टि से भी यह 'गुञ्जन' की रचनाओं में विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें कवि की आस्तिकता की छाप है, समर्पण में भावुकता का वेग है, कर्मण्यता और शक्ति का उद्रेक है, और व्यक्तिगत सम्बन्धों को तोड़कर लोक सेवा में लीन रहने की भावना है। 'प्रार्थना' कविता उत्तरा की कविताओं के मेल में रखी जा सकती है। स्वर्ण काव्य और उत्तरा में आकर कवि जिस स्वर्णिम चेतना का आह्वान करता हुआ उसके ऐश्वर्य गान में तल्लीन हो

जाता है वही यहां 'ज्योतिर्मय-जीवन' के रूप में वर्तमान है। जो लोग यह कहते हैं कि पन्त में चिन्तन की एक रसता नहीं है, उन्हें इस समानता को देखना चाहिए। 'प्रार्थना' में जहा कवि "ज्योतिर्मय जीवन के बरसने" की प्रार्थना करता हुआ दिखाई देता है, वहाँ 'तप' में कवि मन को विश्व वेदना में तप कर अपने सजल स्वर्ण से जीवन की पूर्णतम और पवित्र मूर्ति रचने के लिए कहता है।" कुछ लोग ईश्वर विश्वास और ईश विनय को पलायन प्रवृत्ति का द्योतक मानते हैं। किंतु यह गलत है। ईश विनय का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य अपने आत्मविश्वास को खो बैठे, आलस्य में डूब जाए। कवि को अपनी शक्ति पर भी बिश्वास है वह स्वयं भी संघर्ष के लिये नव-निर्माण के लिये कटिबद्ध है। 'मानव' कविता में कवि ने मानव की गरिमा—शारीरिक और मानसिक–का प्रदर्शन किया है। यदि मनुष्य अपने अन्तर का विकास कर ले, यदि वह सच्चे अर्थों में मानव बन जाय तो वह पूर्ण काम हो जायगा। उसे कोई भी अभाव नहीं सतायगा।

उपरोक्त विवेचन से कवि की आदर्श भावना का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया होगा। वीणा में भी कवि के सामने एक आदर्श था। यहां उसी का विकास दिखाई देता है। कुछ व्यक्ति आदर्श भावना को दिवा-स्वप्न के तुल्य ठहराते हैं। आदर्शवादी होना पलायनवादी होना है। किन्तु इसका खण्डन हम जीवन में ही पाते हैं। साहित्य की सभी समस्याओं का समाधान जीवन के क्षेत्र से होना चाहिये। ऐसा न करने पर निष्फल वाद-विवाद उठ खड़ा होता है। प्रायः हम कहा और सुना करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का एक लक्ष्य निश्चित करना चाहिये, एक आदर्श बनाना चाहिये। यदि जीवन में व्यक्ति को आदर्श सामने रखने की आवश्यकता है, तो क्या साहित्यकार के लिये आदर्शवादी होने की आवश्यकता नहीं है। प्रसाद जी ने कोरे आदर्शवाद को धार्मिक उपदेश से तुलना की है। प्रेमचन्द जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थ का समर्थन किया है। पन्त का आदर्श हमने संक्षेप में देखा। उसका यथार्थ अभी देखना है उसके दर्शन युगान्त से ग्राम्या तक होते हैं। किन्तु क्या उनमें कवि आदर्शवादी नही रहा? क्या वह एक दम यथार्थवादी (मार्क्सवादी) होकर फिर आदर्शवादी (अध्यात्मवादी)

हो गया है ? 'इन प्रश्नों का उत्तर हम अलग से कवि के आदर्श भावना की विवेचना में देगे ।

युगांत, युगवाणी-ग्राम्या

गुंजन कवि के मानसिक विकास की दृष्टि से संक्रान्ति काल का काव्य है । कवि व्यक्ति के दायरे से बाहर निकल कर समाज के क्षेत्र में पदार्पण कर रहा है । यह ऊपर कहा जा चुका है कि गुंजन में कवि की चेतना किसी मत विशेष में फंसी हुई नहीं है । इसीलिए मैंने गुंजन को कवि की **स्वच्छन्द प्रतिभा का उद्‌गार** कहा है ।

गुंजन में कवि की चेतना हृदय से बाहर-निकल कर मानव जीवन पर झाकती दिखाई देती है । युगान्त, युगवाणी, और ग्राम्या में वह मानव-जीवन में स्वच्छन्द विचरण कर उसकी व्याख्या करने वाले सिद्धान्तों और वादों का अध्ययन करती दिखाई देती है । इसीलिये इस काल को मैं कवि का **अध्ययन काल** मानता हूँ । इस काल में कवि की प्रतिभा दो प्रधान वादों में फँसी दिखाई देती हैं वे हैं गान्धीवाद और मार्क्सवाद । किन्तु बीच बीच में कवि की स्वच्छन्द-प्रतिभा के स्वर भी गूँज उठते हैं ।

यथार्थ की विषमता

कवि की कोमल चेतना पर दूसरा प्रबल प्रहार हुआ यथार्थ की कुत्सा का । उसने देखा कि मनुष्य आंखों पर रूढ़ियों की पट्टी बांधे हुये, दिमाग पर अन्ध विश्वास का खोल चढ़ाये हुए और हृदय में द्वेष की आग जलाए हुए बढ़ा चला जा रहा है—न जाने किस वीभत्स पतन की गर्त की ओर । उसका सूक्ष्म आदर्श स्थूल यथार्थ से टकरा गया । भव्य आदर्श करुण यथार्थ की ओर बढ़ने लगा । सूक्ष्म कल्पना स्थूल जीवन की ओर अग्रसर होने लगी । युगान्त से ग्राम्या तक हमें कवि की इसी अग्रसर चेतना की कहानी मिलती है । किन्तु कवि की यथार्थ चेतना की प्रबलता के सामने आदर्श बिल्कुल तिरोहित नहीं हो गए । स्थान-स्थान पर वह भी मुखर हो उठा । कहा जा चुका है कि कवि पंत आरम्भ से अन्त तक आदर्शवादी रहा

है। यथार्थ ज्ञान ने भी आदर्श को रूप देने में, उसका परिष्कार करने में सहायता की।

अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि कवि ने जीवन की भयंकरता को किन-किन रूपों में देखा। प्रथम, उसने देखा कि जनता अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त हैं। सामन्त काल की बंदिनी स्त्री की उभरती हुई चेतना को केवल इसी लिये कुचला जा रहा था कि सामन्त युग में उसे वह स्थान प्राप्त नहीं था जो उसे आज प्राप्त होना चाहिए। आध्यात्मिकता के नारे लगाते हुये भी साधु-महात्मा नरक की ओर लपकते जा रहे थे। यह तो हुआ प्राचीन का बुरा प्रभाव। आधुनिक युग में भी ऐसे कई नाद और वाद उठ खड़े हुए जो मानवता को पशुता की मनोवृत्तियों से आंकते हैं। प्रधान दो हैं-डार्विन का जड़ विकास-वाद और फ्रायड का वीभत्स यौनवाद। चींटी कविता में हमें दोनों का खण्डन मिलता है। मनुष्य 'मैथुन-आहर यन्त्र' भर रह गया है। शरीर की सजावट और श्रृङ्गार ही उसका साध्य बन गया। भारतवर्ष के 'अपरिचित नरकों' की वीभत्स दशा का करुण उद्घाटन 'ग्राम चित्र' में मिलता है। अब कवि के लिये 'ताज महल' केवल 'मृत्यु का अमर अपर्थिव पूजन' रह गया है जिसे देखकर उसके हृदय से हाय ही निकलती है। मानव को शव बनाया जा रहा है, और शव को अमर वैभव में लपेटकर रखा जा रहा है। न्याय कहाँ है? मनुष्यता कहाँ है? सर्वत्र वर्बरता का साम्राज्य है।

इतना ही नहीं विज्ञान की मूर्त्ति यन्त्र ने जीवनोत्कर्ष के लिये जन्म लेकर भी जीवन को कुचलना आरम्भ किया। वह शोषण का साधन बन गया—नहीं बना दिया गया। दो वर्ग बन गये। एक यन्त्र का स्वामी था और दूसरा यंत्र का सेवक। किन्तु यन्त्र ने न स्वामी को छोड़ा और न सेवक को। दोनों को पीसना आरम्भ किया। पूँजीपतियों ने मजदूरों का शोषण किया और इसी में अपनी सफलता समझी। किन्तु यन्त्र ने दोनों को—स्वामी और सेवक को लूट लिया। स्वामी को जला दिया वासना की आग में और सेवक को मसल दिया दरिद्रता की चक्की में। किन्तु इस अनाचार, असमंजस और अशान्ति का कहीं अन्त भी है?

इतिहास की भौतिक व्याख्या का आधार लेकर कवि ने यन्त्र-युग की पर्यालोचना की। जब-जब उत्पादन के साधन बदले, भौतिक परिस्थितियाँ बदलीं और उन्हीं के अनुकूल संस्कृति आचार और अध्यात्म बदला। दार्शनिक चिन्तन भौतिक परिस्थितियों की उपज है। भौतिक दशा नित्य परिवर्तनशील है। इसीलिए सभी कुछ गतिवान है, अस्थिर है। (विशेष देखिए मार्क्सवाद।)

"धर्म, नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
शासन जनगण तन्त्र अचिर—युग स्थितियाँ जिनकी प्रेषक,
मानव गुण भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत्!"

(महात्माजी के प्रति)

कवि ने इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। किन्तु यह मैं पहले कह चुका हूँ कि आध्यात्मिकता के प्रति मोह पन्त की स्थायी मनोवृत्ति है। वह यहाँ भी वर्तमान है। वह प्रत्येक युग के लिए आत्मिक दर्शन की उपज अनिवार्य मानता है। किन्तु मार्क्सवादी प्रभाव के कारण किसी भी सनातन, सार्वभौम दर्शन की सत्ता को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उसका अपने युग की भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल होना आवश्यक है। वैसे उसका अस्तित्व सर्वयुगीन है। एक युग का दार्शनिक चिन्तन दूसरे युग के लिए अनावश्यक हो जाता है। इस सब को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं—

उत्पादन के साधन } → भौतिक परिस्थितियाँ | → आध्यात्मिक दर्शन

|—— → नए उत्पादन के साधन } → नई भौतिक परिस्थितियाँ } → नया आध्यात्मिक दर्शन।

"पतझर" और '१९४०' आदि कविताओं में कवि प्राचीन के नाश पर नवीन के सृजन की बात कहता है। सृजन और नाश का यह क्रमिक चक्र चलता ही रहता है। यह विश्वास पन्त के चिन्त-भवन का एक और प्रधान स्तम्भ है जो आरम्भ से अन्त तक मिलता है। मेरी इस बात से कुछ लोगों का मतभेद हो सकता है। इसका कारण यह है कि उनका ऐसा विश्वास है कि

केवल ऐतिहासिक भौतिकवाद ही सृजन और नाश, आरोहण और अवरोहण, सृष्टि और प्रलय को स्वीकार करके उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करता है। किन्तु यह शुद्ध भ्रम है। संसार की प्रायः प्रत्येक चिन्तन धारा किसी न किसी रूप में विकास (जिसमें ह्रास भी समाविष्ट है) मानती है। भारतीय दर्शन भी सृष्टि और प्रलय की बात कहता है। श्री अरविन्द भी सच्चिदानन्द के आरोहण, अवरोहण की बात कहते हैं (विशेष देखिए 'श्री अरविन्द')। 'ग्राम्या' में कवि १६४० का आह्वान करता है—

'आओ हे दुर्धर्ष वर्ष, लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन।"

यहाँ पर कवि मार्क्सवाद से भली-भाँति परिचित है, प्रभावित भी है। किन्तु पल्लव के "नित्य जग" की इन पंक्तियों को देखिए—

"मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर बात
बीज बोती अज्ञात !"

'गुञ्जन' की 'सुख-दुख' कविता की यह पंक्तियाँ देखिए—

यह साँझ - उषा का आँगन,
आलिङ्गन विरह-मिलन का;
चिरहास अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !"

युगान्त की पतझर की यह पक्तियाँ देखिए—

"कङ्काल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर पल्लव लाली !"

'युगवाणी' में 'महात्माजी के प्रति' की यह पंक्तियाँ देखिए—

तोड़ युगों के स्वर्ण - पाश अब मुक्त हो रहा मानव
जन मानवता की भव संस्कृति आज हो रही निर्मित।"

और 'उत्तरा' की 'उत्तरा' कविता की यह पंक्तियाँ देखिए—

"जड़ चेतन के चक्र निरन्तर
घूम रहे चिर प्रलय सृजनकर,
जयध्वनि हाहारव में बढ़ता
युग पथ पर मानवता का रथ।"

(इसमें चेतन का स्वर भी निर्दिष्ट एवं प्रधान हो उठा है)

अब यह भली भाँति प्रमाणित हो गया होगा कि नाश और सृजन के चक्र पर कवि को सदैव विश्वास रहा है।

यथार्थ की विषमता से पीड़ित कवि की चेतना मानव जीवन की मुक्ति के साधन खोजने के लिए आध्यात्मवाद से मार्क्सवाद, मार्क्सवाद से गांधीवाद और गांधीवाद से श्री अरविन्द के दर्शन तक चक्कर लगाने लगी। ग्राम्या तक का पन्त गांधीवाद से आगे नहीं बढ़ पाया था। इन मतवादों और सिद्धान्तों के साथ-साथ कवि का स्वच्छन्द चिन्तन—वीणा और गुंजन की आलोचना में जिसकी ओर संकेत किया था—भी कवि के साथ था और नवीन विचार-धाराओं के सम्पर्क में आकर विकसित होने लगा था। प्रत्येक लोक नायक मानव जीवन के उद्धार के लिए प्रयत्नशील होता है। इसी प्रयत्न के फल-स्वरूप वह एक निश्चित सिद्धान्त को जन्म देता है और उसे अन्य सिद्धान्तों के विरोध में रखता है। अन्य सिद्धान्तों का उद्देश्य भी मानव का उद्धार ही होता है। फिर यह विरोध क्यों ? इस विरोध का कारण प्रत्येक चिन्तक का दृष्टिकोण और उसके समाज की विषमताएँ एवं आकांक्षाएं होती हैं। पन्त ने विरोधी सिद्धान्तों का अध्ययन किया। उसने उनके विरोधों को दूर कर, अपने स्वतन्त्र चिन्तन के अनुरूप उनके समन्वय का प्रयत्न किया। समन्वय की प्रवृत्ति पन्त के चिन्तन-भवन का **एक और स्तम्भ** है।

चिंतन का रूप

प्रत्येक चिन्तक की विचार धारा के दो पक्ष होते हैं। प्रथम, **नकारात्मक** जिसमें वह विरोधी सिद्धान्तों या मतवादों का तर्क के आधार पर खण्डन करता है। द्वितीय- **सृजनात्मक** जिसमें वह अपने मत की प्रतिष्ठा करता है। कोई भी चिन्तन तभी पूर्ण होता है जब उसमें दोनों पक्ष हों—विरोधी सिद्धान्तों का युक्ति-युक्त खण्डन भी हो और अपने मत की सम्यक् स्थापना भी हो।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि युगान्त से ग्राम्या तक हमें विचारधारा के तीन स्वरूप दिखाई देते हैं। प्रथम है कवि का स्वतंत्र चिन्तन, द्वितीय गांधीवाद, और तीसरा मार्क्सवाद। कवि के स्वच्छन्द चिन्तन में आध्यात्मिकता का भी मोह मिश्रित है यह ऊपर कहा जा चुका है। पन्त के चिंतन के नकारात्मक पक्ष में हमें तीन एकांगी सिद्धान्तों का खण्डन मिलता है—

(१) कोरे अध्यात्मवाद का खण्डन,
(२) कोरे भौतिकवाद का खण्डन,
और (३) कोरे गांधीवाद का खण्डन।

सृजनात्मक पक्ष में कवि ने अपने चिन्तन के अनुरूप समन्वय का प्रयत्न किया है। समन्वय के भी तीन रूप मिलते हैं—

(१) अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय,
(२) गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय,
और (३) अध्यात्मकवाद और भूतवाद का समन्वय।

पहले हम चिंतन के नकारात्मक पक्ष का विवेचन करेंगे।

(१) कोरे अध्यात्मवाद का खंडन—यह पहले कहा जा चुका है कि साहित्य का आधार जीवन है। जीवन भी व्यक्तिगत जीवन नहीं सामाजिक जीवन। इससे यह स्पष्ट है कि साहित्यकार प्रत्येक सिद्धान्त को—चाहे वह आध्यात्मिक हो चाहे भौतिक—सामाजिक चेतना की दृष्टि से देखेगा। यह साहित्यकार का दृढ़ आधार है, निश्चित दृष्टिकोण है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। क्योंकि यदि साहित्यकार के लिये कोई मत विशेष प्रधान हो जाय और समाज गौण हो जाय, तो वह साहित्यकार नहीं रहता वरन् उस मत विशेष का प्रचारक मात्र रह जाता है। वह साहित्य के स्वरूप को विकृत कर उसे निष्प्राण कर देता है। साहित्य का प्राण है समत्व जो एकांगिता का विरोधी है। इसलिये यह देखा जाता है कि मत विशेष से ग्रस्त व्यक्ति का साहित्य प्राणहीन नीरस और क्षुद्र होता है।

कवि पन्त ने भी अध्यात्म को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से देखा है। पन्त का परिवर्तन शीलता में-विकासवाद में दृढ़ विश्वास है। ग्राम्या तक इस विकासवाद का स्वरूप मार्क्सवाद के रंग में रंगा दिखाई देता है। स्वर्णकाव्य

और उत्तरा में जाकर उसका रूप दूसरा हो जाता है। तब कवि चेतन शक्ति के विकास में विश्वास करने लगता है। ऐतिहासिक भौतिक वाद की दृष्टि से देखते हुये ही वह आध्यात्मिक सिद्धान्तो के निरपेक्ष सत्य के प्रति विद्रोह करता है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि अध्यात्म-चिन्तन का जीवन के लिए कोई उपयोग नहीं है। वह भी जीवन को पूर्ण एवं सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार भौतिकवाद भी अपनी सीमाओं और संकुचित दृष्टि कोण रखते हुए भी मानव जीवन के लिए उपयोगी है।

भारतीय अध्यात्म-चिन्तन की चरम परिणति 'अद्वैतवाद' में हुई। किन्तु उसकी एकांत महत्ता स्वीकार करना पन्त को स्वीकार नहीं है। उसका महत्व है केवल चिन्तन के क्षेत्र में, संस्कृति के क्षेत्र में। 'अद्वैतवाद' की प्रतिष्ठा के समय वाष्प विद्युत के यन्त्रों का अभाव था। फलतः अद्वैतवादी चिन्तक समाज की एकता को स्थापित करने में असमर्थ होकर, एकान्त चेतना की एकता की ओर बढ़ने लगे। कवि को अध्यात्म चिन्तन स्वीकार है किन्तु भौतिक उत्कर्ष और लोक संगठन के महत्व से भी उसे इन्कार नहीं हैं। कवि को अद्वैतवाद का लोकोपयोगी रूप—चेतना के एकत्व की प्रतिष्ठा का पक्ष—स्वीकार है किन्तु संसार का मिथ्यात्व उसे स्वीकार नहीं है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों को प्रदर्शित करते समय मैं यह लिख आया हूं कि उन्होंने भी जगत के मिथ्यात्व पर बल नहीं दिया। कवि जगत की व्याख्या करते समय अद्वैतवाद 'एकमेवाद्वितीयम्' या 'सर्वं खल्विदम्' ब्रह्म को स्वीकार करता है। हीगेल भी जड़ और चेतन को ब्रह्म की ही दो अभिव्यक्तियाँ मानता है ब्रह्म इन दोनों में समाविष्ट भी है, और दोनों से परे भी। 'उत्तरा' की भूमिका में उसने यही बात कही है।

कवि का दृष्टिकोण सामूहिक हित ही रहा है। उसी दृष्टि से देखते हुए कवि ने कहा है—

"मैं अध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की सामन्तकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य जगत एवं ऐहिक जीवन

के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्गयुद्ध और रक्त क्रान्ति में परिणति हुई है,—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।"

(आधुनिक कवि-भूमिका पृ० २५)

और उत्तरा में यही बात भूमिका के पृ० ७ पर है।

"जिस प्रकार हमारे मध्ययुगीन विचारकों ने आत्मवाद से प्रकाश-अन्ध होकर मानव-चेतना के भौतिक (वास्तविक) धरातल को माया, मिथ्या कहकर भुला देना चाहा (जिसका कारण में 'युगवाणी'* की भूमिका में दे चुका हूँ), उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान दर्शनवादी:·····और विशेषकर मार्क्सवादी भौतिकता के अधिकार में और कुछ भी न सूझने के कारण मन (गुण) तथा संस्कृति (सामूहिक अन्तर्चेत्तना) आदि को पदार्थ का बिम्ब रूप, गौण स्तर या ऊपरी अति-विधान कहकर उड़ा देना चाहते हैं ; जो मान्यताओं की दृष्टि से, ऊर्ध्व तथा समतल दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण उत्पन्न भ्रान्ति है।"

(२) **कोरे भौतिकवाद का खण्डन**—उपरोक्त दोनों उद्धरणों में कवि ने अध्यात्मवाद और भौतिकवाद दोनों के एकान्तिक महत्त्व का खण्डन किया है। भौतिकवाद समाज के हितों की ओर देखता तो है किंतु केवल राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिको ण से। वह संस्कृति की महानता को भी अस्वीकार करता करता है और अन्तर्जगत की महत्ता को भी।

जिस प्रकार अद्वैतवाद अध्यात्मवाद का विशिष्ट रूप है उसी प्रकार मार्क्स वाद भौतिकवाद का एक सकीर्ण रूप है। युगान्त से लेकर ग्राम्या तक का पन्त मार्क्सवाद से अधिक प्रभावित रहा है। 'महात्माजी के प्रति' में वह महात्मा गांधी के प्रयत्नों को मार्क्सवादी की दृष्टि से देखता है। 'जीवप्रसु' में

* "मध्ययुग आत्मदर्शन या आत्मवाद का सक्रिय, संगठित एवं सामूहिक प्रयोग नहीं कर सका। तब भौतिक विज्ञान इतना समुन्नत नहीं था ; वाष्प, विद्युत, रश्मि आदि मानव जीवन के वाहन नहीं बन सके थे।"

(युगवाणी—भूमिका-[घ])

पन्त आकाश की ओर देखने वाली छायावादी (व्यक्तिवादी) शैली और रहस्यवादी (अध्यात्मवादी) प्रवृत्ति को धरती पर उतरने के लिए कहता है। 'मार्क्स के प्रति' (युगवाणी) में वह कहता है—

"विकसित हो, बदले जब-जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता समापन।"

× × ×

धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।"

भूत दर्शन में वह कहता है—

"साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।"

(भूत दर्शन—युगवाणी)

इन पंक्तियों को देखकर एक बार तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कवि प्रचारक बन गया है, आध्यात्मिकता से बहुत दूर निकल गया है। किन्तु अन्य कविताओं के देखने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि कवि की आध्यात्मिक भावना भी अभी निरन्तर बनी हुई है। युगवाणी की ही बापू कविता में कवि कहता है—

बापू! तुम से सुन आत्मा का तेज राशि आह्वान,
हँस उठते हैं रोम हर्ष से, पुलकित होते प्राण।"

मार्क्स की सीमाओं से भी कवि भलीभाँति परिचित है। "संकीर्ण भौतिक वादियों के प्रति" (युगवाणी) कविता में कवि उनको फटकारता दिखाई देता है—

"आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम?
वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श?
बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अंतर जीवन उत्कर्ष?"

और आगे कवि आध्यात्मिकता पर अपने विश्वास को स्पष्टतः प्रकट करता है—

"आत्मा औ भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
बहिरन्तर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्व।
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।"

मार्क्सवाद की निम्नलिखित दुर्बलताएँ जान लेने पर ही हम कवि के मार्क्स के प्रति दृष्टिकोण का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकते हैं।

(१) मार्क्सवाद का मूल तर्क गलत है। मार्क्सवाद (भौतिकवाद) कहता है—'गोचर जगत ही सत्य और प्रधान है। कारण अगोचर जगत गौण या असत्य है।' इसीलिए पन्त उसके एकांगी महत्व को अस्वीकार करता है।

(२) मार्क्सवाद एकांगिता को जन्म देता है। इतिहास की भौतिक व्याख्या के आधार पर सब मत-मतान्तरों का खण्डन कर स्वयं शाश्वत सत्य के रूप में अपने अनुयायियों की बुद्धि में धँस जाता है। प्रत्येक सिद्धान्त का जन्म रूढ़ि के विरोध में होता है किन्तु बाद में वह ही रूढ़ियों का घर बन जाता है। मार्क्सवाद भी इससे बचा हुआ नहीं है।

पन्त ने मार्क्सवाद को ऐतिहासिक यथार्थवाद की कसौटी पर कसकर उसे असिद्ध प्रमाणित कर दिया है। उसके अपने अस्त्र से ही उसका खण्डन कर दिया है। रक्त क्रान्ति और वर्ग संघर्ष मार्क्स के युग की—फ्रांस की राज्य-क्रान्ति काल की—सीमाएँ हैं। उन परिस्थितियों ने ही रक्त क्रान्ति और वर्ग संघर्ष के सिद्धान्तों को जन्म दिया। उन परिस्थितियों से बाहर उनका कोई मूल्य नहीं है।

(३) व्यक्ति की शक्ति और साहस में विश्वास न करना भीरुता का चिह्न है। मार्क्सवाद व्यक्ति पर अविश्वास कर समाज की शरण में जाता है। व्यक्ति की महत्ता पर अविश्वास ही पलायनवाद को जन्म देता है। समाज की शक्ति और सत्ता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। किन्तु व्यक्ति की भी तो सत्ता होती है। उसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है ?

(४) मार्क्सवाद मनोविज्ञान के नवीन सत्यों से विमुख होने के कारण, अवैज्ञानिक है। आज मनोविज्ञान चेतन से अधिक उप चेतन पर बल देता है

मार्क्सवाद इसे स्वीकार नहीं करता। इसकी ओर पन्त ने उत्तरा की भूमिका में संकेत किया है।

(५) मार्क्सवाद भौतिक ऐश्वर्य पर ही एकान्त बल देता है। उसमें मनुष्य की संस्कृत वृत्तियों के विकास के लिए कोई स्थान नहीं है। वह बहिर्जगत के सामने अन्तर्जगत को तुच्छ मानता है। किन्तु पन्त तो नव-संस्कृति के निर्माण की बात सर्वत्र कहता है।

(६) मार्क्सवाद केवल एक राजनीतिक वाद है जिसकी अपनी सीमाएँ हैं। फ्रांस की राज्यक्रान्ति की बात ऊपर कही गई है। आज मार्क्सवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा रूस में दिखाई देती है। रूस की कोई दीर्घ सांस्कृतिक परम्परा नहीं। जार ने रूस पर बर्बरता से शासन किया। साम्यवाद ने रूस को उस बर्बरता से मुक्त कर वहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल नए तन्त्र की स्थापना की। इतने बड़े राष्ट्र में क्या एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो मार्क्स से भिन्न धारा में सोचता हो? रूसी जाति के लिए साम्यवाद प्रगति का पहला कदम है। अभी संस्कृति का जन्म हुआ है। उसका विकास होना है।

चिन्तन और साहित्य की दीर्घ-समुन्नत परम्परा के अभाव के कारण केवल रूस ही नहीं अमरीका भी भौतिकता में डूबा हुआ है। किन्तु भारत के लिए साम्यवाद का वैसा उपयोग नहीं है। यहाँ की संस्कृति को कुचल कर मार्क्सवाद नहीं पनप सकता।

(७) मार्क्सवाद जीवन और साहित्य को राजनीति से बाँध देने का उपक्रम करता है। उसके लिए साहित्य राजनीति का अनुगामी है। राजनीति से स्वतन्त्र उसका कोई महत्त्व नहीं है। पन्त ने इसका विरोध किया है। भूमिकाओं में उसने स्पष्टतः कहा है कि मैंने साहित्य को राजनीति से अलग रखा है।"

इतने दोष होते हुए भी कवि मार्क्सवाद की ओर झुका उसके कारण दो थे। प्रथम, कवि ने मार्क्स के ऐतिहासिक यथार्थवाद की उपयोगिता स्वीकार की। द्वितीय, उसके लोक-संरक्षक पक्ष को ग्रहण किया। रोटी, कपड़ा, मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ हैं। संस्कृति और चिन्तन मनुष्य की स्वाभाविक

आकांक्षाएँ हैं। पन्त को पहली आवश्यकतर की पूर्ति मार्क्सवाद में दिखाई दी और दूसरी आकांक्षा की तृप्ति गांधीवाद और आध्यात्मवाद में।

आदर्श के प्रति मोह ने ही कवि को मार्क्सवादी नहीं बनने दिया। यद्यपि यह आदर्श प्रवृत्ति युगान्त से ग्राम्या तक में दबी हुई दिखाई देती है, फिर भी स्थान-स्थान पर वह उद्बुद्ध हो उठी है। 'दो लड़के', 'चींटी', 'मानव', '१६४०' आदि कविताओं में हमें कवि का आदर्श—नवीन संस्कृति के निर्माण की अभिलाष—दिखाई देती है। कवि यहाँ अपने आदर्श से दूर अवश्य है किन्तु बिल्कुल बिछुड़ा हूआ नहीं है।

कवि ने स्वयं माना है कि आध्यात्मिकता में विश्वास रखते हुए भी वह मार्क्सवाद और भौतिक उन्नति की ओर अधिक आकर्षित है क्योंकि यह संक्रांति काल की आवश्यकता है। जिस प्रकार युगान्त आदि में आध्यात्मिकता दबी हुई है और भौतिकता प्रधान है, उसी प्रकार स्वर्णकाव्य और उत्तरा आदि में भौतिक दृष्टि गौण हो गई है और आध्यात्मिक रुचि मुखर हो उठी है।

अब प्रश्न यह होता है कि आध्यात्मिकता की ओर मुड़कर क्या कवि ने जीवन से पलायन किया है? इसकी विशद विवेचना तो आगे की जायेगी किंतु मार्क्सवाद का खण्डन करते समय एक अन्य बात का भी ध्यान देना चाहिए। हिन्दी के आलोचना क्षेत्र में मार्क्सवाद और प्रगतिवाद पर्यायवाची शब्द मान लिए हैं। जो लेखक मार्क्सवादी हैं या जिनमे मार्क्सवाद के तत्त्व मिलते हैं और मार्क्सवाद के विरोधी तत्त्वों का अभाव है, वे सब प्रगतिवादी मान लिए जाते हैं। जो मार्क्सवादी नही हैं, या मार्क्सवाद के प्रतिरोधी विश्वासों को स्वीकार करते हैं वे पलायनवादी और प्रतिक्रियावादी हैं। मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग करना हिन्दी आलोचकों की संकीर्ण मनोवृत्ति और हिन्दी आलोचना की क्षुद्रता का परिचायक है। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी यह कठिनाई और असमंजस का कारण बन जाता है उत्तरा की भूमिका में पन्त ने भी इस बात का उल्लेख किया है।

(२) कोरे गांधीवाद का खण्डन—गांधीवाद का सामान्य परिचय पहले दिया जा चुका है। मैं यह भी कह चुका हूँ कि युगान्त से ग्राम्या तक गांधीवाद और मार्क्सवाद के अतिरिक्त हमें कवि का स्वच्छन्द दृष्टिकोण भी

मिलता है। यह निश्चित है कि कवि का स्वच्छन्द दृष्टिकोण पूर्ण रूप से गांधीवाद के मेल में नहीं बैठता। इसीलिए कहीं भी उसने गांधीवाद को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है।

पन्त में अन्तर्विरोध की ओर ऊपर संकेत किया गया है। कवि की गांधी-वाद सम्बन्धी रचनाओं में भी अन्तर्विरोध दिखाई देता है। युगवाणी की बापू कविता में कवि कहता है—

"आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ?
× × ×
बापू ! तुमसे सुन - आत्मा का तेजराशि आह्वान,
हँस उठते हैं राम हर्षसे, पुलकित होते प्राण।"

आत्मा के तेजशशि आह्वान से पुलकित होने वाला कवि 'महात्मा जी के प्रति' (ग्राम्या में) कहता है—

"किए प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक - जीवन - हित;
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएँ संस्कृतियाँ वर,
वस्तु विभव पर ही जन-गण का भाव विभव अवलंबित"

इसी कविता में भी अन्तर्विरोध दिखाई देता है। पहले कवि गांधी को 'निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप शिखोदय' कर फिर उसकी असफलता की बात इन पंक्तियों में कहता है—

"गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्वल।"

या—

"विजित आज तुम नर वरेण्य, गण जन विजयी साधारण।

महात्मा गांधी को गत संस्कृतियों और आदर्शों का प्रतीक मानकर उसकी असफलता में ही हर्ष मनाया गया है। क्योंकि उसकी असफलता में ही मानव का कल्याण निहित है। जनता तो मूर्ख है न। सो जब तक 'भाव-स्वप्नों' को परख न ले वह जाग्रत कैसे हो सकती है ?

ग्राम्या की 'अहिंसा' कविता में कवि महात्माजी के प्रधान अस्त्र–अहिंसा– का प्रबल खण्डन करता है।

"हिंसा विनाश यदि नहीं अहिंसा मात्र सृजन,
वह लक्ष्य शून्य अब : भर न सकी जन में जीवन;
निष्क्रिय उपचेतन ग्रस्त : एक देशीय परम,
सांस्कृतिक प्रगति से रहित आज जन हित दुर्गम।
हैं सृजन विनाश सृष्टि के आवश्यक साधन
यह प्राणि शास्त्र का सत्य नहीं, जीवन दर्शन।"

इन सब उद्धरणों के पढ़ने के पश्चात् विद्यार्थी के मन में यह धारणा होती है कि कवि ने एक स्थान पर जो कहा है, दूसरे स्थान पर उसी का विरोध कर रहा है। अब इस अन्तर्विरोध के रहस्य को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

पन्त ने महात्मा गाँधी को तीन दृष्टिकोणों से देखा है।

(१) उनके अध्यात्मिक महत्व की दृष्टि से,

(२) स्वच्छन्द दृष्टि से

और (३) मार्क्स की दृष्टि से।

यह जान लेने पर अब यह स्पष्ट हो जाता है कि 'युगवाणी' की बापू कविता में पंत ने महात्माजी को उनके आध्यात्मिक महत्व की दृष्टि से देखा है। कवि भी सदैव अध्यात्म-प्रेमी रहा है। इसीलिए 'बापू' कविता महात्मा जी की प्रशस्ति बन गई है। 'महात्माजी के प्रति' कविता में जब पन्त उन्हें 'जीवन सिद्ध अहिंसक', 'पूर्ण पुरुष', 'विकसित मानव' 'निज उद्देश्यों से महान' आदि कहता है, तो स्पष्टतः वह उनके आत्मिक-उत्कर्ष और कठोर साधनामय जीवन की प्रशंसा कर रहा है।

– स्वच्छन्द चिन्तन की विशेषताओं में एक प्रधान विशेषता है विनाश और सृजन के चक्र पर कवि की दृढ़ आस्था। ग्राम्या की अहिंसा कविता में पन्त ने अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण के अनुसार उसकी मीमाँसा की है। उद्धरण की प्रथम चार पंक्तियों में वह अहिंसा का खण्डन कर, नीचे की दोनों में अपने इसी विश्वास को अभिव्यक्त करता है।

'महात्मा जी के प्रति' में महात्मा जी को आध्यात्मिक दृष्टि से देखने के साथ-साथ ही कवि ने उन्हें मार्क्स की दृष्टि से देखा है। मार्क्सवाद का उपयोगी तत्व है सामूहिक जीवन के रक्षण और वर्धन की भावना। इसी के आधार पर कवि कहता है कि "भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित।" जहाँ कवि महात्मा जी की असफलता के साथ "व्यक्ति और वर्ग की आत्मा" पर स्थिति आदर्शों के पराभव की बात कहता है, वहाँ वह उन आदर्शों का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्याङ्कन कर रहा है।

यह स्पष्ट है कि पन्त गान्धी की अहिंसा को वर्तमान अवस्था में अनुपयोगी समझता है। जब मनुष्य विकसित होगा, वर्तमान की दूर्व्यवस्था दूर होगी, तब निश्चय ही जनता के लिए अहिंसा ही कल्याण का एक मात्र साधन रह जाएगी। इस भावना को कवि ने 'बापू' (युगवाणी) और 'अहिंसा' (ग्राम्या) कविताओं में अभिव्यक्त किया है।

'नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जनक्षय,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।'

—बापू !

"बन्धन बन रही अहिंसा आज जनों के हित,
वह मनुजोचित निश्चित, कब ? जब जन हो विकसित।"

—अहिंसा।

यह स्पष्ट है कि पन्त ने अद्वैत के मायात्मक संसार को मिथ्या मान उसके आध्यात्मिक एकत्व को स्वीकार किया है, मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष की एकांतिक महत्ता और रक्तक्रान्ति को त्याग उसके सामूहिक हितवाद को माना है, और गाँधीवाद के अहिंसा के एकान्तिक महत्व को वर्तमान युग के लिए अस्वीकार कर उसके स्थायी मूल्य को समझा है। कवि के आदर्श और गाँधी के लक्ष्य में समानता है। गाँधी ने रामराज्य का स्वप्न देखा, पन्त ने नव मानववाद के अवतरण और ऐश्वर्य का गान किया। गाँधी को आध्यात्मिकता से प्रेम है पन्त की रुचि भी आरम्भ से ही आध्यात्मिक रही है। गाँधी ने रोटी-कपड़े की समस्या उठाई और चरखे को उसका हल बताया, पन्त ने इसे पूर्णतः स्वीकार किया। गाँधी आधुनिक यंत्रों से विमुख थे क्योंकि उनके प्रचार

के कारण एक तो देश में शोषण बढ़ा और दूसरे बेरोजगारी का जोर हुआ। कवि कहता है—

"भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
धुन रूई, निर्धनता दो धुन,
कात सूत, जीवन पट लो बुन,
अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
थम, थम, थम ।
भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
कहता चरखा प्रजा तंत्र से
'मैं कामद हूँ सभी यंत्र से,'
कहता हँस आधुनिक मंत्र से
'नम, नम, नम!'

चरखा गीत (ग्राम्या)

कवि का गांधी से मतभेद है केवल दो बातों में। प्रथम वर्त्तमान परिस्थितियों में अहिंसा नहीं हिंसा ही श्रेयस्कर है। द्वितीय व्यक्ति और वर्ग की नींव पर खड़े आदर्श समाज के लिए मङ्गल-विधायक नहीं हो सकते।

कवि के चिन्तन का नकारात्मक पक्ष दिखा लेने के पश्चात् अब हम उसके समन्वयात्मक पक्ष का दिग्दर्शन कराएँगे। इसे पढ़ते समय कवि के स्वतन्त्र चिन्तन की विशेषताओं को–अध्यात्मिक रुचि, आदर्श-स्वभाव, क्रमिक नाश और सृजन में विश्वास, और समन्वय के महत्व में आस्था—सदैव ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि समन्वय के प्रत्येक रूप के मूल में हमें कवि की यही भावनाएँ काम करती दिखाई देती हैं।

(१) अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय—पन्त की बहुमुखी समन्वयात्मक प्रतिभा के लिए अद्वैत या मार्क्स किसी एक के एकान्तिक महत्व को स्वीकार करना असंभव है। पहले दिए हुए दोनों उद्धरणों में कवि ने दोनों की सीमाएँ दिखाई हैं। अद्वैत में चेतना की अखण्डता दिखाई देती है, मार्क्स में बाह्य जीवन की। एक का सम्बन्ध अन्तर्जगत से दूसरे का बहिर्जगत से। पन्त ने दोनों के सामंजस्य पर बल दिया है।

'अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान।"
—समाजवाद-गाँधीवाद (युगवाणी)

तार्किक दृष्टि से देखने पर अद्वैत और साम्य के समन्वय की बात प्रकाश और अंधकार के समन्वय की बात है ! इसीलिए मैं इसका विरोध करता हूँ। अद्वैत के लिए साम्यवाद की रंगभूमि जगत मिथ्या है, साम्यवाद के लिए अद्वैत के संचरण का प्रांगण चेतन का जगत–मिथ्या है। दार्शनिक दृष्टि से इसका खंडन करने पर भी हमें इस समन्वय के मूल में कवि का स्वच्छन्द चिन्तन तो दिखाई देता ही है ! उसी के अनुरोध से कवि ने यह समन्वय की बात कही है।

किसी भी सिद्धान्त का अध्ययन दो प्रकार से हो सकता है। प्रथम व्यक्तिगत रुचि-कुरुचि को बचाते हुए उसका सत्य स्वरूप भी समझा जा सकता है। द्वितीय व्यक्तिगत रुचि के अनुसार, निजी दृष्टिकोण के अनुरूप उसका मूल्याङ्कन भी किया जा सकता है। पन्त का दृष्टिकोण सदैव सामाजिक रहा है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर उसने अद्वैत को देखा है और साम्य को भी। इसीलिए वह दोनों के समन्वय की बत कहता है। किन्तु तर्क के आक्षेप से यह समन्वय बच नहीं सकता।

यह स्पष्ट है कि सिद्धान्त की दृष्टि से (और आलोचक की एक यही दृष्टि होती है) अद्वैत और मार्क्सवाद का समन्वय असम्भव है। युगान्त से ग्राम्या तक कवि ने अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों और सामाजिक वादों का अध्ययन किया। अपने दृष्टिकोण के अनुरूप सबके समन्वय का प्रयत्न किया। उसमें असंतुलन रह गया जो उपरोक्त पंक्ति में प्रकट हुआ। कवि इसी बात को स्वतन्त्र रूप से कह सकता था। और वही अधिक उचित भी होता।

अद्वैत और मार्क्सवाद का समन्वय नहीं हो सकता। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आध्यात्मिकता और भौतिकता का भी समन्वय नहीं हो सकता। आत्म जगत अद्वैत से व्यापक सत्य है और भूत जगत मार्क्सवाद से विस्तृत। वह दोनों वाद तो इन व्यापक क्षेत्रों की अपने ढङ्ग से व्याख्या करने वाले हैं। इसीलिए आगे चलकर कवि अद्वैतवाद और मार्क्सवाद के समन्वय

की बात नहीं कहता वरन् अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के समन्वय की बात कहता है। इस बात में संतुलन भी है और औचित्य भी। उत्तरा की भूमिका में हमें इसी संतुलन के दर्शन होते हैं। वैसे तो आधुनिक कवि की भूमिका और उत्तरा की भूमिका की अधिकाँश विवेचना एकसी ही है। अन्तर इतना है कि आधुनिक कवि की भूमिका में कवि का दृष्टिकोण मँजा हुआ एवं परिपक्व नहीं है। उत्तरा की भूमिका में वह पूर्ण रूप से निखर उठा है और उसका स्वरूप निर्दिष्ट हो गया है। दोनों भूमिकाओं को ध्यान से पढ़ने से यह सत्य स्पष्ट हो जाता है। उत्तरा की भूमिका में श्री अरविन्द के दर्शन का प्रभाव एक नई बात है।

स्वर्ण काव्य एवं उत्तरा में कवि अद्वैतवाद और मार्क्सवाद के समन्वय की बात न कहकर भारतीय जीवन-दर्शन और मार्क्सवादी सामूहिक हितवाद (जो भूतवाद का सामान्य स्वरूप है) के समन्वय की बात कहता है।

"मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग-संतुलित) जन तन्त्र तथा भारतीय जीवन-दर्शन को विश्व-शान्ति तथा लोक कल्याण के लिये आदर्श-संयोग मानता हूँ, जैसा कि मैं अपनी रचनाओं में भी संकेत कर चुका हूँ—

'अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निस्पृह निष्प्राण,
उसे प्रतिष्ठित करने जग में दिया साम्य ने वस्तु विधान!'
'युगवाणी'

'पश्चिम का जीवन-सौष्ठव हो विकसित विश्व तंत्र में वितरित,
प्राची के नव आत्मोदय से स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित।'
"स्वर्णकिरण"

इत्यादि—

—उत्तरा (भूमिका) पृ० २१, २२

पाठक देखेंगे कि युगवाणी के साम्य के स्थान पर स्वर्ण किरण में 'पश्चिम का जीवन सौष्ठब' और अद्वैतवाद के स्थान पर 'प्राची का नव आत्मोदय' हो गया है। यही संतुलित रूप है।

(२) गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय—गाँधीवाद और मार्क्सवाद के समन्वय का स्वर 'युगवाणी' से लेकर 'उत्तरा' तक मिलता है। 'उत्तरा'

में कवि की स्थायी-मनोभूमि का परिपाक है। इसलिए समन्वय का यह रूप पन्त के स्थायी चिन्तन का अंश है। निम्नलिखित उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

"साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण !

× × × ×

गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण ?

× × × ×

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद !"

समाजवाद—गांधीवाद (युगवाणी)

"चरमोन्नत जग में जबकि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यन्त्र यान, वैभव महान,
सेवक हैं विद्युत बाष्प शक्ति धन बल नितान्त
फिर क्यों जग में उत्पीड़न ? जीवन यों अशांत ?"

इसका कारण है—

"चर्वित इसका विज्ञान ज्ञान वह नहीं पचित।
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित !"

और इसका निदान है—

"चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का हो प्रवेश।
बापू! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?"

—बापू ! (ग्राम्या)

यहाँ कवि भौतिकता से त्रस्त जगत के उद्धार के लिये गाँधीवाद को समर्थ मानता है।

गाँधीवाद के विषय में कवि कहता है—"इस युग के महापुरुष गांधी जी

भी अहिंसा को एक व्यापक साँस्कृतिक प्रतीक के ही रूप में दे गए हैं; जिसे हम मानव चेतना का नवनीत, अथवा विश्व मानवता का एक मात्र सार कह सकते हैं।·······सत्य अहिंसा के सिद्धान्तों को मैं अन्तः संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूं।"

(उत्तरा भूमिका पृ० १३)

गाँधीवाद के इसी महत्व के कारण वह गाँधीवाद और लोक संगठन (मार्क्सवाद का एक पक्ष) के समन्वय की बात कहता है—

"अतएव युग पुरुष को पूर्णत् सचेष्ट करने के लिये यदि लोक संगठन के साथ गाँधीवाद को पीठिका बना-कर मनः संगठन (संस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाए और मनुष्य की सामाजिक चेतना (संस्कृति) का विकसित विश्व-परिस्थितियों (वाष्पू-विद्यु त आदि) के अनुरूप ही नवीन रूप से सक्रिय समन्वय किया जाए तो वर्तमान के विक्षोभ के आर्त्तनाद तथा क्रान्ति की क्रुद्ध ललकार को लोक-जीवन के संगीत तथा मनुष्यता की पुकार के रूप में बदला जा सकता है; एवं क्रान्ति के भीतरी पक्ष को भी सचेष्ट कर उसे परिपूर्ण बनाया जा सकता है।"

(उत्तरा–भूमिका पृ० ४)

कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गाँधीवाद प्रतिक्रियावादी है और मार्क्सवाद प्रगतिवाद। अतः दोनों में सामंजस्य होना असंभव है। इसका एक कारण यह है कि मार्क्सवादी आलोचकों के लिए मार्क्सवाद प्रगतिवाद है और जो मार्क्सवाद नहीं है वह पलायन वाद। मार्क्सवाद और प्रगतिवाद को पर्यायवाची मानने पर ही ऐसे असंतुलित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इन आलोचकों को द्वितीय यह बात भी ध्यान में रखना चाहिए कि जब कवि मार्क्सवाद और गांधीवाद के समन्वय की बात कहता है, तो वह मार्क्सवाद के किस पक्ष को ग्रहण करता है। पन्त ने उपरोक्त युगवाणी की कविता का शीर्षक 'समाजवाद—गांधीवाद रखा है न कि 'मार्क्सवाद—गांधीवाद।' पन्त ने मार्क्सवाद का प्रयोग सर्वत्र उसके सामाजिक संगठन के मूल्य वान रूप में ही किया है। पन्त ने मार्क्सवाद को अपने दृष्टिकोण के अनुरूप देखा है—उसी प्रकार जिस प्रकार उसने अद्वैत को अपने दृष्टिकोण से देखा है। पन्त ने

जहाँ भी मार्क्सवाद को ग्रहण किया है, वहाँ मार्क्सवादियों के मार्क्सवाद के अर्थ में नहीं अपने मार्क्सवाद के रूप में। कवि ने मार्क्सवावियों के मार्क्सवाद का खण्डन इन शब्दों में किया है—

"सहस्रों वर्षों से अध्यात्मक दर्शन की सूक्ष्म सूक्ष्मतम झंकारों से रहस-मौन निनादित भारत के एकान्त मनोगगन में मार्क्स तथा एँगिल्स के विचार दर्शन की गूंजें बौद्धिकता के शुभ्र अन्धकार के भीतर से रेंगने वाले झींगुरों की रुँधी हुई झनकारों से अधिक स्पंदन नहीं पैदा करती।"

(उत्तरा—भूमिका पृ० २०)

"...द्वन्द्व-तर्क या भौतिकवाद का महत्व दिखाना भारतीय दर्शन के विद्यार्थी के लिए हास्यस्पद दार्शनिक तुतलाहट से अधिक अर्थ-गौरव नहीं रखता।" (वही पृ० २०)

अब यह भी सुन लीजिये कि पन्त मार्क्सवाद की ओर क्यों आकृष्ट हुआ—

"मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन—पक्ष में नहीं, उसके वैज्ञानिक (लोकतंत्र के रूप में मूर्त्त) आदर्शवाद में है, जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है; किन्तु उसे वर्ग-क्रान्ति का रूप देना अनिवार्य नहीं है।"

(वही—पृ० २१)

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि पंत के मार्क्सवाद के किस पक्ष का संयोग गांधीवाद से किया। यह तो पंत भी जानता है कि मार्क्स के वर्ग-संघर्ष और रक्त-क्रान्ति के लिए गांधीवाद में कोई स्थान नहीं है। सच तो यह है कि कवि गाँधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय नहीं कर रहा है, वरन् अपने दृष्टि कोण के अनुरूप गांधीवाद का संगठन कर रहा है। या फिर गांधीवाद को अध्यात्मिक शक्तियों का प्रतीक मानते हुए और मार्क्सवाद को भौतिकवाद का संकुचित रूप समझते हुए हम कवि के गांधी-मार्क्स समन्वय को आत्म-अनात्म समन्वय का रूप मान सकते हैं।

३—अध्यात्मकवाद और भूतवाद का समन्वय—दर्शन क्षेत्र में चेतन और पदार्थ के विरोध एवं संघर्ष की बात हो चुकी है। उसके समन्वय के भी अनेक प्रयत्न हुए। पन्त आरम्भ से ही समन्वयवादी रहा है। उसकी समन्वया-

त्मक बुद्धि के वैभव का पूर्ण परिचय हमें इसी अध्यात्म और भूतवाद के सामंजस्य में मिलता है।

आत्मवाद और वस्तुवाद विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। अध्यात्मवादी आदर्शवादी होता है, व्यक्ति पर विश्वास करता है और अन्तर्जगत पर अधिक बल देता है। वस्तुवादी यथार्थवादी होता है, समाज पर विश्वास रखता है और बहिर्जगत पर अधिक बल देता है। पन्त ने आदर्श और यथार्थ, का व्यक्ति और समाज का, अन्तर्जगत और बहिर्जगत का भी सामंजस्य किया है। अध्यात्मवादी की साधना ज्ञान के रूप में प्रकट होती है वह मानव जीवन का ऊर्ध्वतल है और पूर्व की निजी संपत्ति है। वस्तुवादी की साधना विज्ञान के रूप में प्रकट होती है, वह मानव जीवन का समतल है, और पश्चिम की निजी संपत्ति है। पन्त ने ज्ञान और विज्ञान का ऊर्ध्वतल और समतल का, पूर्व और पश्चिम का समन्वय करने का उपक्रम किया है। पन्त की विशद सामंजस्य भावना तुलसी से अधिक विराट् है। पूर्व और पश्चिम का ससन्वय आज के विज्ञान के युग में ही संभव है। तुलसी के युग में तो वह स्वप्न भी नहीं था। विशाल दृष्टि के कारण ही समन्वय का यह रूप उपरोक्त दोनों रूपों से कहीं अधिक संतुलित, स्वस्थ और काम्य है। निम्नलिखित उद्धरणों में हमें अध्यात्म और भूतवाद का समन्वय दिखाई देता है—"भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान, जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।"

'बापू' :—युगवाणी

"जड़ समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर।"

'कला के प्रति' (ग्राम्या)

बंधता प्रकाश तम-बाहों में
सुर मानव तन करते धारण,
फिर लोक चेतना रंगभूमि,
भू स्वर्ग कर रहे परिरंभण।"

—निर्माणकाल (उत्तरा)

पन्त एक ऐसी संस्कृति का निर्माण चाहता है जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ भौतिक समृद्धि भी छलकती दिखाई दे। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति ही उद्देश्य न हो, मानसिक विकास भी निखर उठे। ऐन्द्रीय चेतना भी उल्लसित हो और मनोचेतना भी पल्लवित होती रहे। केवल बाह्य साम्य ही पर्याप्त नहीं है, हृदय के साम्य की भी आवश्यकता है।

"मानव को आदर्श चाहिए
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए,
बाह्य विधान उसे हैं बंधन
यदि न साम्य उनमें अन्तरतम–"

—'चींटी'

"भौतिक दर्शन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सत्य को सामाजिक वास्तविकता में परिणत करने योग्य समाजवादी विधान का जन्म दाता है।"

(आधुनिक कवि–भूमिका पृ० २७)

आदर्श और यथार्थ का समन्वय कवि इन शब्दों में करता है—

"किन्तु यदि हम आदर्श तथा वस्तु का एक ही सत्य को, जो अव्यक्त तथा विकासशील होने के कारण दोनों से अतिशय तथा ऊपर भी है—सूक्ष्म-स्थूल रूप या विम्ब प्रतिविम्ब मानलें तो दोनों दृष्टिकोणों में सहज ही सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है; और आदर्श तथा वस्तुवादी, अपनी-अपनी उपयोगिता तथा सीमाओं को मानते हुए, विश्वकर्म में परस्पर सहायक की तरह हाथ बंटा सकते हैं।"

(उत्तरा भूमिका पृ० ८)

अन्तर्जगत (सूक्ष्म) और बहिर्जगत (स्थूल) का सामंजस्य इन शब्दों में-

'......इसलिए भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं उसके लिये हमें बाहर भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिये, सूक्ष्म और स्थूल दोनों शक्तियों से सामंजस्य करना चाहिये।"

(वही—पृ० १७)

अध्यात्म और भूतवाद के इस समन्वय में और इन तर्कों में हम श्री अरविन्द के दर्शन का प्रभाव स्पष्ट देखते हैं। किन्तु एक बात याद रखनी चाहिए

कि कवि की चिन्तन की दिशा आरम्भ से ही समन्वयत्मक रही है। उसे सांस्कृतिक उन्नति पर भी आस्था थी और भौतिक उन्नति पर भी विश्वास था। किंतु उसे अपनी मान्यताओं का कोई 'बौद्धिक आधार' नहीं मिला। यह उसे श्री अरविन्द के 'भागवत जीवन' (The life Divine) में प्राप्त हुआ जिसे पढ़ कर उसके अनेक संशय दूर हो गए। कवि के स्वतंत्र चिन्तन और श्री अरविन्द के चिन्तन की समानता का परिचय तीन बातों से मिलता है। प्रथम कवि आरंभ से ही विकासवाद का समर्थक रहा है। श्री अरविन्द में भी चेतन शक्ति का विकास दिखाई देता है। द्वितीय कवि को आध्यात्मिकता के प्रति मोह सदैव रहा। श्री अरविन्द में अध्यात्मिक दर्शनकी चरम परिणति हुई है। पंत आरंभ से ही अध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय के पक्ष में रहा और एकाँगी मतों का विरोध करता रहा। श्रीअरविन्द ने भी भौतिकवाद या अध्यात्मिकवाद की एकान्तिक महत्ता का खण्डन कर दोनों का समन्वय किया। पन्त के विश्वास 'श्री अरविन्द से मिलते थे। उनका तार्किक आधार भी उसे श्री अरविन्द में ही मिला। किन्तु स्वर्ण काव्य में कवि की मनोभूमि में एक परिवर्तन भी आया जिसका आधार है श्री अरविन्द का दर्शन। कवि आरम्भ से ही आदर्शवादी रहा। 'ग्राम्या' में वह ग्राम्य जीवन के प्रति-यथार्थ के प्रति-बौद्धिक सहानुभूति ही जगा सका जिस का कारण कवि ने यह दिया कि उसने उन्हें जीवन की सुषमा से भरा पूरा नहीं देखा वरन् एक नाशोन्मुख संस्कृति के प्रतीक के रूप में देखा जिसके खंडहरों पर नवीन संस्कृति का निर्माण होने को है। जिसके स्वरूप की अभिव्यक्ति 'मानव' और 'दो लड़के' आदि कविताओं के अन्त में हुई है। कवि ने 'मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन' की ओर ताकने वालों को 'पूण्य प्रसू भू' की ओर इसलिए देखने के लिए कहा है ताकि वे नवीन संस्कृति के निर्माण का प्रयत्न कर सकें, भूमि पर ही स्वर्ग उपस्थित कर सकें, यहाँ कवि आदर्श से यथार्थ की ओर नहीं उतर रहा है, वरन् कुत्सित आदर्श से रम्य आदर्श की ओर उतर रहा है। स्वर्ण काव्य और उत्तरा आदि परवर्ती काव्य में नाशोन्मुख यथार्थ जीवन से विरक्त होकर कवि नव संस्कृति का गान करने में लीन हो गया। श्री अरविन्द के दर्शन के अनुसार अन्तर्मन का उदय होना स्वाभाविक एवं निश्चित है, उसी अन्तर्मन के उल्लास

के गीत कवि के परवर्ती काव्य में मिलते हैं। नव मानव में हृदय का भी पूर्ण उत्कर्ष है और भौतिक ऐश्वर्य की भी चरम तृप्ति है। इसी हृदय के उत्कर्ष और भौतिक ऐश्वर्य का सामंजस्य कवि का लक्ष्य था। इस प्रकार पन्त आत्मवाद और भूतवाद का समन्वय करने में सफल हुआ जिसका आरम्भिक स्वर 'गुंजन' 'तप', 'प्रार्थना' और 'मानव' आदि कविताओं में सुनाई देता है।

विरोध या विकास ?

मैंने उपरोक्त विवेचन में कवि के मानसिक विकास की ओर भी यत्र-यत्र संकेत किया। 'वीणा' में सरल आदर्श है ; ग्रन्थि और पल्लव में वियोग के अश्रुगीत। पल्लव की अन्तिम कविता परिवर्तन में आघात नैराश्य और आश्वासन दिखाई देता है। युगान्त में 'नित्य जग' की आस्तिकता और संतुलन है। वीणा का आदर्श-स्वर एक मधुर गीत बन गया। युगवाणी और ग्राम्या में यथार्थ की कुत्सा का आघात है जिसकी चरम पीड़ा 'ताज' 'चींटी' 'ग्राम चित्र' आदि में व्यक्त हुई है। यथार्थ की करुणा का उच्छेद करने के लिए कवि विभिन्नवादों की ओर देखता है, उनका समन्वय करता है। स्वर्ण काव्य, उत्तरा आदि परवर्ती काव्य में समन्वय का रूप निखर उठता है। कवि के आदर्श का अखंड स्वर इन उद्धहरणों से स्पष्ट हो जाता है—

कुमुद कला वन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर मा।
जग का तिमिर त्रास हर हूँ—
नीरव रजनी में निर्भय !

वीणा पृ० ४

"तप रे विधुर विधुर मन !
अपने सजल स्वर्ण से पावन।
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम ॥"

तप (गुंजन)

"जा सके खेगों सा मेरा कवि,
विश्री जग की सन्ध्या की छवि !

गा सके खगों सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात फिर आवे रवि।

कलरव—युगान्त

"वाणी, वाणी,
मुझे सृष्टि की वाणी दो अविनश्वर ?
जो बहु वर्ण, गंध रूपों में
करती सृजन निरन्तर,

× × ×

जो वाणी चिर जन्म—मरण
तम 'औ' प्रकाश से है पर,"

वाणी—युगवाणी

"ज्योतित कर जन मन के जीवन का अन्धकार,
तुम खोल सको मानव उर के निःशब्द द्वार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !"

वाणी—ग्राम्या।

परवर्ती काव्य में तो आदर्श का गान ही प्रधान विषय है।

आदर्श की इस निरन्तर धारा के होते हुए भी आलोचकों ने कवि में अन्तर्विरोध दिखाने की चेष्टा की है। मैंने भी एक स्थान पर उसी ओर संकेत किया है। अब उसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

पन्त में अन्तर्विरोध दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम तो युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं के भीतर और द्वितीय युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं तथा परवर्ती काव्य की रचनाओं के बीच।

इस आक्षेप को भलीभाँति समझने की आवश्यकता है। युगवाणी एवं ग्राम्या के अन्तर्विरोध के रहस्य को समझने के लिए हमें उसमें वर्णित कवि के तीनों रूपों को देखना होगा। कहीं कवि के स्वच्छन्द चिन्तक का रूप प्रकट होता—जैसे 'दो लड़के', 'चींटी', '१९४०' आदि कविताओं में। कहीं कवि का गांधीवाद से प्रभावित रूप दिखाई देता है। जैसे युगवाणी की 'बापू' कविता में। कहीं कवि का मार्क्सवादी रूप लक्षित होता है जैसे—'महात्माजी

के प्रति' कविता में। यहाँ विरोध के तीन रूप मिलते हैं—

(१) स्वच्छन्द चिन्तन और गांधीवाद में विरोध। ग्राम्या की अहिंसा कविता में कवि अहिंसा के एकान्तिक ग्रहण का विरोध करता है।

(२) स्वच्छन्द चिन्तन और मार्क्सवाद में विरोध। 'संकुचित भौतिक वादियों के प्रति' कविता में यह विरोध दिखाई देता है।

(३) गांधीवाद और मार्क्सवाद में विरोध—युगवाणी की 'बापू' या ग्राम्या की 'बापू' कविता में और 'महात्मा जी के प्रति' कविता में।

इस विरोध दर्शन के कारण दो हैं। प्रथम तो कवि की विचार धारा में अभी पूर्ण संतुलन नहीं आ पाया। द्वितीय, पन्त कवि है और उसने मुक्तक गीत ही लिखे हैं। यदि कवि ने प्रबन्ध काव्य लिखा होता या निबन्ध अथवा उपन्यास लिखा होता तो अन्तर्विरोध मिट जाता। एक गीत में एक ही दृष्टि-कोण दिया जा सकता है। परवर्ती काव्य के गीतों के अन्तर्विरोध के अभाव का कारण है कवि के दृष्टिकोण का स्वस्थ संतुलन। 'ज्योत्सना' के भीतर कहीं भी अन्तर्विरोध दिखाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि उसमें कवि का स्वच्छन्द चिन्तन प्रतिफलित हुआ। विचारधारा के क्रमिक विकास को समझने के लिए 'ज्योत्सना' कवि की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कृति है।

अब हम अन्तर्विरोध के दूसरे रूप की—युगवाणी तथा ग्राम्या और परवर्ती काव्य के बीच के विरोध की मीमाँसा करेंगे। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो यह विरोध मिट जाता है। विरोध का एकमात्र कारण यह है कि पूर्ववर्ती काव्य में कवि की दृष्टि बहिर्जगत की ओर अधिक रही है, किन्तु अन्तर्जगत के महत्व की ओर भी वह सजग रहा है। चींटी कविता में वह कहता है—

"मानव को आदर्श चाहिये,
संस्कृति आत्मोत्कर्ष चाहिये;"

परवर्ती काव्य में कवि की दृष्टि मानव के अन्तर्जगत की ओर अधिक रही है। किन्तु यहाँ भी कवि ने बहिर्जगत के महत्व का विस्मृत नहीं किया। कवि ने स्वयं इसी बात को कहा है—

"बाहरी दृष्टि से उन्हें (पाठकों को) 'युगवाणी' तथा 'स्वर्ण किरण'

काल की रचनाओं में शायद परस्पर-विरोधी विचार-धाराओं का समावेश मिले पर वास्तव में ऐसा नहीं है।"

उत्तरा, भूमिका पृ० (१)

"'युगवाणी;' तथा 'ग्राम्या' में यदि ऊर्ध्व मानों का सम धरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण' और स्वर्णधूलि' में समतल मानों का ऊर्ध्व धरातल सर, जो तत्वतः एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं।"

वही—पृ० २

इन उद्धरणों से उपर्युक्त विवेचन की पुष्टि होती है। किन्तु 'युगवाणी' 'ग्राम्या' रचनाओं के बीच मैंने जिस अन्तर्विरोध की ओर संकेत किया है, वह स्वीकार करना ही पड़ता है।

एक बात और। आलोचक उस बात का आग्रह ही क्यों करे कि किसी भी विचारक में आरंभ से अन्त तक विचारों का ऐक सूत्रीय विकास ही मिले। संभव हो सकता है कि वह कभी किसी ऐसे विचार को स्वीकार कर ले, जिसे बाद में नए सिद्धान्त के आलोक में वह अस्वीकार कर दे या उसे परिष्कृत कर ले। किसी भी विचारक में हमें इस प्रकार का विरोध मिल सकता है, और मिलता है। कौन नहीं जानता कि ब्रिटिश साम्राज्य का स्वामिभक्त सेवक गांधी वाद में चलकर उसका उग्र विरोधी बन गया था। इसी बात को पन्त ने कहा है कि "किसी लेखक की कृतियों में विचार साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को ही अधिक महत्व देना चाहिए,..."

(वही—पृ० २)

बौद्धिकता की प्रधानता क्यों?—'गुञ्जन' के उपरान्त की काव्यकृतियों में बौद्धिकता की प्रधानता बताई जाती है। कवि भी ग्राम्या में बौद्धिक सहानुभूति की बात करता है। 'वाणी' कविता में वह अपनी वाणी से 'जनमन में विचार वहन करने के लिए ही कहता है, भाव नहीं। इसका क्या कारण है? क्या यह दोष है?

पन्त केवल कवि ही नहीं है, चिन्तक भी हैं, समाज और युग के प्रति प्रबुद्ध भी हैं। जीवन की विषमताओं को दूर करने के उपाय दो हैं। प्रथम तो उनकी तीक्ष्ण आलोचना की जाए। (यथार्थवादी काव्य का जन्म यहीं से

होता है)। द्वितीय, समरस स्थितियों का मधुर अङ्कन कर युग चेतना को उसकी ओर आकर्षित किया जाए। (यह आदर्शवादी काव्य का लक्षण है)। आलोचना करने के लिए हृदय की नहीं बुद्धि की आवश्यकता होती है। बुद्धि का कार्य हृदय से नहीं लिया जा सकता। फलतः पन्त के गीतों में बौद्धिकता की छाया सघन हो उठी।

और फिर मैं पूछता हूँ गीतों में बौद्धिकता दोष ही क्यों है ? सामाजिक चेतना को उभारने के लिए प्रायः निबन्धों का प्रयोग होता है जैसा कि वाल्टेयर और रूसों में मिलता है। पन्त ने यही कार्य कविता के साधन द्वारा करना चाहा। वह ऐसा करने में सफल भी हुआ। कविता में बौद्धिकता का समावेश कर पन्त ने उसके स्वरूप को विकृत नहीं किया है, वरन् उसे आधुनिक युग की परिस्थितियो के अनुकूल विकसित करने का प्रयत्न किया है। बुद्धिगत साधारणीकरण की आवश्यकता आज के युग की आवश्यकता है। युगवाणी की 'भूत दर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गांधीवाद' आदि कविताओं में पन्त ने बौद्धिक सिद्धान्तों एवं तन्त्रों को आलम्बन बनाया है। आलम्बन बौद्धिक हैं तो साधारणीकरण भी बुद्धि का ही होगा। आगे चल कर हृदय का साधारणीकरण भी सम्भव हो सकेगा। बौद्धिकता की प्रधानता के कारण ही कवि ने युगवाणी को गीत-गद्य कहना पड़ा। गीत-गद्य कविता का विकसित स्वरूप है। उसे कविता कहना भी उचित ही है। परवर्ती काव्य में भी बौद्धिकता की ही प्रधानता दिखाई देती है।

कला का अभाव क्यों ?

'युगवाणी', 'ग्राम्या' में जहाँ बौद्धिकता की प्रधानता का दोष दिखाया जाता है, वहाँ कला के अभाव की बात भी कही जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या बौद्धिकता की प्रधानता के कारण ही कला का अभाव होता है ? इसे समझना होगा।

बुद्धि की दो दृष्टियाँ हैं। एक आलोचनात्मक दूसरी सृजनात्मक। जब बुद्धि आलोचनात्मक होती है तब कला का अभाव होता है। 'युगवाणी' 'ग्राम्या' में यही हुआ है। जब बुद्धि सृजनात्मक और वर्णनात्मक होती है तब

कला का स्वरूप अक्षुण्ण रहता है। परवर्ती काव्य—स्वर्णकिरण आदि में यही हुआ है।

कला से क्या अभिप्राय है? भावप्रवणता या शैली का उत्कर्ष या कल्पना की विविधता? उपरोक्त आलोचना में आलोचक कला का अर्थ शैली के उत्कर्ष और कल्पना की विविधता से ही लगाते हैं। किन्तु यह संकुचित अर्थ है। भाव और बुद्धि भी कला के तत्व हैं। चारों तत्वों के समन्वय से उत्कृष्ट कोटि के काव्य का सृजन होता है। एक तत्व की क्षीणता में भी काव्य काव्य ही रहेगा, विज्ञान नहीं बन जाएगा।'

क्या पंत पलायनवादी है?

पन्त के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि वह पलायनवादी है। युगवाणी,—ग्राम्या में जीवन संघर्ष में उतर कर भी नहीं उतरा और फिर, भाग कर दर्शन के आश्रय में जा छिपा। यह कहा जाता कि पन्त तो बैठा-बैठा आने वाले स्वर्ण युग के गीत गाता रहता है, वर्त्तमान के प्रति पूर्ण उदासीन है। इसका उत्तर कवि ने दिया है—

"यदि स्वर्ण युग की आशा आज की अतृप्त आकाँक्षा की कल्पनिक पूर्ति और पलायन प्रवृत्ति का स्वप्न भी है तो वह इस युग की मरणासन्न वास्तविकता से कहीं सत्य और अमूल्य है।" आधुनिक कवि—भूमिका पृ० २८ पन्त का यह पूर्ण विश्वास है कि युगपुरुष सचेष्ट होकर अवश्य ही नवीन संस्कृति का निर्माण करेगा। जैसा कि पण्डित नेहरू ने कहा 'है आज अणु-शक्ति के युग में मनुष्य के सामने दो ही रास्ते हैं। या तो वह आपसी युद्ध में अपने आप को नष्ट-भ्रष्ट करलें और या अणु शक्ति के सहारे नवीन मानवता का निर्माण करें। आज हम संसार को दूसरे रास्ते पर चलने को व्यग्र पाते हैं। पन्त की बात सत्य हो रही है।

जो लोग मार्क्सवाद को प्रगतिवाद और उससे इतर सब सिद्धान्तों को पलायनवाद मानते हैं, वे भ्रम में हैं। मार्क्सवाद और प्रगतिवाद के समान अर्थ में प्रयोग का खण्डन कर चुका हूँ। इसी बात को पन्त ने कहा है।

"हमारे कतिपय प्रगतिशील विचारक प्रगतिवादको वर्गयुद्ध की भावनाओं

से सम्बद्ध साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं, उन्हें इस युग की अन्य सभी प्रकार की प्रगति की धाराएँ प्रतिक्रियात्मक, पलायनवादी, सुधार-जागरण वादी तथा युग्मचेतना से पीड़ित दिखाई देती हैं। ये आलोचक अपने सांस्कृतिक विश्वासों में मार्क्सवादी ही नहीं अपने राजनीतिक विचारों में कम्यूनिस्ट भी हैं।"

उत्तरा—भूमिका पृ० २

मैंने जहाँ भी प्रगतिवाद का प्रयोग किया है, वह प्रगतिवाद के अर्थ में ही मार्क्सवाद के अर्थ में नहीं। मार्क्सवादियों के अनुसार सभी प्रकार के सांस्कृतिक आन्दोलन प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन है। पन्त वर्गहीन समाज का पक्षपाती है। विषम आर्थिक वितरण का विरोधी है, आध्यात्मिकता के एकान्त महत्त्व को त्याज्य समझता है, किन्तु फिर भी वह पलायनवादी है क्यों कि वह सांस्कृतिक उत्थान की बात कहता है, आत्मवाद और भूतवाद के समन्वय की बात कहता है, वर्ग-युद्ध और रक्त-क्रान्ति को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता है—या स्पष्टतः यों कहिए कि मार्क्सवाद को पूर्णतः स्वीकार नहीं करता है। पन्त ने स्वयं इस बात को स्पष्ट किया है।

"मेरा मन यह स्वीकार नहीं करता कि मैंने अपनी रचनाओं में जिस सांस्कृतिक चेतना को वाणी दी है, एवं जिस मनः संगठन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, उसे किसी भी दृष्टि से प्रतिगामी कहा जा सकता है। मैंने सदैव ही उन आदर्शों, नीतियों तथा दृष्टिकोणोंका विरोध किया है जो पिछले युगों की संकीर्ण परिस्थितियों के प्रतीक हैं, जिनमें मनुष्य विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों तथा वर्गों में विकीर्ण हो गया है।......मेरा विनम्र विश्वास है कि लोक संगठन तथा मनः संगठन एक दूसरे के पूरक हैं, क्यों कि वे एक ही युग (लोक) चेतना के बाहरी और भीतरी रूप हैं।..........जो विवेचक सभी प्रकार के मनः संगठन तथा सांस्कृतिक प्रयत्नों को प्रतिक्रियात्मक तथा पलायनवादी कहकर उनका विरोध करते हैं उनकी भावना युग प्रबुद्ध होने पर भी विचारधारा वादों से पीड़ित तथा बुद्धि भ्रम से ग्रस्त है।"

—वही पृ० ५, ६

इस भ्रम को दूर करने के लिए दो बातों की आवश्यकता है। प्रथम,

मार्क्सवाद का तार्किक पद्धति पर खण्डन (जैसा कि पन्त के दृष्टिकोण के आधार पर पहले किया जा चुका है) द्वितीय, प्रगतिवाद की नवीन, व्यापक एवं स्वस्थ रूपरेखा का निर्माण। यहाँ इसके विषद उद्घाटन के लिए स्थान नहीं है। संक्षेप में ही कुछ विवेचन किया जाएगा।

प्रगति का अर्थ है उन्नति करना। यह उन्नति मानसिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों में होगी। इसे यदि भौतिक उन्नति तक ही सीमित कर दिया जाए तो मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रह जाएगा। यदि दिमाग पर पट्टी बाँध कर मनुष्य हवा में उड़ने लगा, तो वह पक्षियों के समान तो हो जाएगा किन्तु मनुष्य नहीं कहला सकता। प्रगतिवादी दर्शन को पलायन का प्रतीक मानते हैं। कोरी मान्यताएँ बेकार हैं। उन्हें तर्क पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न होना चाहिए। हिन्दी के किसी भी मार्क्सवादी आलोचक ने आध्यात्मिक मूल्यों का तार्किक पद्धति पर खण्डन करने का प्रयत्न नहीं किया। क्या वह ऐसा कर नहीं सकता या करना नहीं चाहता? दोनों ही रूपों में उसकी असफलता दिखाई देती है।

आदर्श, यथार्थ और प्रगति—पन्त के यथार्थवादी रूप पर भी प्रकाश डाला गया है, और आदर्शवादी दृष्टिकोण पर भी। मार्क्सवादी के लिए प्रत्येक प्रकार का आदर्श पलायन का प्रतिरूप है। यह गलत है। यथार्थ और आदर्श प्रगति के दो पहलू हैं। यथार्थ और आदर्श से भिन्न प्रगति का कोई स्वरूप ही नहीं हो सकता। यथार्थ की पीड़ा का चित्रण कर कवि जनता को दोषों और रूढ़ियों से मुक्त करता है, और आदर्श का रमणीय चित्र खींचकर उसे उसकी ओर बढ़ने के लिए लालायित करता है। बिना आदर्श के प्रगति अन्धी है। बिना यथार्थ के प्रगति खोखली है। जीवन के अनुभव से अपने इस मत की पुष्टि करता हूँ। लापरवाह बच्चे को माता पिता डाँटते हुए कहते हैं 'यदि तू नहीं पढ़ेगा तो भंगी बनेगा।' इस कथन के मूल में बालक के हित की कामना छिपी है। यह यथार्थ ज्ञान द्वारा प्रगति की प्रेरणा का रूप है। और कभी माँ-बाप बच्चे से कहते हैं "यदि तू पढ़ेगा तो राजा बनेगा।" इस कथन के मूल में भी उसके हित की कामना छलकी पड़ती ही। यह आदर्श निरूपण द्वारा प्रगति की प्रेरणा का रूप है। इसी प्रकार साहित्य-कार भी

अबोध जनता को कभी कोसता है, गाँवों को 'अपरिचिव नरक' कहता है, और कभी 'भूपर ही स्वर्ग' के दर्शन कराता है। दोनों के मूल में है जनता के हित की भावना, प्रगति की प्रेरणा।

डंटन और आचार्य शुक्ल ने 'साधनावस्था' और 'सिद्धावस्था' (या कला काव्य) के काव्य का भेद माना है। उपरोक्त नवदृष्टि के अनुसार हम साधनावस्था के काव्य का यथार्थवादी काव्य और सिद्धावस्था के काव्य को आदर्शवादी काव्य कहते हैं। प्रत्येक देश में दोनों प्रकार के काव्य मिलते हैं। कभी-कभी एक ही काव्य में दोनों रूपों का सामंजस्य दिखाई देता है—जैसे रामचरितमानस।

क्या यथार्थ चित्रण प्रगति-विरोधी नहीं देता? होता है। कब? जब वह पाठक को गर्हित यथार्थ में अनुरक्त करे। फ्राइड से प्रभावित यथार्थवादी ऐसे ही जघन्य काव्य का निर्माण किया करते हैं।

जब आप समाज की रूढ़ियों और कुरीतियों को दूर करने के लिए कहते हैं तो क्या आपके दिमाग में सुन्दर विश्वास और सुन्दर रूढ़ियाँ नहीं होतीं? मार्क्सवादी भी आदर्शवादी होता है। किंतु उसका आदर्श होता है मार्क्सवाद। यह संकुचित मनोवृत्ति है। इसीलिये त्याज्य है। लोग विद्यार्थियों को जीवन का लक्ष्य बनाने के लिए कहा करते हैं। तो क्या साहित्यकार को ही आदर्श चिन्तन की आवश्यकता नहीं है?

उपरोक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता हैं कि आलोचना क्षेत्र में 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद'—एक नया नाम रखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि फिर—यथार्थोन्मुख आदर्श की बात भी होनी चाहिए। यदि यथार्थ को आदर्श की ओर अग्रसर करने की आवश्यकता है, तो क्या आदर्श का यथार्थ के अनुरूप ढालने की आवश्यकता नहीं है? यह भ्रम तभी उत्पन्न होते हैं—जब हम यथार्थ और आदर्श को एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग दो सिद्धांत मानते हैं। मूल सत्य तो यह है कि प्रत्येक यथार्थ-चित्रण आदर्शोन्मुख होगा और प्रत्येक आदर्श यथार्थ मूलक होगा। दोनों में चोली-दामन का सा साथ है। प्रगति के मधुर फल में यथार्थ की गुठली है और आदर्श का गूदा।

मैं आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पक्षपातियों से पूछता हूँ कि क्या 'केवल' यथार्थ का चित्रण प्रगति की प्रेरणा नहीं देता क्या 'ग्राम-चित्र' कविता को पढ़कर पाठक के मन में विक्षोभ नहीं उत्पन्न होता जो 'उन अपरचित नरकों' को धारती के स्वर्गों में बदल देने की प्रेरणा देता है ? इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि जहाँ 'केवल' यथार्थ का चित्रण होगा, वहाँ भी प्रगति का उत्साह तरंगित दिखाई देता है। इसी प्रकार आदर्श में भी प्रगति की कामना ही अवरित है। पन्त जहाँ यथार्थवादी है वहाँ भी वह प्रगति कामी है और जहाँ आदर्शवादी है वहाँ भी वह प्रगतिवादी है क्योंकि यथार्थ-और आदर्श प्रगति के ही दो पहलू हैं।

व्याख्या

दो बातें

सुमित्रानन्दन पन्त के आधुनिक कवि की दो टीकाएँ छपी हैं। एक श्री फूलचन्द्र पाण्डेय की टीका है जिसमें विस्तृत विवेचन भी जुड़ा है और दूसरी डाक्टर लक्ष्मीनारायण टण्डन 'प्रेमी' और रामखेलावन चौधरी की है। मुझे दोनों में अर्थ-सम्बन्धी भूलें प्रतीत हुईं। टण्डन-चौधरी की टीका पाण्डेय की टीका के आधार पर लिखी प्रतीत होती है। नीचे के टिप्पणी से नमूनों से ये दोनों बातें सिद्ध होती हैं—

(१) 'ग्रन्थि से' कविता के प्रथम छन्द की ये पंक्तियाँ हैं—

"लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।"

पाण्डेयजी ने दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार बदल लिया है—

'पूर्व को—पूर्व था, पर वह अद्वितीय अपूर्व था'

(पृ० ४२५)

और यह अर्थ किया है—

'यद्यपि ऐसी घटना सर्वथा सम्भव है परन्तु यह घटना विशेष रूप से विचित्र एवं अपूर्व घटना थी। यह एक दूसरा आश्चर्य था।'"

(पृ० ४२८)

इसी अर्थ को डाक्टर टण्डन-चौधरी ने इस प्रकार फैला दिया है—

"यह मेरे जीवन की एक अपूर्व एवं आश्चर्यमय घटना थी। यह दूसरा आश्चर्य मेरे लिये था। प्रथम मेरे डूबने की घटना और दूसरी एक बाला द्वारा त्राण और प्रेम दोनों पाने की घटना। डूबने की घटनाएँ तो हुआ ही करती हैं पर दूसरी घटना सर्वथा अपूर्व थी।" (पृ० ५४)

इस पंक्ति का मैंने यह अर्थ किया है—"पहला चन्द्रमा पूर्व दिशा में था किन्तु दूसरा (बाला का मुख) अनुपम था।"

(२)   इसी कविता में आगे कवि कहता है—

"छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की,
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप से।"

पाण्डेय जी ने इन पंक्तियों का यह अर्थ किया है—

"कवि कहता है कि वह लालिमा सौन्दर्य के अस्फुट सस्मित गढ़ों में सीप के समान छलकती थी।" (पृ० ४२६)

डाक्टर टण्डन-चौधरी ने भी यही अर्थ प्रस्तुत किया है—

"वह लज्जा लालिमा सौन्दर्य के अधखुले सस्मित गढ़ों में ऐसे स्वतः छलक रही थी जैसे सागर में सीप अपने आप झलकती है।" (पृ० ५५)

इन पंक्तियों का ठीक अर्थ यह है—

"सीप के समान अधखुले सस्मित गढ़ों से सौन्दर्य की बाढ़ सी छलकी पड़ रही थी।" उपमालंकार को न समझने के कारण ही दोनों टीकाओं में उपरोक्त गोलमाल हुई है।

(३)   'मछुए के गीत' कविता के सम्बन्ध में पाण्डेयजी ने लिखा है—

'मछुए के गीत' में कवि ने एक रूपक प्रस्तुत किया है। .... यहाँ सतर्क मानव मछुआ है, प्रेम की बंसी है तथा चेतने की मछली है।"

(पृ० ४७१)

डाक्टर टण्डन-चौधरी ने लिखा है—

"चेतना मछली है, मनुष्य मछुआ है और प्रेम ही बंसी है।"

(पृ० ६५)

ये दोनों अर्थ गलत हैं, और न ही इस कविता में रूपक है। ~~कवि~~ ने समासोक्ति अलंकार द्वारा अप्रस्तुत पक्ष में मुग्धा नायिका का वर्णन किया है। (पूर्ण अर्थ के लिए देखिए टीका)।

(४)   'महात्माजी के प्रति' कविता की प्रथम पंक्ति है—

'निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप शिखोदय।—'

पाण्डेय जी ने इसका अर्थ किया है—

"वह* कहता है कि तुम मानवता के निर्माण के अन्तिम प्रकाश हो....."
(पृ० ४६४)

डाक्टर टण्डन-चौधरी ने लिखा है—

"हे महात्मा! मानवता के निर्माण के आदर्शों के तुम अन्तिम दीपशिखा के प्रकाश हो।" (पृ० १४४)

(५) 'मुस्कान' कविता की ये पंक्तियाँ हैं—

"तारकों से पलकों पर कूद
नींद हर लेते नव-नव भाव,"

पाण्डेय जी ने इनका अर्थ किया है—

"कभी-कभी ये भाव तारकों (राक्षसों) की भाँति पलकों पर कूद पड़ते हैं और नींद का अपहरण कर लेते हैं।" (पृ० ४४३)

डाक्टर टण्डन-चौधरी ने लिखा है—

"कभी ये नये-नये भाव तारकों (तारकासुर एक राक्षस का नाम) अर्थात् राक्षसों के समान मेरी पलकों पर कूद पड़ते हैं और वे मेरी नींद को हर लेते हैं।" (पृ० ६८)

सुकुमार भावना के कवि की यह राक्षसी कल्पना! सीधा अर्थ यह कि "रात्रि के समय तारों के उदय होने पर अनेकानेक भाव मेरी आँखों में घिर आते हैं जिससे मेरी नींद भाग जाती है।"

इन भूलों के अतिरिक्त ऐसी ही अनेक अशुद्धियाँ हैं।

यदि आधुनिक कवियों के सम्बन्ध में कुछ लिखना 'बला मोल लेना' है तो छायावादी कविताओं की टीका करना तो एक विभीषिका है। किन्तु कुछेक अपवादों को छोड़ ऐसा नहीं है। शब्दों में न उलझ कवि के भावों को पल्लवित करने की ओर ही मेरा विशेष ध्यान रहा है किन्तु शब्दों की अपेक्षा कहीं-कहीं मिलेगी।

त्रुटियों के लिए विद्वानों से क्षमा प्रार्थना करता हुआ मैं समाप्त करता हूँ।

---

* कवि।

१-गीत

बाँध दिये   फूटते गान प्राणों से !

शब्दार्थ—मर्म कथा = हृदय की कहानी, प्रेम कथा।

भावार्थ—कवि प्रिय से सम्बोधन करता है—

हे प्रिय ! तुमने अपने जीवन को मेरे जीवन के साथ क्यों बाँध दिया ! मैं तो तुम्हारे लिए बिल्कुल अपरिचित हूँ। हमारी-तुम्हारी यह प्रेम की कहानी अब छिपी न रह सकेगी। तुम्हारे विरह में हृदय की बढ़ती पीर को अब मैं दबा न सकूँगा। और यह पीड़ा ही प्रकट होकर हमारे और तुम्हारे प्रेम को प्रकट कर देगी। मेरा अपने हृदय पर कोई अधिकार नहीं रहा। दिल की बात दिल से निकले हुए गीतों में अपने आप प्रकट हो जाती है।

यह विदेह   प्राणों से।

शब्दार्थ—विदेह = अलौकिक, दिव्य। अंतर्ज्वाला = हृदय की पीड़ा। दग्ध=जली हुई, अतृप्त।

भावार्थ—हमारे और तुम्हारे प्राणों का यह स्नेह बंधन अलौकिक है, शारीरिक आकर्षणों से परे है। प्रेम का यह नाता अलौकिक क्यों है यह कवि नीचे की पंक्तियों में दिखाता है। प्रेम के इस बन्धन को दृढ़ करने के लिए मेरे शरीर ने हृदय की अग्नि में जल कर तपस्या की है। योगी भी पंचानल में जल कर तपस्या करता है तभी अलौकिक पद को प्राप्त करता है। मेरा मुग्ध हृदय तुम्हारे सौन्दर्य की आग में अतृप्त इच्छाओं का होम कर रहा है। कवि के मन में अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति की चाह नहीं है। याज्ञिक भी अग्नि में सामग्री इत्यादि का होम करता है और विदेह हो जाता है। कवि कहता है कि मेरा हृदय इस प्रेम-तपस्या के बदले तुम से किसी दान की आकाँक्षा नहीं करता।

विशेष—अन्तिम छन्द में कवि प्रेम के निष्काम अतः उत्कृष्ट स्वरूप को अपनाता दिखाई देता है। समासोक्ति अलंकार के द्वारा "योगी के तप" और 'यात्रिक के यज्ञ' की ओर निर्देश करके कवि ने गंभीर प्रभाव का सृजनकिया है।

"विवश फूटते गान प्राणों से "में फूटते" का प्रयोग बहुत कलात्मक है।

२—मोह

छोड़ द्रुमों की ... बहलादूँ जीवन ?

शब्दार्थ—द्रुम=वृक्ष। माया = ममता। ऊषा-सस्मित किसलय-दल=ऊषा काल में कोपलों का समूह मुस्कराता सा दिखाई देता है। सुधा-रश्मि से उतरा जल=चन्द्रमा की किरणों से ओस गिरी है।

भावार्थ—कवि के लिए प्रकृति के आकर्षण के सामने नारी-सौंदर्य तुच्छ है। कवि कहता है—

हे बाले ! वृक्षों की मनोहर शीतल छाया को छोड़कर, प्रकृति से अपनी ममता को तोड़कर और अभी से ही सारे संसार को भूलकर मैं अपने नेत्रों को तेरे बालों के जाल में कैसे उलझा दूँ ? यह सभी जानते हैं कि नारी से प्रेम हो जाने के पश्चात् सारे संसार का वैभव भी तुच्छ हो जाता है।

चंचल लहरों और रङ्गीन इन्द्र धनुष को त्याग कर अभी से सारे संसार को भूल कर तुम्हारे कटाक्षों से हरिण के समान उन्मुक्त अपने मन को कैसे विद्ध करवा दूँ ? जिस प्रकार मृग बन में स्वेच्छा से घूमता है, उसी प्रकार मेरा मन भी निखिल सृष्टि के सौंदर्य का दर्शन करने के लिए स्वतन्त्र रहना चाहता है।

प्रकृति में कोयल का मदभरा गीत सुनाई देता है। वीणा खरीदी जा सकती है। उसका संगीत भी खरीदा जा सकता है। किन्तु भ्रमर की गुञ्जार नहीं खरीदी जा सकती। इसीलिए वह अमूल्य है। किन्तु वह प्रकृति में सुलभ है। फिर अभी से इस संसार को भूल कर केवल तुम्हारे ही गीतों से अपने कानों को कैसे भर लूँ ? प्रकृति में प्राप्त इस अलौकिक संगीत की उपेक्षा कैसे करूँ ?

ऊषा-काल में कोपलों का समूह मुस्कराता दिखाई देता है। सर्वत्र ओस की बूंदें पड़ी हुई हैं जा चन्द्रमा की किरणों से उतरी हुई जान पड़ती हैं।

फिर अभी से इस संसार को भूल कर मैं अपने जीवन को केवल तुम्हारे अधरामृत के नशे में ही कैसे बदल दूँ ?

विशेष—कविवर पन्त का प्रकृति-प्रेम प्रसिद्ध है। यह कविता उसकी परिचायक है। नारी के विविध आकर्षणों के समकक्ष कवि प्रकृति के समान रूप अधिक गुण वाले दृश्य लाया है। इधर-घनी केश-राशि है, उधर घनी छाया। इधर "भ्रू भङ्ग" है और उधर इनके उपमान 'इन्द्रधनुष और "तरल तरङ्ग"। इधर सजनी के स्वर हैं, उधर कोयल की कूक और भ्रमर की गुञ्जार। इधर अधरामृत है उधर सुधा-रश्मि से उतरा जल।

द्वितीय और तृतीय छन्दों में व्यतिरेक है क्योंकि इन्द्र धनुष और भ्रूभङ्ग तथा कोयल की कूक और सजनि के 'स्वर' में उपमान-उपमेय सम्बन्ध परम्परा से चला आया है। "मृग समान" उपमा है।

अन्तिम पंक्ति में 'ना' का सुन्दर प्रयोग है।

इस कविता में तो कवि के लिए 'प्रकृति की माया' के सामने 'बाला का मोह' तुच्छ है किन्तु आगे कवि में आमूल परिवर्तन आगया। "आँसू की बालिका' में कवि लिखता है— "विन्दु में थीं तुम सिन्धु अनन्त एक स्वर में समस्त संगीत" इत्यादि।

३—बाल-प्रश्न

मा! ... पूजन के।

भावार्थ—एक बालिका अपनी माँ से पूछती है—

"हे माँ! जब राजर्षि विवेकानन्द अल्मोड़े में आए थे, तब उनके चलने के लिए मार्ग में मखमल बिछवाया गया था और अनेकानेक दीप जलाए गए थे। क्या वे बिना पाँवड़े के पथ पर नहीं चल सकते? असंख्य दीपकों के जलने की क्या आवश्यकता थी। क्या उन्हें कम दिखाई देता है?"

माँ उत्तर देती है—

"स्वामी जी तो भयंकर विघ्नों से भरे हुए अनेक मार्ग बिना किसी डर के पार कर चुके हैं। उनकी दृष्टि मंद नहीं है वरन् वह तो दिव्य दृष्टि रखते हैं जो सामान्य व्यक्तियों को कभी प्राप्त नहीं हो सकती। जनता ने जो मखमल बिछाया था वह तो केवल स्वामीजी के सत्कार के लिए। उससे स्वामी जी

के प्रति जनता की अगाध श्रद्धा प्रकट होती थी। स्वामी जी तो स्वयं तेजोमय हैं और पूजा के योग्य हैं।

विशेष—बच्चों में कुतूहल की प्रवृत्ति बहुत बढ़ी हुई होती है। इसी के वश हो बालिका अपनी माँ से एक सरल प्रश्न पूछ बैठती है।

इस कविता की भाषा भी बच्चों की सी सरलता लिए हुए है और कवि के अबाध भाषाधिकार की परिचायक है।

४—प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि ... यह गाना।

शब्दार्थ—रश्मि=किरण।

भावार्थ—उधर सूर्य कि प्रथम किरण फूटती है, इधर चिड़ियाँ चहचहाने लगती हैं। कवि के मन में जिज्ञासा होती है। वह विहङ्गिनी से ही पूछता है कि तुम ने प्रथम किरण का आना कैसे जाना? और उसके आने पर जो यह तू गाना गाती है, यह तूने कहाँ से सीखा है।

सोई भी ... उसका आना।

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला। कामरूप=इच्छानुसार रूप बदल लेने वाले। नभचर=आकाश में विचरण करने वाले देव अप्सरा आदि। स्नेह=तेल।

भावार्थ :—तू अपने घोंसले में सुख पूर्वक सो रही थी, मधुर स्वप्नों का आनन्द ले रही थी। और तेरे घोंसले के बाहर अनेक जुगनू प्रहरियों के समान घूम रहे थे।

आकाश में विचरण करने वाली अप्सराएँ चन्द्रमा की किरणों के सहारे धरती पर उतर कर और कलियों का कोमल मुख चूम चूम कर उन्हें मुस्कराना सिखा रही थीं। प्रातःकाल कलियाँ खिल उठती हैं। कवि कल्पना करता है मानो आकाश से परियाँ उतर कर उन्हें खिलना सिखा जाती हैं। ~~कवि~~ की इस कल्पना को तर्क सङ्गत न देखकर अन्य टीकाकारों ने उसका अर्थ ही नहीं किया है। किन्तु इसे तर्क सङ्गत बनाने का प्रयत्न करना बेकार है। कवि तो लोक-कल्पना को ही अपना लेता है। इससे वह कलियों के खिलने के रहस्य को रहस्यमय ढङ्ग से अभिव्यक्त करता है।

तेल रहित दीपक की मंद ज्योति के समान ही प्रभात वेला में तारों की

ज्योति फीकी पड़ गई। वायु बन्द थी। वृक्षों के पत्ते स्थिर थे, मानो वह श्वास हीन होने के कारण ही ज़ड़ होगए हों। धरती के सारे प्राणी स्वप्न लोक में लीन थे। अंधकार का मण्डप सा तना था।

हे वृक्ष पर रहने वाली विहङ्गिनी! अचानक ही तू आने वाली किरण के स्वागत में गीत गाने लगती है। हे अन्तर्यामिनि! तुझे प्रथम किरण का आना किसने बतलाया।

निकलि सृष्टि के तानाबाना।

शब्दार्थ:—अन्ध-गर्भ से=अंधकार मय संसार के गर्भ से। निशिचर= रात में घूमने वाले, राक्षस। कुहुक टोना-भाना=जादू-टोना। क्रोड़=संपुट। स्तब्ध=शान्त।

भावार्थ—सारा संसार अन्धकार में डूबा हुआ था उसमें छाया जैसे धूमिल शरीर वाले और छाया-हीन राक्षस निकल-निकल कर अपने जादू-टोने के जोर से अजीब-अजीब तमाशे कर रहे थे। इस छन्द में भी लोगों में प्रच-लित राक्षसों आदि के किस्सों को कवि ने अपना लिया है।

रात भर चन्द्रमा आकाश में भ्रमण करता रहा जिसके कारण वह थक कर म्लान पड़ गया था। अब वह प्रभात वेला में वह अपना मुख छिपाने लगा था। कमल के संपुट में भंवरा बन्दी था और उधर कोक भी कोकी से बिछुड़ जाने के कारण अत्यन्त शोकाकुल था। चन्द्रमा थका हुआ था, भंवरा कैद में था, कोक विरह से पीड़ित था—तीनों ही दुखी थे।

सारे विश्व में शान्ति का साम्राज्य था। प्राणियों की इन्द्रियाँ सुषुप्ता-वस्था होने के कारण मूर्च्छित थीं। जड़ और चेतन दोनों की एक सी दृश्य थी। हाँ प्राणियों की साँस अवश्य चल रही थी।

कुछ देखने वाली, आकाश में विचरण करने वाली बाल-विहङ्गिनी ने ही सबसे पहले सब को जगाने के लिए अपना गीत गाना आरम्भ किया। सब प्राणी जाग सठे। कलियाँ खिल गईं। प्रकाश की किरणें फूट निकलीं। शोभा सुख और सुगन्धि का सर्वत्र संचार हो गया—मानो बाल-विहङ्गिनी ने शोभ, सुख और सुगन्धि का जाल सा बुन दिया हो।

निराकार तम स्वर्गिक गाना!

शब्दार्थ—पुञ्ज = राशि । मधुबाल = भ्रमर ।

भावार्थ—अन्धकार में रूपात्मक संसार लीन हो गया था । अब प्रकाश फैलने लगा । सभी वस्तुएँ दिखाई देने लगीं । प्रकाश होने से पूर्व को सभी वस्तुएं संसार में वर्त्तमान थीं । किन्तु अन्धकार में लीन थी । दिन होने पर वह वस्तुएँ दिखाई देने लगीं । कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो निराकार अन्धकार ही आलोक-राशि में साकार होकर संसार के रूप में प्रकट हो गया। इस छन्द में कवि ने संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दार्शनिक सिद्धान्त की ओर संकेत किया है। इसके अनुसार-निराकार ब्रह्म में ही नाम रूपात्मक संसार की स्थिति, अभिव्यक्ति और प्रलय होती है । उसी प्रकार नाम रूपात्मक संसार रात्रि में भी स्थित रहता हैं किन्तु तिरोहित रहता, प्रकाश के फैलने पर अभिव्यक्त हो जाता है, और फिर रात होने पर लय हो जाता है ।

प्रभात वेला में सोया हुआ पवन जाग उठा । वृक्षों में पत्ते हिलने लगे-मानो पुलकित होकर सिहर उठे हों । फूल खिल उठे । उनकी पंखुड़ियों पर मोती सी शुभ्र ओस की बूँदें पड़ीं हैं । वायु के चलने से फूल भी डोलने लगे उन पर पड़ी ओस की बूँदें भी हिलने लगीं और चमकने लगीं उनकी यह चमक और गति ही मानों पुष्पों का हास था ।

प्राणियों ने अपने नेत्र खोल दिये । चारों ओर सुनहली आभा बिखर गई सुगन्धि फैलने लगी । भँवरे गुंजार करने लगे । संसार में नया जीवन नयी गति और नये उत्साह का संचार हो उठा ।

विशेष—कवि की जिज्ञासा और प्रश्न बड़ा स्वाभाविक और चमत्कार पूर्ण है ।

रात्रि और प्रभात कालीन प्रकृति का सुन्दर चित्रण बन पड़ा है । प्रकृति का मानवीकरण प्रायः सर्वत्र दिखाई देता है ।

द्वितीय छंद में रूपक और उपमा अलंकार हैं । "शशि किरणों से उतर उतर कर"—मनुष्य किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने के लिये किसी रस्सी का सहारा लेता है । 'कामरूप नभचर' चन्द्रकिरण के सहारे से आकाश से धरती पर आए हैं । बड़ी कोमल कल्पना है ।

'शशि बाला" पन्त ने लिङ्ग विपर्यय भी कुछ शब्दों में किया है। शशि को वह स्त्री लिङ्ग में ही प्रयुक्त करते हैं।

५—नीरव तार

शब्दार्थ—अरुणोदय में=सूर्योदय के समय में। पराग=सुगन्धि। मधु-संचय=अमृत की राशि, पुण्य-राशि।

भावार्थ—प्रातःकाल का वातावरण ही कुछ ऐसा भव्य होता है कि अपने आप ही मनुष्य के हृदय में सात्विकता का उद्रेक होने लगता है। भावुक भक्तों को तो पक्षियों की चहचाहट में भी राम का नाम सुनाई देता है। कवि के मन पर भी यह सात्विक प्रभाव पड़ता है। प्रातःकाल की वायु से कवि का शरीर पुलकित हो उठा। उसका हृदय भाव-विभोर हो उठता है। ईश-वन्दना का मधुर गीत जाग उठता है। वह प्रार्थना करता है—

हे भगवान ! आप मेरे मन को चरण-कमलों में अर्पित कर दीजिए। जब तक आपकी प्रेरणा नहीं होगी, तब तक मेरा मन आपके चरणों में अनुरक्त नहीं होगा। मुझ पर ऐसा अनुग्रह कीजिये कि मैं अपने शरीर को आपके चरणों की धुल से सुशोभित कर लूँ। मुझ में चरणामृत के पान की अभिलाषा जाग्रत कीजिए जिससे मेरा जीवन आनन्द में विभोर हो उठे।

मैं नित्य ही अपने कर्त्तव्य-पथ पर सजग होकर बढ़ता चलूँ जिससे मेरी अन्तरात्मा पवित्र हो जाए। हे भगवान ! मेरे जीवन के पुण्यों के संचय में लोक सेवा रूपी सुगन्धि भर दीजिए।

विशेष—"नीरव तार" प्रयोग में विरोध चमत्कार है जो छायावाद की एक विशेषता है। यहां यह प्रयोग अत्यन्त उपयुक्त हुआ है। मनुष्य की कुछ अनुभूतियां ऐसी भी होती हैं जो अनिर्वचनीय होती हैं।

शब्द-योजना सघन है जो प्रार्थना के गीतों के लिये विशेष उपयुक्त नहीं है।

६—स्नेह

दीप के ... निः श्वास।

शब्दार्थ—जरा=बुढ़ापा। अन्तर्नयन प्रकाश=हृदय की उज्ज्वलता, विवेक।

भावार्थ—स्नेह के लिए कवि 'दीप के बचे विकास' प्रयोग करता है। स्नेह का अर्थ तेल भी होता है। प्रकाश ही दीपक का विकास है। बिना तेल के दीपक प्रकाश नहीं कर सकता। इसलिए तेल दीप का विकास है। जिस प्रकार वायु सर्वत्र विद्यमान रहती है, जिस प्रकार साँस सब प्राणियों के हृदय में होता है उसी प्रकार स्नेह भी सर्वत्र विद्यमान है। कोई भी अवसर ऐसा नहीं जिसके मूल में स्नेह न भरा हो। हर्ष का कारण भी स्नेह है और दुःख का भी। जब प्रिय उन्नति करता है तो हर्ष होता है, जब उस पर विपत्ति पड़ती है तो दुख होता है। क्यों? क्योंकि हमें उससे स्नेह है।

बच्चा भी अपने स्नेही को देखकर हँसने लगता है। यौवनावस्था में पति-पत्नी की विलास-क्रीड़ाएँ भी स्नेह से ही अनुप्राणित रहती हैं। अपने बन्धु-बान्धवों से स्नेह ही प्रौढ़ व्यक्ति को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए समझदारी से काम करने पर मजबूर करता है। वृद्धावस्था में मनुष्य भगवान से स्नेह करता है। उसकी अन्तरात्मा आलोकित हो उठती है। पुत्र के जन्म पर जो प्रसन्नता होती है उसका कारण भी स्नेह है। बान्धव की मृत्यु पर जो व्यथा होती है वह भी इसी स्नेह के कारण।

है यह .... श्वास।

शब्दार्थ—वैदिकवाद = ऐसा सिद्धान्त जिसकी प्रतिष्ठा वेद में की है। श्वास = जीवन। उच्छ्वास = ठण्डी साँस।

भावार्थ—दूसरों से प्रेम करने का महत्त्व वैदिक काल से ही चला आता है। सुख से विभोर होने तथा दुख में प्रलाप करने का कारण स्नेह ही है। यह सब को एकता के सूत्र में बाँधता है। इसके कारण वाणी में नेत्रों की शक्ति आ जाती है। हम अपने प्रेमी का ऐसा वर्णन करते हैं कि सुनने वाले के सामने उसका चित्र खड़ा हो जाता है। प्रेमी आँखों ही आँखों में अपनी प्रेमिका को सब सन्देश पहुँचा देता है। बिहारी का "भरे भौन में करत हैं नैनन ही सब बात" प्रसिद्ध है। अपने प्रेमी की बात सुनते समय हमारा मन कानों तक आ जाता है। इतना ही नहीं मन में भी बातें सुनने की शक्ति आ जाती है। मनुष्य अपने प्रेमी की बात बिना कहे-सुने मन ही मन में जान लेता है।

इस स्नेह की ही ऐसी महिमा है कि आँसुओं में भी हँसी प्रकट होती है। जब किसी से उसका प्रिय बहुत देर पश्चात् मिलता है तो प्रेमातिरेक के कारण उसकी आँखों में आँसू आ ही जाते हैं। और स्नेह के कारण आँसू हँसी में प्रकट हो जाते हैं। जब कोई स्नेही बिछुड़ने लगता है तो उसके सम्बन्धी रोते नहीं हैं—इसलिए कि हमारे रोने से जाने वाले का मन दुखी न हो, वरन् उसके उत्साह को बढ़ाने के लिए हँसते ही हैं। किन्तु उनका मन वियोग के दुख में डूबा होता है। मनुष्य अपने प्रियके वियोग में ठण्डी-ठण्डी साँसें भरा करता है। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रिय के वियोगकी आहें जीवन को बढ़ा देती हैं। इन आहों में भी जीवन है। भला प्रिय के दर्शन के बिन प्राण कैसे निकल सकते हैं?'

बँधे हैं चमकीले।

शब्दार्थ—दारुण = भयंकर। छिद्र (श्लेष) = छेद, दोष।

भावार्थ—इसी स्नेह के ही कारण तो मनुष्य का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन चल रहा है। सभी मनुष्यों में प्रेम की भावना छिपी रहती है। यदि सभी मनुष्यों में प्रेम का तत्त्व न होता तो विश्वभर में भयंकर कलह और व्यथा व्याप्त हो जाते।

मुरली के छिद्रों से सुरीली तान निकलती है। उसी प्रकार प्रेम के आवेश में की गई भूलें भी मनोहर होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम में पड़कर मनुष्य से एक नहीं अनेक भूलें हो जाती हैं किन्तु उनमें भी एक आकर्षण रहता है—वैसा ही जैसा तारों में होता है। अपने प्रिय से मिलने के लिए चोरों की तरह जाने में भी आनन्द है।

अचल पास।

शब्दार्थ—गुण (श्लेष) = गुण, डोरी। कुलिश = वज्र। चढ़ाता है = प्रशंसा करता है।

भावार्थ—इस स्नेह के कारण बड़े-बड़े दृढ़ स्वभाव वाले व्यक्ति भी व्याकुल हो उठते हैं और चंचल व्यक्ति गम्भीर हो जाते हैं। पत्थरों के समूह भी पिघल उठते हैं और बज्र भी कोमल हो उठता है। पत्थर और कुलिश के

समान उग्र स्वभाव वाले भी मृदुल और दयालु बन जाते हैं।

प्रेमी अपने प्रिय की प्रशंसा करता है। प्रिय अपने आप को बहुत महत्त्वपूर्ण और उच्च व्यक्ति समझने लगता है। किन्तु प्रिय की इस प्रशंसा में भी एक गुण है। प्रिय के महत्त्व के बढ़ जाने पर भी प्रेमी से उसका प्रेम का नाता बराबर बना रहता है। जिस प्रकार डोरी में बाँधकर पतंग उड़ाई जाती है। पतंग बहुत ऊँची जा पहुँचती है किन्तु उसकी डोर उड़ाने वाले के हाथ में ही रहती है। यदि प्रेमी अपने प्रिय सम्बन्धी को डाँटता है या बुरा-भला कहता है तो उस डाँट में भी कुछ ऐसी विशेषता होती है कि उनका प्रेम का नाता वैसा का वैसा ही अटूट बना रहता है। नायिका के मान से भी प्रेम का नाता और दृढ़ होता है। वैसे ही जैसे चकई को डोर में बाँध कर फेंका जाता है— उसे फिर अपने हाथ में खींचने के लिए।

विशेष—कवि ने 'स्नेह' की सर्व व्यापकता और गरिमा बड़ी कुशलता से दिखाई है।

प्रथम छन्द में उपमा अलंकार है। द्वतीय और चतुर्थ छन्द में विरोधाभास है। पञ्चम छन्द में उपमा और श्लेष है। छटे छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों में प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग है। अन्तिम छन्द में श्लेष और पतंग तथा चकई से रूपक व्यंग्य है।

'स्नेह' शब्द में श्लेष मान कर ही 'दीप के बचे विकास' प्रयोग किया है किन्तु यहाँ 'तेल' अर्थ मानकर भी आगे व्यर्थ हो जाता है क्यों कि आगे स्नेह का अर्थ प्रेम ही लिया गया है।

७—'उच्छ्वास' की बालिका

शीर्षक से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता में कवि उस बालिका का वर्णन करता है जिसके वियोग में उसके प्रेमी ने ठण्डी साँसें भरी हैं।

हृदय के ... वह भी।

शब्दार्थ—हृदय के सुरभित साँस = उच्छ्वास, जिसमें हृदय की प्रेम रूपी सुगन्धि मिली रहती है। जरा = वृद्धावस्था। कमनीय = सुन्दर। विलास-उपवन = क्रीड़ाओं का उद्यान।

भावार्थ—उच्छ्‌वास क्या है ? हृदय की व्यथा को प्रकट करने वाला साँस। प्रथम पंक्ति में कवि उच्छ्‌वास की परिभाषा देता है। इसके पश्चात् वर्ण्य-विषय पर आता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति आदर का पात्र हो जाता है। युवा-वस्था में मनुष्य भोग-विलास में रमा रहता है। किन्तु सच्चे प्रेम में प्रेमी और प्रिय में अभिन्नता रहती है जो आदर के भाव में नहीं रहती। सच्चा प्यार वासना से भी परे है। इसलिए जवानी की प्रीत सच्ची प्रीत नहीं है। केवल बचपन में ही सच्चा प्यार किया जा सकता है। इसीलिए वह आकर्षक है और सरल भी। कवि ने जिससे स्नेह का नाता जोड़ा था वह भी बालिका ही थी।

सरलपन असीम अवसित।

शब्दार्थ—अजान = भोले। बिकच = खिले हुए, प्रसन्न। प्रमुदित = सुशोभित।

भावार्थ—अब कवि उस बालिका का चित्र खींचता है। उस बालिका का मन सरलता की मूर्त्ति था। उसका अनोखा रूप व्यापार ही उसके अलंकार थे। उसके भोले नेत्र कानों तक खिंचे थे। उसका शरीर सुगठित और ललाम था। उसका स्वर बहुत सुरीला था। उसके अधूरे गीतों में उसके बचपन की संपूर्ण प्रसन्नता प्रतिबिम्बित होती थी। उसके गीत मन को हर लेते थे। वह गीत खुद ही अपना उपमान था। उसके अधरों पर मुस्कराहट सदैव विद्यमान रहती थी—मानो उन पर छपी हो। वह अपनी मुस्कराहट को रोकने का प्रयत्न करती थी इसलिये कवि उसे "पी-सी मुसकान कहता है। जिस प्रकार सखि सदा अपनी सखि के साथ ही रहती है उसी प्रकार वह मुस्कराहट उसके साथ रहती थी। वह मुस्कान उस बालिका के समान गुण वाली थी। वह बालिका बचपन रूपी सरिता के बचपन और जवानी रूपी दोनों किनारों से एक तरंग के समान खेला करती थी। वे दोनों किनारे आकर्षक प्रेमसिक्त और अर्ध विक-सित भाव रूपी फूलों से सुशोभित थे। यहाँ पर कवि बालिका के वय सन्धि रूप का चित्रण करता था। बचपन और जवानी के मिलन की अवस्था वय सन्धि की अवस्था कहलाती है। उस बालिका में कभी बच्चों की सी सरलता झलकती थी और कभी यौवन के भाव लहराते थे। किन्तु अभी वह पूर्ण युवती नहीं हुई थी। इसलिए उसके भाव पूर्णरूप से खिले न थे। कवि के लिये

बालिका के इसी रूप में अनन्त आनन्द विद्यमान था।

उसके उस पाया।

भावार्थ—कवि कहता है कि मैंने उसकी सरलता से अपने हृदय को विभूषित कर लिया। मैं उसकी सरलता पर मुग्ध हो गया था। मैं उसे नित्यप्रति मीठे-मीठे गीत सुनाता और उसके हृदय को उल्लसित करता था। मेरे लिए वह कल्पनाओं की सुन्दर कल्पलता के समान थी। उसके सान्निध्य और ध्यान से मेरे मन में अनेकानेक रम्य कल्पनाएँ उठने लगी थीं। और मेरे मन में नवीन भावनाएँ जागने लगी थीं।

मैं मन्द खिंच आया।

शब्दार्थ—सुरभि=आकर्षण।

मुझे देखकर वह भी प्रसन्न हो जाती थी। और मैं भी उसके गुणों के आकर्षण में बँधकर उसकी ओर खिंचता चला गया।

विशेष—कवि ने बालिका के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है। "रंगीले, गीले फूलों से" वाले छन्द में सांगरूपक अलंकार है। इसमें कवि ने अत्यन्त निपुणता से बालिका की वयसन्धि का चित्रण किया है।

"मान गिरा का धरती थी, धर हाथ।" पद्यांश का अर्थ स्पष्ट नहीं है। यह अर्थ हो सकता है कि वह मेरा हाथ पकड़कर बातें करती थी।

८—"आँसू" की बालिका

एक वीणा आभार।

भावार्थ—कवि बालिका से कहता है—

तुम वीणा की मधुर झङ्कार के समान है जिसका सौंदर्य अपार है। स्वर-लहरी शीशे में नहीं दिखाई जा सकती। तुम्हें भी मैं किसी भी साधन के द्वारा चित्रित करने में असमर्थ हूँ। शब्द तुम्हारे अपरिमित सौंदर्य को नहीं बाँध सकते, रेखाएं तुम्हारे रूप-लावण्य को मुखरित नहीं कर सकतीं। तुम्हारे स्पर्श से मन में उत्साह का संचार होता था। तुम्हारे सामीप्य में ऐसी पवित्र अनुभूति होती थी जैसी किसी भावुक भक्त को गङ्गा स्नान द्वारा होती है। और हे शुभे! तुम्हारे बचनों में त्रिवेणी की लहरों की पावन ध्वनि सा दिव्य संगीत था। तुम्हारा मुझ से परिचय नहीं हुआ था। फिर भी तुम्हारी दृष्टि

में प्रातःकालीन शुभ्रता बिखरी थी। तुम्हारी सुन्दर साँसों में सन्तोष था। तुम्हारे सानिध्य से रोगी और संतप्त भी पीड़ा को भूल जाते थे। तुम्हारी छाया भी मेरे लिए एक सहारा था। तुम्हारे कर्मों से मैं आभारी था।

करुण भोंहों बच्चों की साँस।

तुम्हारे हृदय की करुणा तुम्हारे नेत्रों में प्रतिफलित थी। तुम्हारी भौंहों में आकाश की सी विशालता और उदारता थी। तुम्हारी हँसी में बचपन का समस्त माधुर्य्य मुखरित था। तुम्हारी आँखें प्रेम की मूर्ति थीं।

तुम्हारे हृदय के कोमल भाव कपोलों पर स्पष्ट झलकते थे। तुम्हारी वाणी सुनने में मधुर थी। तुम्हारी चेष्टाएं और रूप नेत्रों को शान्ति प्रवीन करते थे। तुम्हारे इशारे सरल थे किन्तु उनमें नारी-स्वभाव-सुलभ सङ्कोच था। तुम्हारे कोमल ओष्ठों पर छिपाव था। 'सङ्कोच' और 'दुराव' के द्वारा कवि बालिका की लज्जा शीलता का परिचय देता है। तुम्हारे हृदय में उषा सी निर्मलता और उल्लास था। तुम्हारा मुख फूल के समान खिला हुआ था। तुम्हारे स्वभाव में चांदनी सी शीतलता थी। तुम्हारे विचारों में बचपन की सरलता थी।

बिन्दु में स्वर्ग पुनीत।

भावार्थ :—अब कवि यह दिखाता है कि उस एक बालिका में सारे संसार का ऐश्वर्य और सौंदर्य समाया हुआ था।

तुम जल की एक बूँद होते हुए भी सारे सागर का आत्मसात् किए हुए थीं। तुम एक स्वर होते हुए भी सारे संगीत को अपने में समाविष्ट किए थीं। तुम एक कली हो जिसमें बसन्त की सारी श्री शोभा और सुख प्रस्तुत है। तुम इस धरती पर ही पवित्र स्वर्ग के समान थीं। इस प्रकार के चित्रण के द्वारा कवि बालिका की अलौकिक महिमा की ओर संकेत करता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक भक्त भगवान की वन्दना कर रहा हो।

बिधुर उर करता हुँ मान।

शब्दार्थ :—विधुर=वियोगी। पिघल पड़ते है प्राण=हृदय दुःख से द्रवित हो उठता है।

कवि से उसकी प्रिया बिछड़ गई।

मैं इस वियोग काल में अपने व्यथित हृदय के कोमल भावों से तुम्हारा श्रृङ्गार करके दोनों नेत्रों को बन्द कर मैं तुम्हें पूजता हूँ। भक्त भी द्वार बन्द करके एकान्त में भगवान की उपासना करता है। अपने नेत्रों में तुम्हारे मनोरम चित्र का सृजन कर तुम्हारे अपरिमित सौंदर्य का पान करता हूँ। वियोगाग्नि भड़क उठती है। हृदय द्रवित हो उठता है। और नेत्रों से सहसा आँसू बहने लगते हैं।

उस समय मैं तुम्हें स्मरण करके बालकों के समान खूब रोता हूँ। मैं जानता हूं कि मैं असहाय हूँ। तुम मुझ से दूर हो। मेरा कोई नहीं है। फिर भी मैं तुम्हारी कल्पना में ही मान करता हूँ। यहाँ वियोग की गंभीरता का स्वाभाविक चित्रण है।

मूँद पलकों में ... सर्वदा।

वियोगी अपने आपको समझाता है। हृदय से कहता है कि अपनी प्रियतमा का ध्यान करते हुए वियोग की इस दारुण दशा को सहन कर! प्रिया की अनुपस्थिति में तीनों लोकों का ऐश्वर्य भी उसका स्थान नहीं ले सकता। त्रिलोकी का राज्य भी उसके सामने तुच्छ है। प्रेमातिरेक में गिरे हुए तेरे आँसू सदैव फूलों में ओस बन कर रहेंगे। वायु ही उनके दुःख को शान्त करेगी। और नन्हीं भ्रमरियाँ उनकी दर्द भरी कहानी का सदैव गान करती रहेंगीं। पीड़ित व्यक्ति को जब कोई दिलासा देने वाला होता है तो उसका दुःख कम हो जाता है। कवि असहाय है। किसी व्यक्ति से उसे सहानुभूति की आशा नहीं है। वह अपने हृदय को समझाता है कि वायु और भ्रमरियां ही उसे सान्त्वना देंगी।

विशेष—यह एक भाव प्रवण और सफल रचना है। बालिका के रूप और स्वभाव के वर्णन में कामुकता की कलुषता नहीं है सच्चे प्यार की पावनता है।

शब्द-योजना और लय भावानुकूल हैं इसीलिए सघन प्रभाव की सृष्टि होती है। बालिका के स्वभाव के चित्रण में लाक्षणिक प्रयोग अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़े हैं। "चाँदनी का स्वभाव में वास" आदि। अन्तिम चार पंक्तियों में तो अभूतपूर्व कोमल कल्पना का माधुर्य्य छलकता है।

९—पर्वत प्रदेश में पावस

पावस ऋतु थी ... विशाल ।

शब्दार्थ—मेखलाकार=गोलाकार । ताल=तालाब ।

भावार्थ—पर्वत-प्रदेश था और वर्षा ऋतु का काल था । मेघों के स्वच्छंद भ्रमण के कारण प्रकृति प्रतिक्षण नया रूप धारण कर रही थी । बड़े विशाल और गोलाकार पर्वत के ऊपर सहस्रों फूल खिले हुए थे । नीचे एक तालाब था जो एक बड़े शीशे के समान स्वच्छ था । पुष्पों सहित पर्वत उसमें प्रतिबिम्बत हो रहा था । ऐसा प्रतीत होता था मानो वह पर्वत पुष्प रूपी हजारों नेत्रों को फाड़-फाड़कर तालाब रूपी दर्पण में अपने विराट रूप को देख रहा हो । यहाँ पर्वत का मानवीकरण है ।

गिरि का ... चिन्ता पर ।

शब्दार्थ—नीरव = शान्त । अनिमेष = अपलक । चिन्ता पर = चिन्तन में लीन ।

भावार्थ—उस पर्वत से मोती की लड़ियों के समान स्वच्छ और फेन से भरे हुए झरने गिर रहे थे । उनकी झर-झर ध्वनि सुनने वालों की नसों में नशे का संचार करती थी । वह झरने उस ध्वनि से पर्वत की महिमा का गान कर रहे थे ।

जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में ऊंची-ऊँची इच्छाएँ उठा करती हैं उसी प्रकार उस पर्वत से ऊँचे-ऊंचे वृक्ष उठे हुए थे । स्थिर होकर और चिन्तन में डूब कर वे अपलक दृष्टि से शान्त आकाश को देख रहे थे । अमूर्त आकाँक्षा से मूर्त्त वृक्ष की उपमा दी गई है । अमूर्त्त की मूर्त्त से और मूर्त्त की अमूर्त्त से उपमा देना आधुनिक काव्य की एक विशेषता हैं ।

उड़ गया ... इन्द्रजाल ।

शब्दार्थ—भूधर=पर्वत । पारस = पारा (बादल रूपी) । इन्द्रजाल=जादू । जलद = बादल । यान=रथ ।

भावार्थ—एकाएक दूधिया बादल पर्वत पर घिर आते हैं और उसे छुपा लेते हैं । पारे के समान शुभ्र मेघों के परों को फड़काकर पर्वत सहसा उड़ गया-अदृश्य हो गया । मेघों का पर्वत पर धीरे-धीरे घिरना ही पङ्खों का फड़काना

है। झरने छिप गए हैं, केवल उनका शब्द सुनाई दे रहा है। आकाश पर विचरण करने वाले मेघ धरती पर टूट पड़े हैं और उन्होंने धरती को छिपा लिया है। "टूट-पड़े" से आकाश और धरती का युद्ध ध्वनित होता है।

इस युद्ध में भयभीत होकर ताड़ के वृक्ष धरती में धँस गए हैं। बादलों में छिपना धरती में धसना सा ही दिखाई देता है। इस प्रकार बादलों के रथ पर बैठे हुआ इन्द्र जादू के से खेल रहा था।

वह सरल .... मित्र था।

शब्दार्थ–चितेरे=चित्रकार। चमत्कृत चित्र=चमत्कृत कर देने वाला चित्र। यहां विशेषण विपर्यय है।

भावार्थ—वह सरल बालिका उस पर्वत को बादल का घर कहती थी।

कवि कहता है कि इस प्रकार बाहरी प्रकृति मेरे चित्रकार हृदय की एक चित्र बन गई थी। वह चित्र आश्चर्यमय था। कवि ने ही उपरोक्त छन्दों में प्रकृति का चित्र खींचा है। इन दृश्यों का सामान्य दर्शन तो सभी मनुष्यों ने किया होगा। किन्तु उसे इस प्रकार मानवीकृत रूप में चित्रित करने वाला कवि हृदय ही है। इसीलिये कवि बाह्य प्रकृति को अपने हृदय का चित्र कहता है। मनुष्य अपने मित्रों के साथ ही घुमने जाया करता है। और कवि की मित्र थी वही सुन्दर बालिका जो पर्वत को बादल का घर कहती थी। उस बालिका का साथ कवि के लिये वैसे ही सुखद था जैसे कि बचपन की मधु-स्मृतियाँ आनन्ददायिनी होती हैं।

विशेष—प्रकृति का मानवीकरण सभी छायावादी कवियों की एक विशेषता है। इस कविता में कवि की अबोध सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति प्रकट होती है। पूर्व के छन्दों में प्रकृति-वर्णन आलम्बन रूप में प्रतीत होता है किन्तु अन्त में आकर वह उद्दीपन मात्र रह जाता है। नाद सौन्दर्य अपूर्व है।

१०—'आँसू' से

विरह है .... अनजान।

भावार्थ—कवि 'आँसू' के प्रति कहता है कि यह विरह का प्रतीक है या वरदान है। आँसू को विरह कहा क्यों कि प्रिया के वियोग में ही आँसू उबल उबल पड़ते हैं। आँसू वरदान मालूम होता है क्योंकि प्रथम तो रो लेने से

मन को तनिक शान्ति प्राप्त होती है, द्वितीय यह भाव-प्रवण कल्पना, मधुर लय और सुरीले छन्द में बँधा हुआ गीत आँसू की ही तो देन है। आगे की चार पंक्तियों में 'विरह का दुख और वरदान स्वरूप गीत दोनों का एक साथ वर्णन किया है।

सभी कल्पनाएँ व्यथा से ओत-प्रोत हैं। अश्रु-प्रवाह ही दर्द भरा गीत है सूनी-सूनी आहें ही मधुर छन्द के जन्य हैं। विरह में प्रेमी हर समय प्रिया के ध्यान में ही लीन रहता है। यही उस गान की मोहक लय है।

अब आगे कवि अपनी इसी बात को और अधिक स्पष्ट करता है। वह कहता है कि आदि कवि बियोगी रहा होगा। अपनी प्रिया के विछोह के दुख से ही गीत की उत्पत्ति हुई होगी। और वह जो विरह में रोया होगा वही सहसा कविता के रूप में प्रकट हो गया होगा। यहाँ यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम पंक्ति से कवि का अभिप्राय वही है जो ऊपर दिया गया है विरह में पीड़ा तो है किन्तु साथ ही गीतें और कविता की उत्पत्ति भी उसी में होती है। यह प्रसिद्ध ही है कि आदि कवि बाल्मीकि ने शोकाकुल होकर ही प्रथम छन्द की रचना की।

हाय ... हार।

भावार्थ—कवि अकेला है वह चीत्कार कर उठता है। मैं अपने हृदय के इस दुख को किस से बाँटूँ। यह प्रसिद्ध है कि अपने दिल की बात किसी से कह देने पर व्यथा-भार हल्का हो जाता है। आँसू के कणों की यह माला मैं किसे भेंट करूँ? जो अपना निकटतम सम्बन्धी है उसी के सम्मुख कोई रो सकता है।

मेरा ... असहाय।

शब्दार्थ—मानस-सा = मानसरोवर के समान। विहँगों से = पक्षियों के समान।

भावार्थ—मेरा जीवन वर्षा ऋतु के समान है। बरसात में मानसरोबर लबालब भर जाता है। इधर मेरे मन में करुणा भरी है। बरसात में आकाश में विविध वर्ण के बादल मँडराते हैं। वे सभी मेरे नयनों में समा गए हैं। जिससे आँसू बरसा करते हैं।

जैसे बरसात में पक्षीगण चहचहाते हैं उसी प्रकार मेरे हृदय में कोमल भाव अपनी तृप्ति के लिए तड़पते हैं। बरसात में लाल-लाल कलियाँ खिल पड़ती हैं। इधर मेरे हृदय के घाव खुल जाते हैं।

इन्द्रधनु सा ... तुम्हें निदान।

शब्दार्थ—सेतु = पुल। भावी = होनी। तड़ित = बिजली।

भावार्थ—कभी-कभी बरसात में विशाल इन्द्रधनुष आकाश में लटका दिखाई देता है। इधर मेरे मन में भी कभी–कभी प्रिया के मिलन की आशा का उदय होता है। किन्तु उस आशा का कोई ओर-छोर ही नहीं। यह नहीं मालूम होता कि कब वह आशा मिलन में सफल होगी। जैसे कभी बरसात में घना अन्धकार छा जाता है, वैसे ही कभी मुझे भी चारों ओर भावी निराशा और असफलता दिखाई देने लगती है।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में विजली चमक उठती है, प्रकाश बिखर जाता है, और मेघों की गम्भीर गर्जन होती है, उसी प्रकार सहसा मुझे तुम्हारा ध्यान आ जाता है, मेरा हृदय चमत्कृत हो जाता है। तुम्हारे स्मरण से मेरा हृदय विकल हो उठता है। जुगुनुओं के समान उड़-उड़ कर मेरे प्राण तुम्हें खोजने लगते हैं।

यहाँ कवि के जीवन और वर्षा ऋतु का रूपक समाप्त हो जाता है।

धधकती है ... विश्व विशाल।

शब्दार्थ—प्रवाल=मूंगा जो लाल वर्ण का होता है। जतु गृह = लाख का घर। तमिस्र=अन्धकार।

अब कवि संध्या का वर्णन करता है। संध्या के समय मेघ रक्त वर्ण के हो उठते हैं। कवि उन्हें देखकर कहता है कि मेघों में आग की भयंकर लपटें उठ रही हैं। नीलम सा नीला आकाश रक्त वर्ण मूँगे सा बन गया है। सुनहली आभा से युक्त संध्याकाल लाख के घर के समान भयंकर दृश्य प्रस्तुत करते हुए जल रहा है।

अब रात होती है। जिस प्रकार वामन ने एक ही पग से बलि को पाताल में पटक दिया था उसी प्रकार अन्धकार सहसा सूर्य को पाताल में फेंक देता है और सारे संसार में अन्धकार छा जाता है, वह धुंधुला हो जाता है। वियोग

में रम्य दृश्य भी दाहक प्रतीत होते हैं। प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण।

चिनगियों से तक व्याल।

शब्दार्थ—चिनगियों-से = चिनगारियों के समान। लहकता है=चमकता है। तम-व्याल=अन्धकार रूपी सर्प।

अब चाँद और सितारे निकल आते हैं। उदय के समय चंद्रमा रक्त वर्ण होता है। चमकते हुए लाल अंगारे के समान चन्द्रमा उदित होता है और तारों के रूप में अपनी चिंगारियाँ बिखेर देता है। ऐसे समयमें अन्धकार रूपी सर्प तारों के रूप में अपनी मणियों को फैलाकर संसार भर को डस लेता है। सारा विश्व आहत हो जाता है।

पूर्व सुधि मूक।

शब्दार्थ :—शुक=तोता। आह्वान करना=पुकारना।

जब बीते युग की स्मृति तोते के से मधुर स्वर में तुम्हारी भोली बातें हृदय में फिर जगा देती है तब मेरे पुलकित प्राण अग्नि से जल उठते हैं, और विचलित होकर सहस्रों स्वरों में तुम्हें पुकारने लगते हैं। तब मुझसे न कुछ बोला जाता है और न सुना ही जाता है।

स्मृति का तोते से उपमा देना बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। तोता एक बार की सुनी हुई बात को वैसे ही दुहरा देता है। वैदिक काल में ऋषि लोग अग्नि को जलाकर देव-विशेष का आह्वान किया करते थे।

देखता हूँ पग अज्ञात।

शब्दार्थ :—पियालों में=प्यालों में। नवोढ़ा=नई उठी हुई--इस शब्द से नवोढ़ा नायिका की ओर भी संकेत है। उपकूल=किनारा। प्रसूनों के ढिंग= फूलों के पास। सत्वर = शीघ्रता से। कृश = निर्बल। अज्ञात पग = अज्ञात दिशा की ओर बढ़ने वाले पग—विशेषण-विपर्यय।

भावार्थ—हे प्रिये! जब मैं यह देखता हूँ कि उपवन अपने यौवन के रस को फूलों के प्यालों में भर-भर कर भ्रमरों को पिला रहा है, और जब मैं नवोदित छोटी लहर को किनारों के फूलों के समीप कुछ क्षण रुककर फिर शीघ्रता से बढ़ते हुए देखता हूँ तो हे प्राणप्रिये! मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है।

मेरा दुर्बल शरीर सिहर उठता है। अज्ञात दिशा की ओर बढ़ने वाले मेरे कदम रुक जाते हैं।

प्रकृति में उपवन और मधुकर क्रीड़ा कर रहे हैं, उर्मिया और सुमन भी मिल रहे हैं, किन्तु कवि अकेला है। प्रकृति का मिलन उसके हृदय में एक टीस उत्पन्न करता है।

देखता हूँ आदान।

शब्दार्थ—इन्द्रधनुषी = रंगीन। कुमुद-कला = चाँदनी। अन्तर्धान=लीन। आदान = बदला।

भावार्थ—जब में चन्द्रकला को बादलों का रंगीन, हल्का और कोमल घुँघट हटाते हुए देखता हूँ तो मुझे चाँद से तुम्हारे मुखड़े का ध्यान आ जाता है और मैं तुममें लीन हो जाता हूँ। मालूम नहीं मेरा हृदय तुमसे किस वस्तु की प्राप्ति की कामना करता हूँ।

बादलों के गिरि पर।

शब्दार्थ—शैल = पर्वत। मरुत-रखवाल = पवन रूपी रखवाला। वेणु = बाँस, मुरली—श्लेष। प्रमुदित = प्रसन्न होकर। कुदकते थे = उछलते थे।

भावार्थ—कवि को प्रकृति में मिलन दिखाई देता है। बादल आपस में एक दूसरे से मिल रहे हैं। धरती और आकाश भी नायिका और नायक के समान खेल रहे हैं—कभी बादल पर्वत के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करते हैं, कभी पर्वत अपने आप को बादलों के आँचल में छिपा देता है। यहाँ समासोक्ति अलंकार के द्वारा नायक-नायिका की क्रीड़ाओं की ओर सकेत किया गया है।

पर्वत पर गड़रिया भेड़ें चराता है। जब वह बाँसुरी बजाता है तो भेड़ें और मेमने सब भागते हुए उसके पास आ जाते हैं। पर्वत पर पवन रूपी रखवाला जब बाँसों से संगीत की ध्वनि उत्पन्न करता है तो नन्हे मेघ मेमनों के समान हर्षित होकर पर्वत पर इधर-उधर फुदकने लगते हैं। पवन के चलने से बाँसों में संगीत उत्पन्न होता है और छोटे छोटे मेघों के टुकड़े इधर-उधर तैरने लगते हैं

द्विरद-दन्तों-से गजवर।

शब्दार्थ—द्विरद-दन्तों से = हाथी के दाँतों के समान। कर-सीकर-से =

सूँड़ से बिखराए हुए जल-विन्दुओं के समान। भूति = शोभा। परिकर = मेखला।

भावार्थ—पर्वत पर मेघ अनेक रूप धारण करते हुए उसे श्रेष्ठ हाथी का सा रूप प्रदान कर रहे थे। कभी बादल हाथी के शुभ दाँतों के समान ऊपर को उठते थे। जैसे हाथी अपनी सूँड़ से जल-कणों को बिखेर देता है उसी प्रकार कभी वे बादल जल की बूँदें बरसाने लगते हैं। हाथी धूल को अपने शरीर पर डाल लेता है। मटमैले रँग वाले सुशोभित बादल पर्वत पर बिखर जाते हैं और फिर हाथी की कमर की मेखला के समान कभी वे बादल फैल जाते हैं।

इन्द्रधनु की ... मेघासार।

शब्दार्थ—उचक = उछलकर। विशिखों की धार = जलधारा रूपी तीरों को देखकर। मरुत = पवन। मेघासार = मेघों का प्रसार, मेघों को बिखेर देना [आसार = सेना का फैलाव (अमरकोश)]

भावार्थ—बिजली चमकती है और पर्वत की ओर बढ़ती हुई दिखाई देती है। कवि वर्णन करता है कि मेघ गर्जन रूपी इन्द्रधनुष के घोष को सुन कर और जलधारा रूपी वाण-वर्षा देखकर बिजली के चंचल वालक भय से आतुर होकर अपनी जान वचाने के लिए पर्वत के उस पार भाग जाना चाहते हैं। किन्तु पवन शीघ्र ही उन्हें दिलासा देकर रोक लेता था और मेघों के प्रसार को रोक देता है।

अचल के ... अम्बर।

शब्दार्थ—अचल = पर्वत। विहँगम = पक्षी।

भावार्थ—वे शुभ्र बादल पर्वत के पवित्र विचारों के समान धरती से ऊँचे उठकर शान्त भाव से विशाल आकाश में शीघ्र ही लीन हो जाते थे। उस समय आकाश विराट पर्वत पर पक्षी के समान बैठा सुशोभित हो जाता था। यहाँ समासोक्ति के द्वारा योगी के परब्रह्म में लीन हो जाने का वर्णन है जिसके विचार धीरे-धीरे लौकिकता से ऊपर उठकर ब्रह्ममय हो जाते हैं।

पपीहों की ... प्रश्नोत्तर।

भावार्थ—पर्वत वर्षा ऋतु में पपीहों की पुकार आदि के रूप में प्रश्न करता था और वर्षा ऋतु मेघ गर्जना आदि के रूप में उसके प्रश्नों का उत्तर

देती है। पर्वत और पावस के यह प्रश्नोत्तर मन को हरने वाले हैं। जब पर्वत पपीहों की गम्भीर पुकार के रूप में प्रश्न पूछता था और मेघों के गम्भीर घोष में पावस ऋतु उसका उत्तर देती थी। पर्वत झरनों के ध्वनि में पावस से कुछ पूछता था और वह जल-कणों को बरसाकर उसकी छुन-छुन ध्वनि में उसका उत्तर देती थी। पर्वत झींगुरों की झनकार में प्रश्न करता था और मेंढकों के दुहवे स्वरों में पावस ऋतु उसका उत्तर देती थी।

समासोक्ति अलंकार के द्वारा यहाँ भी पर्वत को नायक और पावस को नायिका के रूप में संकेतित किया गया है।

खेंच ऐंचीला साकार।

शब्दार्थ—ऐंचीला = तना हुआ। भ्रू-सुरचाप = भौंह रूपी इन्द्रधनुष। सुदुकूल = सुन्दर अञ्चल। भूधर = पर्वत।

भावार्थ—इस प्रकार पर्वत के दृश्यों का स्मरण बार-बार कवि को हो आता है और उसमें उसे अपनी प्रिया का दर्शन होता था। इससे उसके विरह दुख में कातर हृदय पर पर्वत प्रदेश की वह स्मृति पीड़ा एक-एक पहाड़ सा रख देती थी वर्षा ऋतु के तने हुए इन्द्रधनुष से कवि को अपनी प्रिया की विशाल तनी हुई भौंहों का स्मरण हो आता है। पर्वत प्रदेश की हरियाली ही प्रिया का उड़ता हुआ आंचल है। पर्वत से गिरते हुए झरने ही प्रिया के वक्षस्थल पर चमकते हुए मोती के हार हैं। बादल रूपी वस्त्र के हरने पर कवि को प्रिया के चन्द्र रूपी मुख के दर्शन होते हैं। बिजली की चमक ही प्रिया के पलक-दल का गिरना है। प्रकृति के उपकरण सुरचाप आदि नायिका के भौंह आदि के उपमान हैं। उपमान को देखकर उपमेय की स्मृति हो आना स्वाभाविक ही है। कवि कहता है कि हे सुन्दरी इस प्रकार पर्वत का यह दृश्य तुम्हारा स्मरण करा देता है और मेरा टूटा हुआ हृदय व्यथा के पर्वत के नीचे पिसने लगता है।

विशेष—प्रस्तुत कविता में प्रकृति का उद्दीपन रूप से साँगोपाँग, मधुर और अभिनव चित्रण हुआ है। इसमें कई वर्णन एक साथ आए हैं—

(१) आरम्भ में वियोग वर्णन।

(२) कवि के जीवन का पावस-ऋतु से रूपक।

(३) सन्ध्या और रात्रि का वर्णन ।

(४) वर्षा ऋतु का उद्दीपन रूप में विषद चित्र ।

सभी चित्र कोमल कल्पना और अभिनवरूप में गढ़े हैं ।

११—ग्रन्थि से

प्रस्तुत रचना कवि के एक स्वतंत्र बड़े काव्य "ग्रन्थि" का एक अंश है । काव्य के आरम्भ में कवि नदी में नौका पर विहार कर रहा था कि अचानक उसकी नौका डूब जाती है । उसे एक बालिका बचाती है । जब कवि को होश आता है, वह अपने सर को उस बालिका की गोद में पाता है । नेत्र खोलते ही कवि की आंखें गगन के चांद पर और उस बालिका के चन्द्रमुख पर एक साथ पड़ती हैं ।

इन्दु पर   काव्य में ।

शब्दार्थ—इन्दु = चन्द्रमा । पूर्व को पूर्व था=पहला चन्द्रमा पूर्व दिशा में था । पर वह द्वितीय अपूर्व था=दूसरा मुख चन्द्र अपनी शोभा में अद्वितीय था बाल रजनी=नन्हीं रात । अलक=केशों की लट । रेखाङ्कित=बालिका के बालों की लट मुख के नीचे पड़ी थी । कविता में यदि किसी पंक्ति या पद के नीचे रेखा खींची जाती है तो उस पंक्ति या पद का विशेष महत्व प्रकट होता है । उसी प्रकार से वह अलक मुख को रेखाङ्कित कर शोभा के संसार में उसे विशेष गरिमा प्रदान कर रही थी ।

भावार्थ—कवि कहता है कि मेरे नेत्र चन्द्रमा पर और चन्द्रमा रूपी उस बालिका के मुख पर एक साथ ही पड़े । चाँद जब उदय होता है तो लाल वर्ण का होता है । बालिका का चांद सा मुखड़ा लजा के कारण लाल होरहा था । यहाँ तक कवि आकाश के चाँद और धरती के चाँद–उस बालिका के समान सौन्दर्य का वर्णन करता है । किन्तु आगे की पंक्ति में वह बालिका के मुख को अनन्य शोभा वाला बताता है । पहला चन्द्रमा आकाश में पूर्व दिशा में स्थित था । किन्तु वह दूसरा चाँद तो अपने सौन्दर्य में अनोखा था । वह बालिका अतुलनीय माधुर्य्य-गरिमा से विभूषित थी ।

इन चार पंक्तियों में निम्नलिखित अनेक अलंकार हैं—रूपक यथाक्रम, व्यतिरेक, श्लेष ।

उधर संध्या के समय चन्द्रमा पर नवागत रात्रि की धूमिलता छाई हुई थी । इधर बालिका के मुख पर उसके केशों की एक लट बिखरी थी । वायु के झोकों से वह हिल रही थी । किन्तु जब वायु बन्द हो जाती थी तो वह लट स्थिर हो जाती थी और मुख को रेकाङ्कित कर शोभा के संसार में उसके विशिष्ट लावण्य को प्रकट करती थी ।

उपमा अलंकार स्पष्ट है । "रेखाङ्कित" वाला भाव नवीन है । उपरोक्त आठों पंक्तियों में प्रस्तुत अप्रस्तुत का सामंजस्य दृष्टव्य है ।

एक पल सम्बन्ध ।

शब्दार्थ—प्रणय-सम्बन्ध=प्रीत का नाता ।

भावार्थ—एक क्षण भर के लिये मेरे और प्रिया के नेत्र चार हुए । आंखों के मिलते ही मैं पुलकित हो उठा । शरीर में कंपन भी हुआ । इस पुलक और कंपन से हमारा प्रेम का नाता और भी दृढ़ हो गया ।

लाज की सौन्दर्य के ।

शब्दार्थ—सस्मित=मुस्करात हुए । आवर्त = भंवर । तरुण सौन्दर्य=जवानी का रूप ।

भावार्थ—बालिका के गुलाब से ललाम गालों में लाज की लालिमा फैल गई । वह लज्जा की लाली शराब के समान मदहोश कर देने वाली थी । बालिका के मुस्कराने से उसके गाल में अधखुली सीप से शुभ गड्डे पड़ गए थे । उन गढ़ों में सौन्दर्य की बाढ़ सी आई हुई थी । उन गढ़ों के पड़ने से बालिका का सौन्दर्य और भी उल्लसित हो उठा । सौन्दर्य की उस बाढ़ में रूप के भँवर पड़े हुए थे । कौन ऐसा है जिसके जवानी के भार से दबे हुए नेत्र नौका के समान उस भंवर में रुककर और चक्कर खा कर डूब नहीं गए ?

यहां कवि के द्वारा प्रस्तुत अप्रस्तुत विधान बहुत ही चमत्कारिक बन पड़ा है । जब नदी में बाढ़ आ जाती है, तो जहां-जहां नदी में गड्डे होते हैं वहाँ भँवर पड़ने लगते हैं । यदि कोई नौका उस भँवर में पड़ जाय तो वह आगे नहीं बढ़ सकती, वहीं रुक जाती है और भँवर के वेग से चक्कर खाकर उसी में

डूब जाती है। और यदि नौका में भारी वस्तुएँ पड़ी हों तो वह और भी शीघ्र डूब जाती है। बालिका में बाढ़ सौन्दर्य की है। गालों के गढ़े हैं रूप के भंवर हैं और तरुणाई के भार से दबे हुए नेत्र ही भारी नौका हैं।

जब प्रणय प्रिय कान्ति हो।

शब्दार्थ—विनत=विनीत। विद्ध हो = टूट कर। सुमन=फूल, सुन्दर मन (श्लेष)। तिमिर=अन्धकार। अरुण-कर=सूर्य-किरण। कनक आभा = सुनहला प्रकाश। बिना तम-शेष = अन्धकार रहित।

भावार्थ—अभी तक कवि और बालिका की बातें नहीं हुई थीं। कवि कहता कि हम दोनों की चुप्पी ने ही हमारे हृदय के प्रेम को प्रकट कर दिया। तब प्रिया के समीप बैठकर मैंने विनम्र वचनों में यह कहा—

'हे पानी के समान निर्मल कान्ति वाली सुन्दरी! मैं चोट खाए हुए भ्रमर के समान जल की तरंगों में बहता, चला जा रहा था। तुमने मुझे सरिता की लहरों में डूबने से बचा लिया। तो क्या वियोग और व्यथा की लहरों में डुबो दोगी? तुमने एक बार मेरा जीवन बचाया है इसलिये अब भी मेरा कल्याण ही करोगी।"

"यदि कोई पुष्प काँटों से कट कर वृक्ष से अलग जा गिरे, तो उसे जल में रखने पर वह विकसित हो जाता है। मेरा मन रूपी फूल प्रेम रूपी कांटे से कट कर मेरे शरीर रूपी वृक्ष से अलग जा पड़ा है। तुम दयावान हो। इसलिए क्या अपने स्नेह से सिक्त हृदय में मेरे मन रूपी फूल को रखकर मनोहर विकास न दोगी?"

"सूर्य की किरणें घने अंधकार को काटती हुई सुनहली ज्योति बिखेर देती हैं और कमलों को खिला देती हैं। मेरे हृदय में तो तनिक भी दुराशा रूपी अंधकार नहीं है। उसमें मेरे प्रेम की कली लगी है। उसको विकसित करने वाली तुम्हीं सरस ज्योति हो। सूर्य को तो कमल खिलाने के लिए अंधकार में अपनी किरण फैलानी पड़ती हैं। हृदय में तो तनिक भी अन्धकार नहीं है। मेरी प्रेम की कली को खिलाना तो तुम्हारे लिए और भी सहज है।"

यह विलम्ब प्रीति से।

शब्दार्थ :—बालुका=बालू । कलाधर = चन्द्रमा । कौमुदी = चाँदनी। धवल=शुभ्र, सफेद ।

भावार्थ :—बालिका कवि के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देती। कवि उद्विग्न हो कर पूछ उठता है—

"हे कठोर हृदय वाली ! तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देने में इतनी देर लगा रही हो। जल में डूबते हुए को तो बालू भी बचा लेती है। यदि जल की गहराई कम हो तो बालू के आधार पर ही मनुष्य बच सकता है। किन्तु मुझ को तुम्हारे निष्ठुर हृदय का बड़ा भरोसा है। क्योंकि पर्वत की कठोर चट्टानें ही पर्वत से गिरने वाले को बचा लेती हैं। यदि चट्टानें कोमल हों, टूट जाने वाली हों तो वह पकड़ते ही टूट जाएँ और गिरने वाला व्यक्ति मर जाए।"

"अब कवि अन्योक्ति का सहारा लेकर मन की बात प्रकट करता है—

जब चन्द्रमा अन्धकार में चमकता है तभी चाँदनी के रूप में उसका यश सर्वत्र फैल जाता है। सूर्य के सामने तो चाँद फीका पड़ ही जाता है। जो दीन और निस्सहाय व्यक्ति हैं उन्हीं को दिया हुआ दान उनकी आंखों में प्रेम और श्रद्धा के रूप में प्रकट होता है। धनवान व्यक्ति को यदि कुछ दिया भी जाए तो उसके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार मैं निराशा के अंधकार में डूबा हूँ। इस समय दीन बन कर तुम से भिक्षा माँग रहा हूँ। तुम चन्द्रमा बनकर मेरी निराशा को दूर कर दो। मुझे प्रेम की भिक्षा दो।

"प्रिय ... सदा।"

शब्दार्थ :—अल्पता की संकुचित आंखें=दरिद्र व्यक्तियों की धंसी हुई आँखें। दयानिल=दयारूपी वायु । उपकृति=उपकार। करुणालोक=दया का प्रकाश ।

भावार्थ :—'हे प्रिये ! दीन व्यक्तियों की दान के लिए उठी हुई कठिन बाहें प्रलोभन मात्र से ढीली नहीं पड़ जातीं। जब तक उन्हें वांछित वस्तु नहीं मिल जाती वह उठी रहती हैं। यदि दरिद्र व्यक्तियों को जरासा भी प्रेम किया जाए तो उनकी धंसी हुई छोटी आँखें तुरन्त प्रेम के आंसू भर लाती हैं।'

"वायु के चलने से तालाब आदि में लहरें उठने लगती हैं। लहरों के

कारण तालाब में प्रतिविम्बित चन्द्रमा का प्रकाश वास्तविक चन्द्रमा के प्रकाश से कई गुना अधिक दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार उपकार को मानने वाले व्यक्ति पर तनिक भी दया दिखाई जाए तो वह उस उपकार को कई गुना अधिक करके संसार को बताता फिरता है। उपकार करने वाले को बहुत अधिक दयावान और कृपालु बताता है।

सांग रूपक अलंकार है। कल्पना मौलिक है।

शरद सदा ?

शब्दार्थ :—तिमिर=अन्धकार। अपाङ्गों से=नेत्रों के कोरों से।

कवि को प्रिया की मूकता में मिलने का संकेत दिखाई देता है।

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम्हारी इस मूकता में ही मिलन की स्वीकृति है जैसे शरद् ऋतु के स्वच्छ अन्धकार में से निकल कर, प्रथम मिलन के नेत्रों के समान मस्ती में झूमता सा कोई हाथ मुझे छू कर मस्त बना रहा है।"

अब संभवतः प्रिया ने कवि की ओर तिरछे नेत्रों से देखा है। वह कहता है—"प्रीति की रीत भी बड़ी विचित्र है, क्योंकि प्रथम मिलन में प्रेमी-प्रेमिका को एक दूसरे की ओर नेत्र गढ़ा कर देखने का साहस नहीं होता वरन् वे तिरछे नयनों से ही देखते हैं। वियोग में प्रेम और भी अधिक बढ़ता है। यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त प्यासा हो तो कोई भी उसे पानी पिलाये वह पी लेता है। प्यास बुझाने के पश्चात् वह भले ही पानी पिलाने वाले की ज्ञाति आदि पूछे। इसी प्रकार प्रेम हृदय की प्यास है। प्यासा हृदय अपरिचित से ही प्रेम का सम्बन्ध जोड़ लेता है। परिचय तो बाद में ही हो पाता है।

दूर होकर बढ़ने में विरोधाभास है।

इन्दु की दीप सी।

शब्दार्थ—वीचि=लहर। स्मित=हँसी। मृगेक्षिणि=मृगनयनी।

'कवि बालिका का उत्तर सुनने के लिए उत्सुक है। उसे प्रकृति में भी सर्वत्र अपनी उत्सुकता प्रतिबिम्बित दिखलाई देती है। चाँद की शोभा में, अन्धकार में वायु की सरसराहट में, जल की लहरों की कलकल में, पुष्पों के खिलने में लता के पत्तों पर सर्वत्र ही कवि का उत्सुकता दिखाई देती है। ऐसे समय में

उस मृगनयनी ने धरती में गढ़े अपने पलकों को ऊपर उठाया। इसके साथ ही मेरे हृदय की सारी व्यथा दूर हो गई। और एक क्षण में ही उसने प्रेम के कारण श्याम वर्ण के नेत्रों से मुझे देखकर मेरे दीपक से नेत्रों को प्रेम से भर दिया। दीपक को तेल से भरने पर ही वह प्रकाशित किया जा सकता। प्रेम में सफलता प्राप्त कर कवि के नेत्र चमकने लगे।

मानव की यह सहज प्रवृत्ति है कि वह अपने भाव को विश्व भर में व्याप्त देखना चाहता है। यह प्रवृत्ति कविता की उत्पत्ति का एक मूल कारण है। ऊपर की पंक्तियों में कवि अपनी जिज्ञासा-समस्त प्रकृति में व्याप्त देखता है।

'निज पलक······'में सहोक्ति और यथासंख्य अलंकार हैं। 'दीप सी' में उपमा।

विशेष—इस कविता का कवि के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है।

इस कविता में पंत की शैली की एक विशेषता प्रचुरता से मिलती है। वह है गद्य के से पूर्ण वाक्यों का छन्द की मात्रानुसार तोड़कर कविता में बिठा देना। इससे अन्वय में कहीं-कहीं कठिनाई हो जाती है, किन्तु तनिक ध्यान देकर पढ़ने से अन्वय स्पष्ट हो जाता है।

प्रथम मिलन प्रकृति के एक सुन्दर दृश्य की गोद में होता है।

कवि की 'विनत वाणी' काव्यात्मक है।

१२—बादल

सुरपति ...... ऊपर।

शब्दार्थ—जगतप्राण=वायु। शिखी=मोर।

भावार्थ—बादल कहते हैं—

हम इन्द्र के सेवक हैं। पवन के मित्र हैं क्योंकि उसके साथ चलते हैं। मेघदूत की करुण कल्पना को जगाने वाले हम ही हैं। चातक को सदा से जीवन दान देते आए हैं क्योंकि चातक स्वांति नक्षत्र में बरसा हुआ जल ही पीता है।

हम मोहित मोर को नचाने वाले हैं। शुभ स्वाति नक्षत्र में हम ही सीपियों में मोती भरते हैं। स्वांति नक्षत्र में बरसी जो बूँद सीपी में पड़ती है वह मोती

हो जाती है। पक्षियों के गर्भ धारण कराने वाले भी हम ही हैं। कहा जाता है कि मेघ की गर्जन के समय ही पक्षियों में गर्भ स्थित होता है। किसानों की बालिका को हम जल देने वाले हैं।

सूर्य हमें सागरों में कमलों के समान खिलाता है। सूर्य के ताप से ही बादलों का निर्माण होता है। किन्तु जिस प्रकार बालक फूल के पत्तों का एकत्रित कर फिर बिखेर देते हैं, उसी प्रकार पवन हमें बिथुरा देता है।

जब सागर हमें अपनी नन्हीं लहरों में झूला देता तो वही वायु हमें उसी प्रकार ऊपर आकाश की ओर ले उड़ता है जिस प्रकार चील धरती से कोई माँस आदि का टुकड़ा झपट कर ले जाती है।

भूमि गर्भ नभ में तरते।

शब्दार्थ :—जड़=जड़ता। पङ्क=कीचड़। मत्तङ्गज=हाथी। शशक=खरगोश। कोश = बन्दर। विहग छदों को=पक्षियों के परों को।

भावार्थ—जिस प्रकार पक्षी अपने रोमिल पङ्खों को फैलाकर अपने अण्डों को सेते हैं तथा उनकी जड़ता दूर कर बच्चे पैदा करते हैं, उसी प्रकार हम भूमि के अन्दर चारों ओर फैल जाते हैं, उसमें पड़े असंख्य बीजों को स्निग्ध करते हैं, उनकी मिट्टी दूर कर उन्हें अंकुरित करते हैं!

त्रिभुवन का निर्माण करने वाली विराट कल्पना के समान ही हम अनेक रूप धारण कर आकाश की गोद को भर देते हैं। फिर हम निडर होकर आकाश में खेला-कूदा करते हैं।

जिस प्रकार हरिण धरती पर पाँव धरे बिना आकाश ही आकाश में उड़ा चला जाता है, वैसे ही हम भी तेजी से भागते हैं। कभी हम मस्त हाथियों के समान झूमते हैं। और जिस प्रकार खरगोश तेजी से सारे बन को चर जाते हैं, उसी प्रकार हम सारे आकाश पर फैल जाते हैं। जिस प्रकार बन्दर डाल से फल आदि तोड़-तोड़ कर अपने मुँह भर लेते हैं उसी प्रकार हम भी कभी वायु रूपी डाली से नीरवता लेकर अपने मुँह में भर लेते हैं। चुपचाप वायु के सहारे उड़ते चले जाते हैं। जिस प्रकार विशाल काय गिद्ध पक्षियों के पंखों को बिखेरता हुआ आकाश में उड़ता है उसी प्रकार हम भी पक्षियों के पंखों

को बिखेर देते हैं। वर्षा की बूँदों के आघात से पक्षियों के छोटे पंख झर जाते हैं।

कभी अचानक वातुल चोर।

शब्दार्थ—सुभग सीप=सुन्दर सीप से उज्ज्वल पंखों को फैलाकर। समुद=प्रसन्नता के साथ। पैरते=तैरते। ज्योत्स्ना=चांदनी। तूल-तोम=रुई का गुच्छा विटप=वृक्ष। वातुल=बहुत बात करने वाला, ध्वनि करने वाला।

भावार्थ—कभी हम अचानक ही भूतों के समान विशाल आकार धारण करके गर्जना के रूप में कड़कड़ा कर हँसते हैं जिसे सुनकर सारा संसार दहल उठता है।

कभी हम परियों के बच्चों के समान सीप से उज्ज्वल बादल रूपी पंखों को पसार कर चन्द्रमा की कोमल किरणों का सहारा लेकर प्रसन्नता पूर्वक चाँदनी में तैरते हैं। इस छन्द की कल्पना बड़ी कोमल और सुहावनी है। सचमुच जैसे परियां अपने बच्चों को तैरना सिखा रही हों।

और कभी हम प्रचण्ड वायु से क्षुब्ध आकाश रूपी सिंधु में प्रलय की बाढ़ सा घनघोर रूप धारण करके चारों ओर लहराते हुए फैल जाते हैं। तब हम ओले बरसाते हैं, संसार को अन्धकार मय कर देते हैं और भयंकर गर्जना करते हैं।

जिस प्रकार कोई चोर एक क्षण में ही कपास के पौदे से रुई का गुच्छा तोड़कर ले जाता है उसी प्रकार साँय-सांय करता हुआ पवन हमें आकाश रूपी वृक्ष से छीन कर भाग जाता है।

बुद् बुद्-द्युति नित वायु विहार।

शब्दार्थ :—तारक-दल-तरलित = तारों से युक्त। जम्बाल-जाल=काई के समूह के समान। विद्यु द्दाम=बिजली रूपी प्रत्यंचा। पटह=नगाड़ा। आसार=फैलाव, प्रसार। वज्रायुध = बिजली रूपी वज्रास्त्र से। वासव-सेना-से = इन्द्र की सेना के समान।

भावार्थ—बुलबुलों की सी शोभा वाले तारों के समूहों से युक्त नीलाकाश रूपी यमुना में हम काई के बड़े-बड़े गुच्छों के समान निरन्तर तैरा करते हैं। काई की जड़ें नहीं होतीं। तारे बुलबुले हैं। नीला आकाश यमुना-जल है।

जिस प्रकार दमयन्ती के हाथों में पहुँच कर नल के भेजे स्वर्ण हँस ने उसे प्रेममय सन्देशा सुनाया था, उसी प्रकार हम भी चांदनी रूपी दमयन्ती की किरणों में घूमते हुए उसे मधुर सन्देश सा सुनाते हैं।

नीचे के दोनों छन्दों में बादलों और पर्वतों के युद्ध और पर्वतों के परास्त होने का चित्रण है।

हम भयङ्कर रूप धारण कर और शक्ति के नशे में चूर होकर इन्द्र की सेना के समान वायु में घूमा करते हैं। जिस प्रकार सेना के योद्धा धनुष चढ़ा कर शत्रु पर वाण-वर्षा करते हैं उसी प्रकार हम बिजली की दुहरी प्रत्यंचा चढ़ा कर गर्जन करते हैं और भयंकर नगाड़ों के समान घोष कर के निरन्तर जलधार रूपी वाणों की वर्षा करते हैं। दुहरा विद्युद्दाम इसलिए कि बिजली जब चमकती है तो दो आलोक रेखाएँ स्पष्ट दीखती हैं।

हम बिजली रूपी अपने वज्र से पर्वत को चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं।

कहा जाता है कि इन्द्र का पर्वतों से युद्ध हुआ था। तब इन्द्र ने पर्वतों के पर काट दिए थे और उन्हें अचल कर दिया था।

व्योम-विपिन .... रत्न निकाम।

शब्दार्थ :—व्योम विपिन=आकाश रूपी वन। अनिल-स्रोत=वायु रूपी नदी में। अवदात=सफेद। कलिन्द=पक्षी विशेष। बाड़व=समुद्र की अग्नि। निकाम=व्यर्थ।

भावार्थ—जब वन में बसन्त आता है तो तमाल के पत्ते गिर-गिरकर नदी के जल में बहने लगते हैं। इसी प्रकार जब आकाश में प्रभात का आगमन होता है तो हम तमाल रूपी अन्धकार के पत्तों के समान वायु की नदी में बहने लगते हैं। प्रभातकाल में मेघ काले वर्ण के होते हैं। प्रातः काल की वायु के द्वारा वह उड़ा लिए जाते हैं।

इसके पश्चात् उदयाचल से हंस के बालक के समान सफेद सूर्य आकाश में उड़ता है। हम भी अपने सुनहले पंखों को फैलाकर हवा के वेग से उड़ने लगते हैं। प्रातःकाल में सूर्य की किरणें पड़ने से बादल के टुकड़े सुनहले रंग के हो जाते हैं।

जिस प्रकार कलिन्द पक्षी कमलों का रस पीकर संध्या के समय विश्राम

करता है उसी प्रकार हम भी संध्या के समय मादक रस को पीकर आकाश रूपी कमल में निर्भीक होकर आराम करते हैं। बादल संध्या के समय लाल रंग के हो जाते हैं। शराब पी लेने पर व्यक्ति का मुख भी लाल हो जाता है। इसीलिए संध्या के बादलों के लिए कवि ने 'मादक पराग पी' का प्रयोग किया है। उपमालंकार।

जिस प्रकार बड़वानल समुद्र को सुखा देता है और उसके जले अधजले व्यर्थ रत्नों को बिखेर देता है उसी प्रकार हम भी संध्या के समय आकाश रूपी सिन्धु को सोख लेते हैं और उसके तारों को बिखेर देते हैं। सन्ध्या के मेघ अग्नि-शिखा से लाल होते हैं। इसलिए वह बड़वानल के समान ही हैं। संध्या के समय तारों की ज्योति बहुत मन्द होती है इसलिए वे व्यर्थ रत्नों के समान ही हैं। उपमालंकार।

धीरे-धीरे निस्सार।

शब्दार्थ—विभव-भूति = सांसारिक ऐश्वर्य।

भावार्थ—नीचे के दो छन्दों में बादलों के मूर्त्त व्यापारों की अमूर्त्त भावनाओं से उपमाएँ अत्यन्त कलात्मक हैं।

हम उसी प्रकार धीरे-धीरे उठते हैं जैसे किसी व्यक्ति के हृदय में सन्देह उठता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की बदनामी तुरन्त सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार हम आकाश में फैल जाते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति के हृदय में मोह जागकर उसकी चेतना को ढक लेता है उसी प्रकार हम भी आकाश को ढक लेते हैं। जैसे मनुष्य की लालसा दिन-रात शक्ति शाली होती जाती है उसी प्रकार हम भी दिन-रात आकाश में फैलते जाते हैं।

जैसे व्यक्ति की भृकुटी में उसके हृदय की चिन्ता घिर आती है उसी प्रकार हम आकाश की इन्द्रधनुष रूपी भृकुटी पर चिन्ता के समान घिर जाते हैं। जिस प्रकार क्रान्ति का भय चारों ओर छाजाता हैं उसी प्रकार हम गर्जन करते हुए सर्वत्र छा जाते हैं।

हम एक पल में पर्वत के आकार को छोड़कर रेत कण का लघु आकार ग्रहण कर लेते हैं और दूसरे ही क्षण छोटे आकार को त्याग पर्वताकार हो जाते हैं। हम काल के उतार चढ़ाव को मूर्त्त रूप में प्रकट करते हैं। जिस

प्रकार काल चक्र में बँधा हुआ व्यक्ति कभी नीचे गिरता है और कभी ऊपर चढ़ता है उसी प्रकार हम भी कभी मेघों का रूप धारणकर ऊपर चढ़ते हैं और कभी जल की धारा के रूप में नीचे गिर पड़ते हैं।

कभी हम आकाश में ही महल बनाते हैं। कभी विशाल पुल सा बाँध देते हैं और फिर, सांसारिक वैभव के समान ही क्षण भर में विलीन हो जाते हैं।

नग्न गगन की ... पावक के तूल।

शब्दार्थ—पतङ्ग = सूर्य, पतिङ्गा (श्लेष)। उत्ताल = तीक्ष्ण। धवल = शुभ्र। मारुत = पवन। पावक के तूल = अग्नि में जलती हुई रुई।

भावार्थ—हम आकाश में सब ओर मकड़ी का सा जाल तान देते हैं और आकाश में चलते हुए सूर्य रूपी पतिंगे को तुरन्त उलझा लेते हैं। उपमा और श्लेष परिपुष्ट रूपक अलंकार। पुराने, सूखे, पत्रहीन वृक्ष की डालियों में प्रायः मकड़ी जाले बुन लेती है जिसमें पतिंगे फँस जाते हैं।

फिर हम उस विराट के हृदय की अनुकम्पा के समान तुरन्त ही करुणालु हो कर भयंकर गर्मी में जली कलियों पर शीतल जल डालकर उन्हें खिला देते हैं।

'मूर्छित......' मूर्छित व्यक्ति के मूँह पर ठण्डे पानी के छींटे देने से उसकी बेहोशी दूर हो जाती है।

हम सागर की शुभ्र हँसी हैं। बादलों का जन्म सागर से होता है और उनका रंग सफेद होता है। हँसी का वर्ण भी सफेद माना गया है। रूप सादृश्य के कारण ही कवि ने बादल को सागर का हास कहा है। हम जल के धूएँ हैं। अग्नि से धूँआ निकलता है और वह काला होता है। बादल काले भी होते हैं और जल से उत्पन्न होते हैं। इसलिए कवि ने बादल को जल का धूम कहा है। जब जल तेजी से बहता है और लहरें फेंकता है तो उसमें सफेद रंग की झाग उत्पन्न होती है। तेज वायु सफेद बादलों को अपने सङ्ग उड़ा लेती है। इसलिए कवि ने बादलों का वायु का फेन कहा है। वृक्ष की कोपलें लाल वर्ण की होती हैं। प्रातः कालीन सूर्य के प्रकाश में बादल-खण्ड भी लाल वर्ण के हो जाते हैं और ऊषा के पल्लवों के समान दिखाई देते है।

कल्पना का ज्ञान तो होता है किन्तु कोई गम्भीर प्रभाव का जागरण नहीं होता

भाषा-प्रवाह अबाधित है।

अधिकांश अप्रस्तुत योजना रूप-साम्य पर आधारित हैं।

१३—मुस्कान

प्रस्तुत कविता में कवि मुग्धा नायिका की सहज, सरस मुस्कान का वर्णन करता है।

कहेंगे .... मुसकान।

भावार्थ—मुग्धा बाला अपनी सखि से कहती है कि मैं रोकने का प्रयत्न करने पर भी अपनी मुस्कान को नहीं रोक सकती। चाहे कैसी ही परिस्थिति क्यों न हो हंसी निकल ही जाती है। कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि लोग मेरे विषय में क्या सोचेंगे और मैं फिर अपनी हँसी को रोकने का प्रयत्न करती हूँ पर असफल ही रहती हूँ।

विपिन में .... निदान।

शब्दार्थ—पावस के-से दीप = वर्षा ऋतु के दीपक के समान—जुगुनुओं से आकर्षक। दुराव = छिपाव।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में वन में उड़ते हुए जुगुनुओं के से मोहक और कोमल सैकड़ों भाव हृदय में जाग उठते हैं। मैं उन्हें दबा सकने में असमर्थ हूँ। ये कल्पित भाव मुझे बरबस हंसा ही देते हैं—जैसे भोले बालक की चेष्टाएँ देखकर सभी हँस पड़ते हैं।

तारकों से .... यह मुस्कान।

शब्दार्थ—तारकों से = तारों से। हिमजल की लघु बूँद=आँसू की बूँद।

भावार्थ—रात्रि के समय तारों को देखकर नए-नए भाव मेरी पलकों में घिर आते हैं, और मेरी नींद छीन लेते हैं। कभी मैं इन भावों से विकल हो उठती हूँ। बरबस मेरी आंखों में एक आंसू आ जाता है। मेरा इन भावों से सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाता है। ये मेरे शरीर, हृदय और प्राणों का गुद-गुदा देते हैं। तब मेरी मुस्कराहट सहसा फूट पड़ती है।

"पलकों पर कूद" पलकों में कोई कण आदि पड़ा हो तो निद्रा नहीं आती।

"गुदकुदाते" का प्रयोग बहुत सुन्दर है किसी को गुदगुदाने पर तो वह हँसने को विवश हो जाएगा।

"तारकों से–"तारक का अर्थ पुतली भी होता है। तो यह अर्थ होगा कि नेत्रों की पुतलियों में छिपे हुए भाव पलकों में घिर आते हैं और निद्रा का हरण कर लेते हैं। पर उपरोक्त अर्थ अधिक सङ्गत मालूम होता है। क्योंकि "हिम जल की बूँद" भी तारों से ढुलक पड़ती है।

कभी यह मुसकान।

भावार्थ—जब वायु चलती है और सूखे पत्ते उड़ने लगते है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी कल्पना का देवता मुझ से मिलने आ रहा है। कभी जल की लहरों में से मुझे अपने प्रिय का हाथ उस पार आने का सकेत करता दिखाई देता है। ऐसी अवस्था में मैं अपने आपको भूल जाती हूँ। संसार को भी भूल जाती हूँ और हंस पड़ती हूँ। हे सखि! मेरी मुसकान तो रोकने पर भी नहीं रुकती।

विशेष—मुग्धा की मानसिक दशा का सरस चित्रण हुआ है। भावों की सुकुमारता के अनुरूप ही भाषा भी सरल है।

१४—मौन निमन्त्रण

प्रस्तुत गीत एक उत्कृष्ट कोटि का रहस्यात्मक गीत है। शीर्षक ही विरोध चमत्कार लिए है। कवि को संसार के विभिन्न दृश्यों में एक ही असीम सत्ता का भास होता है। जैसे उसे कोई बुला रहा हो। किन्तु उस सत्ता की वास्तविकता कवि के लिए अज्ञात है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना मुझ को मौन!

शब्दार्थ—स्तब्ध=नीरव, शान्त। अजान=अनोखे।

भावार्थ—जब सारा संसार शान्तिपूर्ण रात की चाँदनी में आश्चर्य में डूबे नन्हें बालक के समान नीरव रहता है, जब मनुष्य अनोखे स्वप्न लोक में डूबा होता है, तब न जाने कौन अज्ञात मुझे नक्षत्रों में छिप चर मौन निमन्त्रण देता है।

नन्हा बालक चकित होकर जड़वत रह जाता है। उसी प्रकार सारे संसार में जड़ता व्याप्त है।

सघन मेघों का ... भेजता मौन।

शब्दार्थ—भीमाकाश=भयंकर आकाश। तमसाकार=अंधकार मय। तपक=चमक। इङ्गित=इशारा। वसुधा=धरती। विधुर=वियोगी। मिस=बहाने से।

भावार्थ—जब आकाश में मेघ छाकर उसे भयंकर बना देते हैं और सर्वत्र अन्धकार फैला कर गरजने लगते हैं, जब वायु बहुत तेज चलने लगता है, जब अनवरत जलधार बरसने लगती है, तब न जाने कौन विजली में चमक कर मुझे चुपके से इशारा कर जाता है।

जब धरती के यौवन को देखकर वसंत मुखरित हो उठता है, जब वियोगियों के हृदय के कोमल भावों के जागरण के समान फूल खिल उठते हैं, तब न जाने कौन सुगन्धि के रूप में मुझे मूक संदेशे भेजता है।

यौवनावस्था के आने पर सौंदर्य फूट पड़ता है। इसीलिए धरती पर बसन्त के अवतरण की अवस्था को कवि ने धरती का "यौवन-भार" कहा है।

बसन्त काल में वियोगी ठण्डी आहें भरते हैं और उनके हृदय में शत-शत भाव जाग उठते हैं। उपमा और अपन्हुति अलंकार हैं।

क्षुब्ध ... तब मेरे मौन।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=तरङ्गित। जल-शिखर=जल की चोटियाँ-जल की लहरें। बात=वायु। बिथुरा देती=बिखेर देती। बोर देना=डुबो देना। कल कण्ठ-हिलोर=गले की मधुर संगीत लहरी। अलस=अलसाए हुए, तन्द्रिल।

भावार्थ—जब वायु वेग से उठती हुई तरंगों को आलोड़ित कर सर्वत्र झाग फैला देती है, और असंख्य अस्थिर बुलबुलो को बनाकर अचानक ही नष्ट कर देती है, तब न जाने कौन लहरों से हाथ निकाल कर मुझे चुपचाप अपनी ओर बुलाता है।

जब प्रातःकाल सारे संसार में सुनहली आभा, सुख और शोभा बिखर जाती है, और जब पक्षियों का मधुर संगीत आकाश से लेकर धरती तक गूंज उठता है, तब न जाने कौन चुपचाप मेरे आलस्य भरे नेत्र खोल जाता है।

तुमुल तम ... दृग मौन।

शब्दार्थ—तुमुल=घने। भीरु=कायर। कँपा देती तन्द्रा के तार=तन्द्रा को

तोड़ देती है। खद्योतों से = जुगुनुओं से। सकाल=प्रातःकाल।

भावार्थ—जब सारा संसार घने अन्धकार में सोया होता है, और जब कायर झींगुरों की झनकार तन्द्रा को तोड़ देती है, तब न जाने कौन चुपचाप जुगुनाओं से मुझे मेरा पथ दिखलाता है।

झींगुर कायर है क्योंकि प्रथम तो वह सब के सो जाने पर बोलता है और द्वितीय, वह भी बहुत झीने स्वर में।

जब प्रातःकाल सुनहली आभा के बीच कली खिल जाती है, और सुगन्धि से व्याकुल नन्हें भ्रमर तड़प कर गुञ्जारना आरंभ कर देते हैं, तब न जाने कौन ओस के रूप में ढुलक कर चुपचाप मेरे नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

बिछा कार्यों का तुम हो मौन।

शब्दार्थ—बिछा कार्यों का गुरुतर भार=जिस प्रकार कोई व्यक्ति मंजिल पर पहुँच कर भार सर से उतार कर नीचे रखता है उसी प्रकार दिन भर के कार्यों को समाप्त कर के। जुड़ाती=शीतल करती। छाया-जग=धुँधला संसार। फूंक देते छिद्रों में गान=कानों में मधुर संगीत फूंक कर उत्साहित करते हो, श्रम दूर करते हो।

भावार्थ—जब मैं दिन भर के कार्यों के भार को समाप्त कर, दिन को सुनहली संध्या में समाप्त करके, अत्यन्त थक कर शान्त भाव से शय्या पर सोकर अपने प्राणों को थकावट दूर करती होती हूँ, तब न जाने कौन चुपचाप मुझे स्वप्नों के धुँधले संसार में घुमाता है।

स्वप्नों के लिए 'छाया-जग' का प्रयोग बहुत उपयुक्त हुआ है क्योंकि स्वप्न संसार की छाया ही तो है।

ऐ छविमान! मैं नहीं जानती कि तुम कौन हो। तुम सुन्दर अवश्य हो क्योंकि तुम्हारे संकेत बड़े रम्य और सुखकर हैं। मुझे अजान समझ कर मुझे मेरा अपरिचित रास्ते बताते हो और मेरे हृदय में उत्साह का सञ्चार करते हो। तुम सुख और दुख से अवसरों पर सदैव मेरे साथ रहते हो? पर मूक रहते हो। मैं नहीं कह सकती कि तुम कौन हो!

विशेष—भाषा सरल और प्रवाह युक्त है किन्तु अत्यन्त सशक्त है। प्रकृति के रम्य चित्र दिखाई देते हैं।

१५—अनित्य-जग

प्रस्तुत कविता में कवि ने संसार की नश्वरता के करुण चित्र प्रस्तुत किए हैं।

(१)

शब्दार्थ—सौरभ का मधुमास=सुगन्धि से युक्त वसन्त। भरता सूनी साँस=नष्ट होगया। अकिञ्चनता=दरिद्रता, शुष्कता। पावस नद के उद्‌गार= बर्षा काल में नदियों के बहने की ध्वनि ही उसके उद्‌गार हैं। व्याल=सर्प।

भावार्थ—कभी बसन्त काल था और चारों ओर सुगन्धि की लहरें व्याप्त थीं। किन्तु शिशिर काल में वसन्त की सारी शोभा और माधुर्य्य विलीन हो जाता है।

वसन्त काल में जो डाली पत्रों, पुष्पों और फलों से लदी थी तथा जिस पर भंवरे गूंज रहे थे, वही आज शिशिर ऋतु में पत्र हीन, नीरस होगई है। अपनी इस दयनीय दशा पर बार-बार शोक में सिहर उठती है। सचमुच जीवन दुःखमय है।

वर्षा ऋतु में नदियाँ भर गई थीं और कल-कल ध्वनि से बह रही थीं। किन्तु शिशिर ऋतु में उनमें जल बहुत कम हो गया और उनकी मंजुल ध्वनि समाप्त होकर काल की भयंकरता को प्रकट कर रही है। प्रातःकाल के सुनहले सौंदर्य रूपी सोने के संसार को संध्या के लाल मेघों की ज्वाला जला देती है। और फिर सर्वत्र अन्धकार छा जाता है।

युवावस्था में मनुष्य का शरीर सुगठित और आकर्षण से परिपूर्ण होता है। किन्तु वृद्धावस्था में न वह उभार रहता है और न ही वह खुमार। केवल हड्डियों के कंकाल मात्र रह जाते हैं। सर्प के समान काले और चिकने बाल सर्प की केंचुली से रूखे, काँस से सफेद और सिवार से अस्तव्यस्त हो जाते हैं। सभी वस्तुएँ केवल चार दिन ही शोभा और सुख धारण करती है। उसके बाद तो दुख ही दुख है।

"प्रात का सोने का...... ...." सोने की लंका जलने के पश्चात् काली-स्याह हो गई थी।

(२)

आज **अधरों को भूल।**

शब्दार्थ—जरा का पीला पात=पीले पत्ते के समान ही वृद्ध व्यक्ति पीला पड़ जाता है।

भावार्थ—आज बचपन के शरीर की जो मृदुलता और सुकुमारता है वह कल वृद्धावस्था में पीले पत्ते के समान हो जाय गई। कुछ दिनों तक तो मनुष्य सुख की चाँदनी रातें बिताता है किन्तु फिर घने अनजान अन्धकार में डूब जाता है।

जिस प्रकार शिशिर काल के कुहरे से फूल जल जाते हैं, उसी प्रकार दुख और विपत्तियों के आँसू गालों की फूल सी प्रफुल्लता को सोख लेते हैं। युवावस्था में प्रेमी प्रेमिकाओं के अधरों के चुम्बन करते हैं किन्तु वृद्धावस्था में अधर अधरों से बिछुड़ जाते हैं। वृद्धावस्था में स्त्री के अधरों के चुम्बन की कामना नहीं उठती। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था में व्यक्ति के दोनों अधर एक दूसरे से अलग रहते हैं—मुँह खुला रहता है।

मृदुल होठों **काँटों से हाय !**

शब्दार्थ—मृदुल = कोमल। हिमजल हास=ओस की बूँद सा शुभ्र हास।

भावार्थ—युवावस्था तक तो कोमल होठों पर हँसी मँडराया करती है। किन्तु जिस प्रकार ओस की बूँदों को वायु उड़ा ले जाती है उसी प्रकार उस हँसी को दुख और विपत्ति में उठी ठण्डी साँस छिपा देती है। शरद ऋतु में आकाश स्वच्छ रहता है किन्तु वर्षा ऋतु के आते ही उसमें काले मेघ छा जाते हैं। उसी प्रकार युवावस्था की प्रसन्न भौंहों पर चिन्ता के बादल उमड़ आते हैं।

संयोग की अवस्था में नायक-नायिका विविध क्रीड़ाएँ करते हैं। किन्तु वियोग हो जाने पर दोनों ही व्यथा में ठण्डी आहें भरते हैं। अधरों के सुखद चुम्बन समाप्त हो जाते हैं। मिलन के क्षण तो बहुत कम होते हैं किन्तु विरह

तो अनेक युगों तक व्यथित पीड़ित किया करता है।

वियोग की अवस्था में नायक और नायिका दोनों ही असहाय होकर निरन्तर रोते रहते हैं। आलिङ्गन के समय रोमांच हो आता था। उनका स्मरण अब काटों के समान सारे शरीर को विद्ध किए देता है। 'आठ-आंसू रोना 'मुहावरे का प्रयोग है।

(३)

किसी को बयार।

शब्दार्थ—विभव=वैभव, संपत्ति। विद्युत-ज्वाल = बिजली की चमक।

यदि आज किसी को संपत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त भी हो गया है तो वह भी काल का दिया हुआ ऋण ही है। और कुछ समय के उपरान्त ही काल व्याज सहित उस ऋण को वापिस ले लेता है। जितना सुख दिया था उससे कहीं अधिक दुख देता है। सामान्य महाजन तो लोक लज्जा वश या किसी अन्य दबाव के कारण चाहे ऋण देर से ले या धीरे-धीरे ले। किन्तु काल पर तो न किसी का दबाव है, और न ही उसे किसी का कोई भय है, वह तो तुरंत ही व्याज सहित अपने दिए ऋण को चुका लेता है।

कवि और रत्नों की राशि इन्द्रधनुष की शोभा के समान है और वैभव की चमक विजली की चकाचौंध के समान है। मणि-रत्न आदि और वैभव उसी प्रकार क्षण-भंगुर हैं जिस प्रकार इन्द्रधनुष की आभा और बिजली की जोत एक क्षण भर के लिए चमकर फिर विलीन हो जाती है। जिस प्रकार वायु डाली को हिला कर उस पर पड़ी मोती के दानों जैसी ओस को धुल में मिला देती है उसी प्रकार काल की हवा मोती, रत्न आदि को उड़ा ले जाती है। उपमा अलंकार।

खोलता उधर उडगन।

शब्दार्थ—हुलास=उल्लास। अवसाद = दुख। अचिरता=अस्थिरता।

भावार्थ—इधर जन्म होता है कि उधर मृत्यु नवागत, नवनिर्मित वस्तु को नाश की ओर खींचने लगती है।

इस संसार में जहाँ अभी उत्सव मनाए जा रहे हैं, हँसी के फव्वारे छूट रहे हैं, और उल्लास प्रकाशित है, दूसरे ही क्षण वहाँ दुख की घटाएँ घिरने

लगती हैं, आंसू बरसने लगते हैं, और आहों के झोंके उड़ने लगते हैं। इस संसार की अस्थिरता को देखकर तो वायु भी चुपचाप मन-मारे आहें भरा करती है। नीला आकाश बेबसी में ओस के आँसू रो देता है। समुद्र का मन भी लहरों के रूप में फफक उठता है। तारे टिमटिमाते हुए दहलने लगते हैं। उपर्युक्त छन्द में जगत की अस्थिरता जन्य करुणा का व्यापक प्रभाव कवि ने बड़े कौशल से दिखलाया है। सभी दुखी हैं किन्तु बेबस, सिवाए आहें भरने रोने, सिसकने और दहलने के और कर भी क्या सकते हैं?

विशेष—इस कविता ने कवि ने तीन चित्रों द्वारा संसार की नश्वरता दिखाई है। प्रथम है बसन्त के उत्ताल ऐश्वर्य का शिशिर सागर में अवसान। द्वितीय है बचपन की सुकुमारता का वृद्धावस्था में लय और जवानी की उमंग हिलोर की वियोग के मरुस्थल में चिर-सुषुप्ति। तृतीय चित्र में कवि ने संसार की अनित्यता का सामान्य परिचय अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से प्रदर्शित किया है।

कवि के जीवन की उसी निराशा ने ही उसे संसार का यह क्षणभंगुर दृश्य प्रस्तुत करने पर विवश किया है जो निष्ठुर परिवर्तन में और भी वेग, तथा शक्ति से प्रस्फुटित हुई है।

१६—निष्ठुर परिवर्तन

(१)

"अहे ... पतन।"

शब्दार्थ—करुण विवर्तन = दुःख पूर्ण परिवर्तन। नयनोन्मीलन=नेत्रों का खोलना। निखिल = समस्त।

भावार्थ—कवि निष्ठुर परिवर्तन से सम्बोधन करके कहता है कि तुम्हारा ताण्डव नृत्य ही संसार में अवसादपूर्ण नाश और ध्वंस करता है। तुम्हारे नेत्रों के खोलने से ही समस्त उन्नति और साधना के प्रतीक नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। जब तक तुम्हारे नेत्र बन्द रहते हैं, तुम शान्त रहते हो, संसार उन्नति करता रहता है।

इन चार पंक्तियों का एक यह अर्थ भी किया जाता है। संसार में जो दुख पूर्ण घटनाएं दिखाई दे रही हैं वे ही तुम्हारा ताण्डव नृत्य हैं। और संसार के वैभव का नाश ही तुम्हारे नेत्रों का खुलना है।

दोनों ही अर्थ सङ्गत प्रतीत होते हैं। अर्थ भेद का कारण अन्वय भेद है। प्रथम अर्थ प्रथम पंक्ति को द्वितीय पंक्ति का कारण रूप मानकर किया गया है और दूसरे अर्थ में प्रथम पंक्ति द्वितीय पंक्ति की कवि द्वारा दी हुई व्याख्या है।

दोनों ही अर्थों में एक बात स्पष्ट है। और वह यह कि 'ताण्डव नर्तन' और 'नयनोन्मीलन' शब्दों के द्वारा कवि शिवके प्रलयङ्कर रूप की ओर संकेत करता है। भगवान शिव जब ताण्डव नृत्य करते हैं तथा तृतीय नेत्र खोलते हैं तो संसार का नाश हो जाता है। जब तक भगवान तृतीय नेत्र को बन्द रखते हैं, जगत में उन्नति होती रहती है। दोनों ही अर्थों में निष्ठुर परिवर्तन का शिव रूप स्पष्ट है।

"अहे वासुकि दिङ्मण्डल।"

शब्दार्थ—लक्ष = लाख। विक्षत = घाव भरे। फेनोच्छ्वसित = फेन से युक्त। स्फीत = सघन। गरल दन्त = जहरीला दांत। कंचुक कल्पान्तर = नवीन कल्प ही केंचुली है। विवर = बिल।

भावार्थ—अहे निष्ठुर परिवर्तन तुम सहस्र फनों वाले वासुकि हो। साँप के पैर नहीं होते, किन्तु वह जिस स्थान पर से गुजर जाए उस पर अपने चिह्न छोड़ जाता है। वासुकी के स्पर्श मात्र से ही शरीर घावों से भर जाता है। इसी प्रकार अबाधगति से संसार में परिवर्तन हो रहा है। किन्तु परिवर्तन का होना दिखाई नहीं देता। उदाहरण के लिए सूर्य धीरे-धीरे ठण्डा पड़ता जा रहा है किन्तु उसका अनुभव बिना विशिष्ट प्रयोगों के नहीं होता। इस धरती पर परिवर्तन के चिह्न ध्वंसावशेषों के रूप में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए मोहनजोदड़ो इत्यादि परिवर्तन के प्रतीक ही तो हैं। वासुकि जब फूत्कार करता है तो उसके मुख से घने विष के बादल निकलते हैं जो सारे विश्व में व्याप्त होकर उथल-पुथल मचा देते हैं। भयंकर मेघ जो आकाश पर छा जाते हैं, वे आकाश को घुमाते से प्रतीत होते हैं। वासुकि का विषैला दांत होता है जो किसी को जीवित नहीं छोड़ता। उसी प्रकार मृत्यु परिवर्तन का जहरीला दांत है। साँप केंचुली छोड़ता है। नवीन सृष्टि का उद्भव ही परिवर्तन का केंचुली बदलना है। सारा संसार ही परिवर्तन रूपी सर्पका बिल है। दिशाओं का घेरा ही उसका वक्र कुण्डल है।

इस छन्द में कवि ने वासुकि के साथ परिवर्तन का साँग रूपक बाँधा है। संक्षेप में यह तुलना इस प्रकार की जा सकती है—

वासुकि के सहस फन—परिवर्तन के हजारों रूप—भूकम्प, बाढ़, आग, आदि।

अलक्षित चरण-परिवर्तन के अस्तित्व के ज्ञान का अभाव। भयङ्कर फूत्कार = प्रलयकारी मेघ। जहर का दाँत = मृत्यु। केंचुली = नवीन सृष्टि। विवर = अखिल विश्व। वक्र-कुण्डल = दिशाओं का घेरा।

(२)

शब्दार्थ—दुर्जेय = अजेय। विश्वजित = विश्व को जीतने वाले। नृशंस= क्रूर। संसृति = संसार। मर्दित = कुचल देगा। वह्नि = आग।

भावार्थ—अहे निष्ठुर परिवर्तन! तुम अजेय हो किन्तु तुमने सारे संसार को जीत रखा है। तुम्हारे सामने सैकड़ों देवता और महाराजे मस्तक नवाते हैं। जिस प्रकार पहिए के अरे ऊपर नीचे घूमते हैं, उसी प्रकार काल चक्र में पड़ कर हजारों निस्सहाय व्यक्ति उन्नति-अवनति किया करते हैं। प्राचीन रोम-साम्राज्य में दासों को जंजीरों में जकड़कर राजा के रथों के साथ बाँध दिया जाता था।

तुम क्रूर राजे के समान अपनी उच्छृङ्खलता में संसार पर आक्रमण कर देते हो और संसार को अपने पाँव के नीचे रौंद देते हो—उसे भयंकर दुख में डुबो देते हो। जिस प्रकार कोई निष्करुण राजा नगरों को नष्ट कर देता है, भवन गिरा देता है और मूर्तियाँ खण्डित कर देता है (उदाहरण के लिए तैमूर, मुहम्मद गजनी आदि) उसी प्रकार तुम इन सब वस्तुओं को नाश में विलीन कर देते हो और इस प्रकार जनता की निरन्तर दीर्घ साधना के पश्चात प्राप्त कला और वैभव को राख कर डालते हो। राजा के सेना होती है। परिवर्तन की विशाल सेना है शारीरिक व्यथा, मानसिक पीड़ा, अधिक वृष्टि, बबण्डर, तूफान, आग बाढ़, भूकम्प आदि। और हे उच्छृङ्खला परिवर्तन तुम्हारी सेना के कारण सारा विश्व डाँवाडोल हो उठता है। किसी विराट सेना के चलने से धरती काँपने लगती है। इस छन्द में कवि ने परिवर्तन को निरंकुश क्रूर राजे के साथ साँगरूपक बाँधा है। यह रूपक स्पष्ट है।

(३)

शब्दार्थ—हृत्कंपन=हृदय की धड़कन। निखिल=सारे संसार की। विकच=अधखिला। कृमि=कीड़े। स्वेद सिञ्चित=पसीने से सींचा हुआ। दलमल देते=नष्ट कर देते। वर्षोत्पल=ओले।

भावार्थ—तुम्हारे भय के कारण ही संसार के प्राणियों का हृदय निरन्तर काँपता रहता है। सब प्राणियों का मरण तुम्हारा ही निमन्त्रण है। भयभीत होने पर मनुष्य के हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। यहां कवि ने हृदय की धड़कन का नया कारण दिया है। अतः हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। आँखें नीची करके ही किसी के निमन्त्रण की स्वीकृति दी जा सकती है। "पलकों का मौन पतन" में कितनी विवशता है और है अवसाद।

कमल में कीड़े रहते हैं और निरन्तर उसके पत्तों को छेदा करते हैं, परिवर्तन भी उसी कीड़े के समान है और अर्ध-विकसित इच्छाओं से भरे संसार रूपी कमल में नित्य रह कर उसे छेदा करता है। कीड़े अधखिले कमल को ही बेध डालते हैं। परिवर्तन के कारण अतृप्त इच्छाएं ही धूल में मिल जाती हैं। विश्व = कमल। इच्छाएँ = पत्ते।

किसान कड़ी मेहनत कर के और अपना पसीना बहाकर सुनहले धान को उत्पन्न करता है। किन्तु तुम ओले बनकर खेती के इस काम्य फल को खा जाते हो। दिशा मण्डल में सदैव आवाजें गूँजती रहती हैं जो तुम्हारे भय के कारण ही हैं। रात्रि का आकाश मण्डल ही तुम्हारी समाधि का स्थान है। समाधि एकान्त स्थान में लगाई जाती है। रात्रि में एकान्त होता है। इसलिए 'नैश गगन सा' कहा। रात्रि निराशा और अवसाद का प्रतीक है। परिवर्तन भी निराशा और अवसाद की वर्षा करता है। समाधि में लीन योगी के कान में अनहद्नाद होता है। इधर दिशामण्डल सदैव गुंजता रहता है और उस अनहद् नाद की ओर संकेत करता है। इससे यह अर्थ भी स्पष्ट होता है कि परिवर्तन सर्वव्यापी है और प्रतिपल अपना प्रसार करता रहता है।

(४)

शब्दार्थ—काल=यमराज। अकरुण भृकुटि विलास=क्रोध। परिहास=हँसी, मजाक। अखिल प्रलयकर=सब कुछ नाश कर देने वाला है। निसर्ग=

अविरल । अभ्रध्वज=गगन चुम्बिनी पताकाएँ । सौध=महल । मेघाडम्बर= संध्या के मेघों की रचना । पक्षि-पोतों-से=पक्षी के बच्चों के समान । उडगन= नक्षत्र । आलोड़ित=मथित । इङ्गित = इशारा । दिक्-पिञ्जर=दिशा रूपी पिञ्जरा । गजाधिप=गजराज । विनतानन=नीचा मुख किए हुए । वाताहत= वायु के आघात से । आर्त=दुःखी ।

भावार्थ—प्राणियों की मृत्यु में प्रतिफलित होने वाला यमराज का क्रोध, तुम्हारे द्वारा उड़ाया गया मनुष्यों का मजाक है । संसार की दर्द भरी कहानी, तुम्हारी विकरालता को ही प्रकट करती है ।

तुम यदि एक बार भी क्षुब्ध हो जाते हो तो सारे संसार में प्रलय सी मच जाती है । सर्वत्र एक भयंकर युद्ध छिड़ जाता है । गगन चुम्बनी पताकाएं मिट्टी में मिल जाती हैं । अट्टालिकाएं और ऊंची चोटियाँ टूट कर धूल में विलीन हो जाती हैं । धरती पर संध्यालीन मेघों की विराट रचना के समान जो वैभवशाली साम्राज्य स्थापित होते हैं वे सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । संध्या काल के मेघों की विराट रचना भी क्षणिक होती है । तुम्हारे रोमाञ्च से आकाश और धरती हिल उठते हैं, और नक्षत्र भयभीत पक्षी शावकों के समान गिर पड़ते हैं । क्षुब्ध सागर फेनयुक्त लहरों को उठाकर सैकड़ों फनों वाले भयङ्कर सर्प सा रूप धारण कर लेता है और तुम्हारे इशारे पर नाचने लगता है । दिशाओं रूपी पिञ्जरे में बँधा हुआ गगन रूपी गजराज वायु के प्रचण्ड झोंकों के लगने से करुण-क्रन्दन करने लगता है । जब वायु के प्रचण्ड झोंके चलते हैं तो आकाश में गर्जन सी ध्वनि होती है ।

(५)

शब्दार्थ—बधिर=बहरे । स्रोत = झरने । पाषाण=पत्थर । चतुर्दिक्=चारों दिशाओं में । आक्रान्ति=अशान्ति ।

तुम्हारी विकरालता को देखकर संसार चीत्कार कर उठता है । किंतु तुम तो बहरे हो । तुम पर उनका क्या प्रभाव पड़ सकता है ! तुम्हारे वेग में कुचल कर असंख्य व्यक्ति आँसुओं के झरने बहा देते हैं । किन्तु तुम्हारे दिल तो पत्थर का है । उस पर भला जल का क्या प्रभाव हो सकता है ?

असंख्य व्यक्तियों की आहों से आकाश पूरित हो रहा है । चारों दिशाओं

में अशान्ति गरज गरज कर सुख और शान्ति को दबाए डालती है।

(६)

शब्दार्थ—द्वर्वल भ्रान्ति = दुर्बल हृदय का भ्रम विशेषण विपर्यय। विराम=विश्राम। हर्म्य=महल। मेघ मारुत का माया जाल=पवन और बादल के खेल।

शब्दार्थ—संसार की करुण नश्वरता का ज्ञान होने पर भी मनुष्य इसी संसार में रह कर सुख और मङ्गल की कामना करता है। इस पर कवि कहता है कि फिर भी मनुष्य का निर्बल हृदय इसी संसार में शान्ति प्राप्ति की कामना करता है। यह सचमुच भ्रम है। इस नाशवान संसार में शान्ति कहाँ! सृजन का अर्थ ही है अशान्ति। यह संसार तो निरन्तर चलता हुआ जीवन का युद्ध है। यहां विश्राम तो स्वप्न है।

कहीं एक सौ बर्ष तक तो नगर और उद्यान आदि रहते हैं। किन्तु कालान्तर में वहीं निर्जन वन रह जाता है और अन्य सब कुछ नष्ट हो जाता है। यह नश्वर संसार क्या है ? इसका निर्माण होता है, इसकी उन्नति होती है, और अन्त में सब कुछ शून्य हो जाता है। आज जो महल अपना सर ऊँचा उठाए खड़े हैं और जिनमें रत्नों के दीप सजे हैं और यज्ञ आदि हो रहे हैं कल यही खण्डहर हो जायंगे और इस में उल्लू रहा करेंगे। उनमें झिलियों की झनकार सुनाई दिया करेगी। दिन और रात वाला यह संसार तो बादल और वायु का एक खेल है। वायु बादल को उड़ालाती है, उसे फैला देती है, और फिर सिमेटकर 'ले जाती है। दिवस-निशि' से सुख-दुख तथा उन्नति-अवनति की ओर भी संकेत है।

विशेष—प्रस्तुत कविता की छन्द-योजना और शब्द-चयन सर्वथा भावानुकूल है। नाद सौन्दर्य-बहुला चित्र-भाषा का प्रयोग है सांग रूपकों की अपेक्षा पाँचवें तजा छठवें कविता-खण्ड में भावात्मकता अधिक है।

प्रस्तुत कविता में प्रदर्शित संसार की नश्वरता का चित्र दर्शन से अनुप्राणित नहीं है-वैयक्तिक निराशा का परिणाम है।

१७—नित्य जग

कवि ने संसार की क्षण भंगुरता का करुण दृश्य देखा। किन्तु संसार की

वास्तविकता इस परिवर्तन से परे है, जो नित्य नवीन और अव्यय है। उसी का इस कविता में चित्रण हुआ है।

(१)

शब्दार्थ—अनित्य नर्तन=अनित्य प्रदर्शन। चिर=शाश्वत सत्य। सैकत = रेत। अतिवात=तेज वायु।

भावार्थ—यह संसार सनातन सत्ता की नश्वर अभिव्यक्ति है। उस नित्य सत्ता का प्रदर्शन इस संसार के रूप में होता है। और संसार परिवर्तन शील है। इस नश्वर संसार में अविनश्वर की खोज ही संसार का वास्तविक दर्शन है।

जिस प्रकार अतल सागर से तरंगें उठा करती हैं उसी प्रकार उस अज्ञात सत्ता से सृष्टि का आविर्भाव होता है। जिस प्रकार एक तरङ्ग में असंख्य बुलबुले विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार सृजन की इस लहर में न जाने कितने संसार रूपी बुलबुले प्रकट होते हैं और फिर उसीमें लय हो जाते हैं। जब तेज हवा के झोंके चलते हैं तो रेत के किनारे बन जाते हैं और फिर वह स्वयं ही उन्हें गिरा देती है। उसी प्रकार वह सनातन सत्ता ही संसार को प्रकट करती है, और फिर उसे तिरोहित कर लेती है।

द्वितीय छन्द में साँग रूपक है।

प्रथम छन्द की "विवर्तन जग जग व्यावर्तन का अर्थ स्पष्ट नहीं है।

(२)

एक छवि संहार।

शब्दार्थ—उडगन = नक्षत्र मण्डल। विभात = प्रभात।

भावार्थ—अब कवि अनेक वस्तुओं में एक मूल तत्व के दर्शन करता कराता है।

एक ही ज्योति असंख्य नक्षत्रों को ज्योतित किए है। उन सब नक्षत्रों की गति भी एक ही है। वे सब एक ही सुन्दर प्रभात में खिले हुऐ हैं। और सब एक ही नियन्ता के आधीन हैं। सबका नियामक एक ही है जो उन्हें नियमानुकूल घुमाता है।

सुख-दुख तथा दिन और रात एक ही लहर के दो किनारों के समान हैं। जीवन में दोनों का होना अनिवार्य है। यह त्रिगुणमय संसार सुख-दुख से भरा

हुआ है। निर्माण ही संहार है। क्योंकि जो वस्तु जन्म लेती हैं उसका नाश अवश्यंभावी है।

त्रिगुणः = प्रकृति के तीन गुण सत्व, रजस, तमस माने गये हैं। सांख्य शास्त्र के अनुसार जब ये तीनों गुणों का सम्मिलन होता है, तभी संसार की उत्पत्ति होती है।

"उभय सुख दुख, निशि भोर" में क्रमभङ्ग दोष है।

मूँदती   प्रदान।

शब्दार्थ—सर्व प्रलयकर=सब कुछ नाश करने वाली। बात=वायु। अम्लान =निर्मल। महत्=महान।

भावार्थ—उधर मृत्यु की रात जीवन को समाप्त करती है, उधर नवीन जीवन का प्रभात, नव जीवन प्रदान करता है। जो वस्तु नष्ट हुई है, उसका जन्म अवश्यंभावी है। रात में मनुष्य सोता है और दिन में जागता है। इसलिए "मृत्यु की रात" और 'जीवन की प्रात' प्रयोग अत्यन्त कलात्मक हैं। शिशिर ऋतु की वायु वनस्पितियों का नाश करने वाली होती है। किन्तु वही वसन्त के जन्म का कारण है।

एक चीज नष्ट होती है, दूसरी का जन्म होता। फूल मुरझा जाता है किन्तु मुरझा कर ही निर्मल फलों को जन्म देते हैं। कवि कहता है कि आत्म-बलिदान बड़ी महान् वस्तु है क्योंकि जीवन में तो केवल आदान-प्रदान ही है। एक का बलिदान करने पर ही दूसरी की प्राप्ति होती है। नवीन पल्लव धारण करने के लिए वृक्षों को पुराने पत्ते फेंक देने पड़ते हैं।

(३)

एक ही   झङ्कारक।

शब्दार्थ—हरित विलास=हरे रंग की शोभा।

भावार्थ—मूल आनन्दमय तत्त्व तो एक है। वही सर्वत्र अनेक रूपों में प्रतिफलित है। वही सागर की हरित शोभा है। नीरव आकाश की मधुर नीलिमा भी वही है। हृदय का प्रेम भी वही है। वही काव्य में रस, पुष्पों में सुगन्धि, तारों में ज्योतिमय हँसी और सुन्दर लहरियों की चंचलता है। विविध वस्तुओं में एक ही संगीत अनेक रूपों में प्रस्फुरित हुआ है।

इन छन्दों में 'प्रतिविम्बवाद' की स्पष्ट झलक है।

(४)

शब्दार्थ—प्रज्ञा = शुद्ध बुद्धि। लावण्य = सौन्दर्य। शिव = मङ्गल।

भावार्थ—मेधा बुद्धि में प्रकाशित होने वाला वह सत्य तत्त्व ही हृदय का अगाध प्रेम बनता है। वही नेत्रों में सौन्दर्य तथा परोपकार में कल्याण की भावना के रूप में प्रकट होता है। संगीत में मुखरित होने वाले हृदय के सच्चे भाव भी उसी का प्रतिबिम्ब हैं। वही अलौकिक सौन्दर्य है, साक्षात प्रेम-मूर्ति है और भावनामय संसार है। "भावनामय संसार" से यह ध्वनित होता है कि प्रत्येक व्यक्ति का एक अपना दृष्टिकोण होता है जिसके अनुसार वह संसार को समझता है। चाहे कोई संसार के किसी रूप को ही क्यों न ग्रहण करे, वह रूप उसी मूल तत्त्व की ही अभिव्यक्ति होगा। कवि सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का सामञ्जस्य दिखाता है।

(५)

शब्दार्थ—स्वकीय = अपने।

भावार्थ—अपने कर्मों के अनुसार ही मनुष्य किसी वस्तु से आनन्द या दुख प्राप्त करता है। वही बन्धन है। पर एक के लिए वह राखी का प्रेम बन कर आया है और दूसरे के लिए बेड़ी का भार।

गुण पर श्लेष है—उसका दूसरा अर्थ है रस्सी।

(६)

कामनाओं ... धार।

शब्दार्थ—छेड़ जगती के उर के तार = मनुष्यों को प्रेरित करके।

भावार्थ—मनुष्य के हृदय में अनेक इच्छाएँ उठती हैं। वही उसे कर्म-पथ पर आरूढ़ करती हैं और उसमें उत्साह फूँक देती हैं। ज्ञानामृत की धारा के सुख और दुख दो किनारे हैं। जीवन के सुखमय और दुखमय अनुभवों के पश्चात ही मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है।

पिघल ... मोल।

शब्दार्थ—हुलास = उल्लास। प्रकाम = कमनीय। अभिराम = सुन्दर। इष्ट = वांछित वस्तु। जीवन का मोल = जीवन की सार्थकता।

भावार्थ—अपने प्रिय जनों की हँसी ही नेत्रों में उत्साह और उल्लास को जगा देती है। दुख की अग्नि में जलकर ही प्राण सोने की सी कान्ति धारण करता है। सुख सुख दोनों ही जीवन के लिए शक्ति दायक हैं।

हम सदैव सुख के लिए तरसते हैं इसीलिए वह अत्यन्त कमनीय और मधुर है। दिन-रात हम जीवन-युद्ध में रत रहते हैं इसीलिए सफलता सुन्दर लगती है। व्यक्ति जिस वस्तु की जितनी अधिक कामना करता है वह वस्तु उतनी ही मूल्यवान होती है।

वांछित वस्तु अप्राप्य है इसीलिए वह अमूल्य है। जो वस्तु जितनी कम मिलती है उसका मूल्य उतना ही अधिक होता है। इष्ट अप्राप्य है तो क्या उसकी प्राप्ति के लिए साधना भी नहीं करनी चाहिए? कवि कहता है कि ऐसा सोचना अनुचित है। साधना में ही तो जीवन की सार्थकता है।

कविता के इस खण्ड में पहली चार पंक्तियों को छोड़कर हर दो पंक्तियाँ अपना अलग अर्थ रखती हैं। पूर्वापर सम्बन्ध का अभाव है। विचारों की बहुरूपता है। किन्तु प्रभाव की एक रसता है।

(७)

भावार्थ—बिना दुख के सुख का कोई मूल्य नहीं और विना आँसू के जीवन भार है। मनुष्य एकरस परिस्थितियों से ऊब उठता है। जीवन में परिवर्तन ही उसे आकर्षक वनाता है। संसार असहाय है, निर्बल है, इसीलिए दया, क्षमा और प्यार की उपादेयता है।

(८)

भावार्थ—आज का दुख कल आनन्ददायक बन जाता है। बीते दिनों की दुखपूर्ण स्मृति करके लोग उत्साहित और हर्षित होते हैं। कल का सुख आज का दुख है। यदि आज हम परिश्रम कर दुख नहीं उठाएंगे तो कल सुख का फल प्राप्त नहीं होगा। यह संसार स्वप्न की समस्या के समान रहस्यमय है। इस संसार का वास्तविक ज्ञान यहाँ सम्भव नहीं है। संसार को पार करने पर ही उसका रहस्य जाना जा सकता है। जब तक हृदय सांसारिकता में डूबा हुआ है उसे यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। सांसारिक जीवन का अर्थ है विकास करना और इस विकास का अवरुद्ध होना ही मृत्यु है।

(६)

शब्दार्थ—अपरूप=अपूर्व रूप धारण किए।

भावार्थ—हम जो कुछ भी करते है, अपनी इच्छा से नहीं करते। कराने वाला तो कोई और ही है। और जिस रूप में हम अपने आपको जानते हैं, वही हमारा वास्तविक रूप नहीं है। हमारा रूप तो अनन्य है, किन्तु इस सांसारिक दशा में हम अपनी छाया में ही, एक दूसरा नाम धर कर छिपे हुए हैं। छाया से वास्तविक नाम और रूप का ज्ञान नहीं हो पाता। इस संसार में तो हम अपने आपको मिटाने आए हैं और अपने पन को मिटाकर ही हम अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं।

बिशेष—प्रस्तुत कविता में कवि का दार्शनिक रूप मुखर हो उठा है। किन्तु कवि किसी एक विशिष्ट दर्शन को प्रतिपादित करता दिखाई नहीं देता। आरंभिक अंशों में अद्वैत का हल्का प्रभाव है।

"नित्य जग" में आकर भी कवि की निराशा का अन्त नहीं हुआ जो कविता के उत्तरार्द्ध में अधिक प्रतिबिम्बित दिखाई देती है जैसे "अलभ है इष्ट……" या "दीन दुर्बल है…………" आदि।

कविता के विभिन्न खण्डों में पूर्वापर सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता।

(१), (२) तथा (७) में अज्ञात शब्द का प्रयोग सार्थक नहीं है।

१८—मछुए का गीत

प्रस्तुत कविता में दो चित्र हैं। एक मछुए और मछली का और द्वितीय नायक और मुग्धा नायिका का।

"प्रेम की · वृथा रूप का मान।"

शब्दार्थ—जीवन=जल। गेह=गृह।

भावार्थ—मछुआ गाता हुआ मछली से कहता है कि तुम्हारे शरीर में अभी तक बंसी नहीं लगी। तू कौन है जो इस जल के पर्दे के भीतर अपनी ही शोभा पर मोहित सी छिपी हुई है ? तू अत्यन्त चंचल है किन्तु यह बंसी भी बड़ी तेज है जो तेरी चंचलता को भी बाँध लेगी। चंचल लहरें ही तेरा प्रेम-मय घर है। अब तू जल के झाग से अपना प्रेम छोड़ दे। तू प्रतिक्षण क्यों डूब-उतरा रही है। तेरे रूप का मान व्यर्थ है क्योंकि अब तेरा अंत निकट है।

द्वितीय पक्ष में नायक मुग्धा नायिका से कहता है—अभी तक तूने प्रेम की चोट नहीं खाई है। तू स्वयं ही अपनी शोभा पर मोहित रहती है। तुझमें नई जवानी की चंचलता है। किन्तु प्रेम के तीर अत्यन्त तीक्ष्ण होते हैं। उनके लगने पर तेरी चंचलता भाग जाएगी। अभी तक तू घर के प्रेम में ही डूबी हुई है। किन्तु अब तुझे अपने घर की ममता त्याग देनी चाहिए। तू व्यर्थ ही अपने रूप का मान मत कर।

आए नव घन ... हरता तन मन प्राण।

भावार्थ—मछुआ कहता है कि देख विविध रूपों को धारण करके वर्षा ऋतु के मेघ आए हैं। रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही है। तू सदैव इस जल में न रह सकेगी। कभी न कभी मेरे सुनहले जालमें फँसेगी और जल से बाहर आएगी। इस तरह से छिप-छिप कर तू कब तक बची रह सकेगी। संसार के लोग भी कभी न कभी अचानक फँस ही जाते हैं।

अन्तिम छन्द का अर्थ मछुए मछली के पक्ष में नहीं लगता।

नायक के पक्ष में—नायक कहता है विविध रूप वाले मेघ घिर आए हैं रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही है। वर्षा का यह सुहावना दृश्य अवश्य ही तेरे हृदय में बेकली उत्पन्न कर देगा, और तू निरन्तर अपने-आप में मस्त न रह सकेगी। कभी तो तू प्रेम के सुनहले जाल में फँसकर घर की ममता को तोड़ बाहर निकलेगी। इस संसार में छिप-छिप कर कोई भी नहीं बच सका। सबके मन में प्रेम की टीस उत्पन्न हो ही जाती है। और प्रकृति में भी देखो। मेघ घिर-घिर कर आते हैं और धरती पर निछावर हो जाते हैं। निर्झर तालाबों में अपने-आप को लय कर देते हैं। वह प्रेम ही जड़-चेतन सभी को संचालित कर रहा है और वही व्यक्ति के शरीर, हृदय और प्राणों की चेतना को हर लेता है। प्रेम हो जाने पर तन-मन की सुध नहीं रहती।

विशेष—प्रस्तुत गीत एक सरस, कोमल समासोक्ति है। कवि का व्यंग्य प्रतिपाद्य विषय नायक-नायिका का प्रेम है—क्योंकि उन्हीं के रूप-व्यापारों की प्रमुखता है।

१९—प्रार्थना

जग के ... सुख यौवन।

शब्दार्थ—उर्बर = उपजाऊ। ज्योतिर्मय जीवन=शुभ जीवन (श्लेष)। अव्यय=अविनश्वर।

भावार्थ—कवि भगवान से प्रार्थना करता है—हे अविनश्वर, हे चिरनवीन तुम इस संसार में मङ्गलमय जीवन के रूप में बरस पड़ो। छोटे-छोटे तिनकों पर और वृक्षों पर भी तुम अपनी दिव्य आभा फैला दो।

दूसरे पक्ष में जल जब उपजाऊ भूमि में बरसता है तो धरती सुख-समृद्धि से परिपूर्ण हो जाती है।

हे भगवन ! फूलों में सुगन्धि बनकर बरसो, हृदय में प्रेम का शाश्वत धन बनकर बरसो, होठों पर मुस्कराहट, नयनों में मधुर स्वप्न, हृदय में सुख और अङ्गों में यौवन बनकर बरसो।

"स्मिति-स्वप्न"—क्रमालंकार।

वर्षा होने पर भी सर्वत्र उल्लास और प्रफुल्लता बिखर जाती है।

छू—छू　　　　　　　　　　　　　　　　　　सावन।

भावार्थ—वर्षा होने पर मिट्टी में मिले हुए बीज दूब और वृक्षों के रूप में खिल उठते हैं। हे जीवनधन ! तुम क्षुद्र व्यक्तियों को भी महिमा और गरिमा प्रदान करो। सब में प्राण-शक्ति फूँक दो और मिट्टी सी मौत को समाप्त कर दो। मृत्यु को रोका नहीं जा सकता किन्तु पशुओं सी मृत्यु को रोका जा सकता है। कवि की कामना है कि सभी व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त कर महान अन्त को प्राप्त हों।

हे संसार को जीवन प्रदान करने वाले ! सुख और शोभा बन कर बरसो। बादल के बरसने से भी श्री और समृद्धि का विकास होता है। तुम संसार को हरा-भरा रखने वाले सावन हो। तुम सर्वत्र और सर्वदा बरसा करो।

विशेष—मेघों का बरसना व्यंग्य अप्रस्तुत है किन्तु इसका निर्वाह कवि ने अन्त तक किया है।

२०—सान्ध्य वन्दना

शब्दार्थ—करुणानत=दया से झुका हुआ। नीड़=घोंसला।

भावार्थ—हे सन्ध्या तुम मनुष्यों की थकावट और व्यथा को दूर करने वाली हो। तुम सुख और सौन्दर्य के स्वर्ण से व्यक्तियों के घर भर दो। संध्या

के समय सुनहली आभा बिखर जाती है।

मनुष्य पशु, पत्ती सभी थक कर चुपचाप घर की ओर लौट रहे हैं। मन्द-मन्द पवन बह रहा है जिससे वृक्ष के पत्तों की मर्मर ध्वनि निकल रही है। तुम पल्लव जैसे और दया से झुके हुए हाथों से संसार रूपी घोंसले पर छाया कर दो। वृक्ष अपने पत्तों से पक्षियों के घोंसलों पर छाया करता है।

शुक्र तारा निकल आया है। सूर्य का प्रकाश समाप्त हो गया अब वायु भी बन्द हो गई है। कमलों के नेत्र झुक गए हैं। वह भी मानो सोने का उपक्रम कर रहे हों। हे रात्रि के चन्द्रमा तुम आलस भरे नयनो में मधुर स्वप्नों को छेड़ दो।

२१—लहरों का गीत

अपने ... नवदल।

भावार्थ—इस गीत में लहरों का मनवीकरण है। वे स्वयं कहती हैं—हम अपने ही उल्लास में सदैव चंचल रहती हैं और जल के फेनमय मोती को हाथों में लेकर हर समय हँसती रहती हैं। जब मनुष्य प्रसन्न होता है तो उसमें चंचलता-नृत्य आदि के रूप में—और हास प्रस्फुटित हो ही जाते हैं।

मलय पवन हमें बार-बार छू कर पुलकित कर देता है और लहरों के रूप में जल रूपी लता में नई-नई इच्छाओं के पत्ते जगा देता है। मलयानिल के उद्दीपन प्रभाव के फल-स्वरूप नायिका में भी विविध इच्छाएं जाग उठती हैं।

सुन मधुर ... ओझल।

शब्दार्थ— मरुत = वायु। गृह-पुलिन=घर रूपी किनारे।

भावार्थ—रास के समय कृष्ण की मुरली ध्वनि सुनकर गोपियाँ उल्लास में घर से निकल पड़ीं थी और फिर उन्होंने विभोर होकर नृत्य किया था। लहरें कहती हैं कि वायु के मधुर शब्द रूपी मुरली की तान सुनकर हम घर रूपी किनारों को हर्ष की आकुलता में पार कर, नृत्य करती हैं। वायु के चलने पर लहरें किनारों की ओर दौड़ती हैं और उनसे परे जा पड़ती हैं। जिस प्रकार नाचती हुई गोपियों के वक्षस्थल से अंचल खिसक गया था, उसी प्रकार लहरें भी जल पर सरकती हुई चली आती हैं। हम बार-बार सागर से

उठकर-तथा फिर उसी में लय होकर सदैव जीती और मरती रहती हैं पर प्रसन्न रहती हैं। सागर से उठना ही जीवन है और उसमें लय होना मरण। कलनाद ही हंसी है। अन्तिम छन्द में कवि दार्शनिक हो उठा है। अनन्त ब्रह्म से जीव उदित होता है और फिर उसी में लय हो जाता है।

२२—घण्टा

नभ की ... स्वर।

शब्दार्थ—नीली चुप्पी पर=शान्त आकाश में।

भावार्थ—रात्रि का समय है। कवि कहता है कि शान्त नीले आकाश में एक सुन्दर घण्टा टंगा हुआ दिखाई देता है। घण्टाघर अन्धकार में लीन हो गया है इसलिए घण्टा आकाश में टँगा दिखाई देता है।

उस घण्टे के स्वर परियों के बच्चों के परों से भी सुन्दर ध्वनियों के पर फैलाकर कानों में आते हैं और वहीं घोंसला बना लेते हैं। वह स्वर कवि के मन पर स्थायी प्रभाव डालते हैं इसलिए 'घोंसला बनाना' प्रयोग सार्थक है। कल्पना कोमल है।

भरते ... गई रात।

शब्दार्थ—रोर=शब्द।

भावार्थ—वे स्वर मन को यह मोहक संदेशा सुनाते हैं—'हे कार्य से डरने वाले मनुष्यो जाग उठो। दिशा के कोने प्रकाश में डूब गए हैं। प्रातःकाल होने वाला है। अब नया सुनहला प्रभात हुआ है। अब जागकर नए-नए काम करो, नई-नई बातें सोचो। रात बीत गई। अब जाग उठो। और मन को निर्मल तथा शरीर को स्वच्छ करके रहो।

२३—वायु के प्रति

"प्राण ... तरु-पात।"

शब्दार्थ—तरु-पात=वृक्ष के पत्ते।

भावार्थ—हे प्राण! तुम्हारा शरीर अत्यन्त झीना है। तुम नीले आकाश रूपी कुंज में रहती है। तुम सदैव शान्त रहती है। तुम शुद्ध हो तथा तुम्हारा रूप नित्य नवीन है। तुम समस्त शोभा की भी शोभा है। किन्तु तुम्हारा

अपना कोई रूप नहीं है। वायु ही प्राण के रूप में स्थित रहकर नर-नारी को सौन्दर्य प्रदान करती है। जब प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं, तो लावण्य भी सूख जाता है। हे वायु तुम अप्सरा के समान अज्ञात हो।

तुम्हारे होठों पर मर्मर ध्वनि रहती है। जब तुम चलती हो तो मधुर शब्द होता है। तुम शरीर को पुलकित कर देती हो। तुम्हारे चंचल पदों को तरल लहरियाँ चुमा करती हैं। जल से जब तुम्हारा स्पर्श होता है तो उसमें तरंगें उठने लगती हैं। जिस प्रकार किसी बलवान की चढ़ी भृकुटि को देखकर लोगों का साहस नष्ट हो जाता है, और वे भय में कांपने लगते हैं, इसी प्रकार तुम्हारे एक संकेत में ही कलियाँ भयभीत होकर चटक जाती हैं, और तिनके तथा वृक्षों के पत्ते काँपने लगते हैं। वायु का मानवीकरण है।

"हरित-द्युति   अजात !"

शब्दार्थ—हरित-द्युति=हरी आभावाला। हृत् = हृदय। निभृत=कोमल। अस्पृश्य = जो छुई न जा सके।

भावार्थ—तुम्हारा आंचल हरे रंग का है और इसका किनारा सदैव अस्थिर रहता है। झूमते हुए वृक्षों की हरियाली ही, उसके दुपट्टे की हरियाली है। तुम्हारी शोभा जल से पूर्ण है। तुम में जल कण भी समाए रहते हैं। तुम्हारी आकाश रूपी नीली कंचुकी है। तुम्हारा रंग सफेद है। तुम्हारे बाल बिखरे हुए हैं। वायु के चलने पर बाल उड़-उड़कर बिखर जाते हैं। सुगन्धि की लहरें ही तुम्हारी साँस है। संध्या और प्रातःकाल ही तुम्हारे पर हैं। इन पंक्तियों में कवि ने वायु को अप्सरा का रूप प्रदान किया है।

विश्व के हृदय रूपी कमल में तुम रहती हो। दिन रात तुम्हारी साँसों में मधुर गति है। तुम संसार के समस्त जीवों को प्रसन्नता प्रदान करती हो। तुम स्वयं दिखाई नहीं देती, छुई नहीं जा सकती और अनादि हो।

"अहर्निशि साँस-साँस में लास" का अर्थ वायु की गति से है। कवि मानवीय-संकेतों में इतना खो गया है कि प्रस्तुत वर्ण्य-विषय एकदम धुंधला पड़ गया है।

२४—सुख-दुख

"मैं नहीं   सुख दुखं से।"

भावार्थ—कवि कहता है कि न तो मैं अनन्त सुख की कामना करता हूँ, और न ही अपार दुख भी। मैं तो यह चाहता हूँ कि सुख और दुख की आंख मिचौनी खेलते हुए मेरा जीवन अग्रसर हो। आंख मिचौनी के खेल में कभी एक छिपता है तो कभी दूसरा। इसी प्रकार जीवन में भी कभी सुख तिरोहित हो जाय और कभी दुख।

सुख और दुख दोनों के उचित संयोग से मेरा जीवन पूर्ण हो। कभी मेघों में चाँद छिप जाए और कभी चांद मेघों को छिपा दे-दूर करदे। चांद सुख का प्रतीक है और मेघ दुख का। यह अन्योक्ति है।

जिस प्रकार अधिकांश मनुष्य निरंतर विपत्तियाँ सहता-सहता पीड़ित है। इसी प्रकार कुछ मनुष्य अनवरत सुख में रहते-रहते भी ऊब उठते हैं। इसलिए कवि कामना करता है कि मानव-जीवन में सुखी व्यक्ति दुखिये का दुख बटाले और दुखी व्यक्ति को सुख प्राप्त हो जाए, जिससे कि जीवन में सुख और दुख दोनों का संतुलन बना रहे।

"अविरत दुख ... का!"

शब्दार्थ—अविरत=निरन्तर। दिवा=दिन।

भावार्थ—अपार दुख भी मनुष्य को व्यथित कर देता है और निरन्तर सुख सहते-सहते भी मनुष्य उदासीन हो जाता है। मनुष्य दुख की रात्रि में तो दुनिया से बेसुध होकर अपने आप में ही खोया रहता है, और सुख के दिन में वह उत्सव और उल्लास मानता है।

मनुष्य जीवन के मुख पर तो हँसी और आँसू दोनों ही फूटा करते हैं। मानव जीवन में दुख की संध्या भी आती है और सुख की उषा भी इसमें विरह और मिलन दोनों ही प्राप्त होते हैं।

विशेष—प्रस्तुत कविता में कवि के विचार स्पष्ट है और भाषा भी अत्यन्त सरल है।

२५—तप

शब्दार्थ—अकलुष=निष्पाप। विधुर=वियोगी, पीड़ित। सजल=पानीदार, ज्योतिवान। अरूप=रूप हीन।

भावार्थ—कवि मन से कहता है कि तू संसार की पीड़ा में सदैव प्रसन्नता

से तपा कर। संसार की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझ और उससे निस्तार का मार्ग खोज। जिन्दगी की आग में जलकर तू पवित्र, कोमल और ज्योतिवान बन जा।

अपने प्रभावान सोने से जीवन की पूर्ण एवं दिव्य मूर्ति का निर्माण कर। संसार में सबसे प्रेम कर और अपनत्व की भावना को जगा। हे व्याकुल मन तू शीघ्र ही ढल कर उक्त दिव्य मूर्ति का निर्माण कर। केवल दिखाने मात्र से काम नहीं चल सकता। आज तो हृदय—परिवर्तन की आवश्यकता है।

उपरोक्ति पक्तियों में अप्रतुस्त पक्ष 'स्वर्ण' शब्द से व्यंजित होता है। पहले सोने को आग में जला कर शुद्ध किया जाता है। उसमें चमक आ जाती है। फिर उससे सुन्दर मूर्ति के रूप में ढाल दिया जाता है।

संसार से स्नेह और करुणा के बन्धन में बँध जाना ही तेरी मुक्ति है। स्वार्थ-सम्बन्धों से ऊपर उठ। और इस प्रकार तू निगु ण से सगुण बन जा। अभी तक तू ने अपनी शक्तियों को भुला रखा है। अब तू अपनी प्रतिभा को जाग्रत कर और मूर्तिवान बन जा। हे कठोर मन! अब तो तू संसार की पीड़ा देखकर दयार्द्र हो जा।

"निज अरूप" मिट्टी या पत्थर आदि का कोई अपना रूप नहीं होता। किन्तु जब उनकी मूर्तियाँ बना ली जाती हैं तो उनमें मूल्य, आकर्षण और कला जगमगा उठती है।

विशेष—कवि के अनुसार विश्व से पराङ्मुख होकर आत्मा में लीन हो जाना मुक्ति नहीं है वरन् अपने आप को इस लोक केबीच रख कर उससे अपनत्व जगाना, और स्वार्थ को भुला देना ही मुक्ति है।

२६—उर की डाली

देखुँ ... क्या दुराव।

भावार्थ—कवि सबके हृदय रूपी डाली को देखने की इच्छा करता है। वह जानना चाहता है कि कलियों, कोंपलों फूलों और काँटों से युक्त इस अनंत संसार रूपी उद्यान से किसमें क्या चुना है। किसे कौनसी शोभा पसंद है, कौन से सुगन्धि रूपी मधुर भावों की कामना है, किस रंग रस आदि को ग्रहण करने की इच्छा है। कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि को कवि से छिपाकर करेगा

भी क्या ? और फिर कवि तो क्रान्तदर्शी और द्रष्टा होता है।

"किसने ली   भूल।"

शब्दार्थ—पिक=कोयल।

भावार्थ—किसने कोयल के विरह के गीत ग्रहण किए हैं ? किसने भंवरे के मिलन के गीत को ग्रहण किया है ? किसने खिले पुष्प चुने हैं और किसने मुरझाए हुए फूल ? किसी के जीवन में सुखद संयोग है और किसी के जीवन में व्यथित वियोग।

अब कवि ने सबका हृदय देख लिया है और वह अपना निष्कर्ष देता है। सभी मनुष्यों के हृदय में जहाँ सुख के नवल फूल हँस रहे हैं, वहाँ उन्हें दुख के तेज काँटे भी साल रहे हैं। कोई भी ऐसा नहीं है जिसने सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर ली हो।

विशेष—विचार तत्व की दृष्टि से यह गीत अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संसार में सुख-दुख हास-अश्रु सभी कुछ है। मनुष्यों की रुचियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। किन्तु सुख और दुख दोनों ही मानव जीवन के सनातन साथी हैं।

२७—एक तारा

नीरव   आर-पार।

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। खग कूजन=पक्षियों का संगीत। धुसर भुजंग= मटमैला सर्प। जिह्म=टेढ़ा। क्षीण = पतला।

भावार्थ—संध्या का समय है। सारे गाँव में सर्वत्र शान्ति फैली हुई है। जिस प्रकार वीणा के तारों में स्वर लय हो जाते हैं, उसी प्रकार पत्र रूपी होठों में समस्त वन की मर्मर ध्वनि लीन हो गई है। पक्षियों का संगीत भी अब बंद होता जा रहा है। गोपथ पर अब कोई भी नहीं चल रहा है। गायों के चलने से जो रेत उड़ी थी वह भी अब विलीन हो गई है। गांव का वह मार्ग मटमैले सर्प के समान वक्र और पतला है। इस शान्त वातावरण को केवल झींगुर की झनकार का बाण बेध रहा है। इससे उस शान्त वातावरण में गंभीरता बिखर गई है। झींगुर की झनकार उस विराट ब्रह्म के हृदय में सृष्टि को उत्पन्न करने की कामना के समान उदित हो रही हो। ब्रह्म की इच्छा के फल स्वरूप

ही सृष्टि का उदय होता है। कविता के अन्त में कवि एक से अनेक की उत्पत्ति दिखाता है।

कविता को पृष्ठ भूमि के रूप में संध्या-प्रकृति का यह वर्णन अत्यन्त मनोहर और गम्भीर हुआ है। सुन्दर तथा नवीन उपमाएँ हैं।

अब हुआ .... श्यामल।

शब्दार्थ सान्ध्य-स्वर्णाभ=संध्या की सुनहली ज्योति। लीन=छिपना। रक्तोत्पल=लाल कमल, सूर्य। स्वर्ण-विहग=सुनहला पक्षी, सूर्य। गुहा-नीड़=गुफा रूपी घोंसला।

भावार्थ—अब संध्या का सुनहला प्रकाश भी छिप गया। सर्वत्र अन्धकार छा गया। सारी दृश्य वस्तुएँ अन्धकार में डूब गई। संध्या के समय गंगा के चंचल जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। अब किरणों वाला वह लाल कमल-सूर्य-अपनी किरणों को समेट ले गया है। उधर संध्या के समय कमल भी संपुटित होते हैं। जिस प्रकार तेज सर्दी के कारण लाल ओष्ठ नीले पड़ जाते हैं उसी प्रकार लहरों का लाल प्रकाश अब विलीन हो गया है, और उन पर कालिमा छा गई है। सूर्य जब डूबता होता है तो उसकी अन्तिम किरणें वृक्षों के ऊपर ही पड़ती है। कवि इसी तथ्य को अत्यन्त मार्मिक ढङ्ग से प्रस्तुत करता है। वृक्षों पर बैठा हुआ वह सुनहला पक्षी अपने सुन्दर पंखों को खोल कर किस मार्ग से किस गुफा रूपी घोंसले में जा छिपा है? संध्या के समय पक्षी उड़-उड़कर अपने घोंसलों में चले जाते हैं। सूर्य पर्वत के पीछे छिपता है इसलिए उसके लिए 'गुहा-नीड़' कहा। अब सारे वन में नीला, कोमल अन्धकार छा गया है जो जगती के लिये न जाने कितने मीठे-मीठे स्वप्न भर कर लाया है।

यहाँ प्रकृति वर्णन समाप्त कर, कवि तारे का वर्णन करता है।

पश्चिम नभ .... इच्छा से निर्धन।

शब्दार्थ—अकलुष=पावन। अनिन्द्य=वन्द्य। अमर-टेक = अमर इच्छा, अमरत्व प्राप्ति की इच्छा। रजत-सीप=चाँदी की सीप। अपनापन=आत्मज्ञान।

भावार्थ—कवि कहता है कि पश्चिम दिशा में मैं एक शुभ, ज्योतित नक्षत्र को देख रहा हूँ। वह पवित्र है, प्रशंसनीय है। वह ऐसा दिखाई देता है

मानो स्वयं विवेक ही मूर्ति धारण करके चमक रहा हो। 'ज्योतित विवेक' के द्वारा ज्ञान की आग से चमकते हुए योगी की ओर संकेत है। जिस प्रकार एक योगी के हृदय में अमरत्व प्राप्ति की कामना होती है, उसी प्रकार उस नक्षत्र के मन में शाश्वत पद प्राप्त करने की इच्छा दिखाई देती है। नक्षत्र स्वर्ण-दीप के समान चमक रहा है। दीपक से भक्त भगवान की आरती करता है और काम्य वस्तु प्राप्त करता है। किन्तु वह तारा किस इच्छा का सुनहला दीपक लिए है? और फिर वह उससे किस की आराधना कर रहा है? चांदनी से धुले उस आकाश पर वह तारा इस प्रकार दिखाई देता है जैसे चांदी की सीप में मोती चमक रहा हो। योगी अपलक नेत्रों से चिन्तन किया करता है और यह चिन्तन ही उसकी निधि होता है। कवि जिज्ञासा करता है कि क्या उस नक्षत्र के अपलक नयनों का चिन्तन ही उसकी आत्मा की निधि है? क्या वह योगी के समान ही आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है? किन्तु आत्मज्ञान तो अप्राप्य है। जब आत्मज्ञान-प्राप्ति की कामना पूर्ण नहीं होती, तब सारा संसार सूना और निराशा में डूबा दिखाई देता है। मनुष्य की इच्छाएं सदैव अपूर्ण रहती हैं। इसीलिए तो यह संसार दरिद्र है। उत्प्रेक्षा और उपमा।

इस छन्द में कवि ने एकाकी तारे को योगी के समान प्रदर्शित किया है। इच्छा ही मनुष्य को आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति से वञ्चित रखती है। आगे के छन्द में कवि बताता है कि अपनापन अलभ्य है क्योंकि वासना का बंधन तोड़ा नहीं जा सकता।

आकाँक्षा का ... रे न पर!

शब्दार्थ—उच्छ्वसित = प्रखर। अहरह=निरन्तर। दुस्तर=दृढ़। उडु = नक्षत्र।

भावार्थ—जब हृदय में कामना लहराती है तो विवेक के बन्धन टूक-टूक होकर गिर पड़ते हैं। मनुष्य ही नहीं अचिर जग भी इच्छा के कारण ही तो नाच रहा है। सागर भी तो निरन्तर इच्छा के कारण ही उमड़ा करता है। विशाल लहरें उठ उठ कर आपस में टकराया करती हैं। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों का समूह—ये सभी तो इच्छा में बंधे हुए निरन्तर घूमा करते हैं। सच

मुक्त कामना के बंधन को तोड़ना असंभव है। कवि को वह नक्षत्र भी इच्छा में जलता हुआ दिखाई देता है। एकान्त जीवन से व्यथित दिखाई देता है। वह कहता है 'ऐ नक्षत्र क्या तेरे प्राणों में भी इच्छा की जलन हो रही है? क्या तेरे नेत्र भी मौन होकर आंसू बहा रहे हैं? 'एकान्त जीवन तो व्यर्थ है, असफल है। एकान्त जीवन की पीड़ा असह्य है। उसका कोई अन्त नहीं।

यहां कवि ने आकांक्षा का विश्वव्यापी प्रभाव दिखलाया है। साधना में विघ्न आते हैं। दृढ़ साधक फिर भी आगे बढ़ता है। नक्षत्र अपनी साधना से एक बार विचलित हुआ। फिर सँभला। और उसने आत्मदर्शन प्राप्त कर ही लिया।

चिर अविचल पर ... सम।

शब्दार्थ—अविचल=अविचलित। छन्द-बन्ध=बन्धन। मीन=मछली। असंग=निष्काम। बुद्ध=विवेकी। सम=स्थितप्रज्ञ।

भावार्थ—वह तारा अविचलित रहता है। किन्तु उसकी ज्योति अत्यन्त प्रखर है। वह सभी बंधनों से परे है। जिस प्रकार सागर में मच्छली निर्बाध घूमती है उसी प्रकार वह अनन्त आकाश में स्वच्छन्दता के साथ घूमता है। वह निष्काम होकर अपने आत्म-सुख में लीन है। उसका स्वरूप चिर-नवीन है। वह अचल दीप की शिखा के समान अनन्य स्वरूप वाला है और संसार के अन्धकार को दूर कर रहा है। दीपक अन्धकार को दूर कर देता है। मुक्त पुरुष साँसारिक अज्ञान की जंजीरें काट डालता है। वह शुद्ध है, चेतन है, उसने सामरस्य की अवस्था को प्राप्त कर लिया है। वह शुक्र तारा है।

इस छन्द में शुक्र तारे के साथ-साथ मुक्त पुरुष का भी चित्रण किया है जो अपने आपको अनन्त ब्रह्म में विलीन कर देता है। सभी बन्धनों तथा विघ्नों से परे है। अज्ञान से दूर है। और जिसकी बुद्धि स्थित होगई है।

गुञ्जित अलि सा ... जग-दर्शन।

शब्दार्थ—अलि=भ्रमर।

भावार्थ—अब मन्द-मन्द वायु चलने लगी है। धीमा-धीमा नाद होने लगा है। स्तब्ध आकाश भ्रमर के समान गुञ्जार करने लगा है। अब घना अन्धकार भी आकर्षण से पूर्ण दिखाई देता है। एकान्त जीवन का दुख दूर

होगया है। एकाएक आकाश में सर्वत्र कुन्द कलियों के समान शुभ्र तारे चमकने लगे। अकेला शुक्र ब्रह्म है। अनेक तारों का प्रकट होना संसार का प्रकाश में आना ही है।"

भ्रमर की गुञ्जार से अनहद् नाद की ओर संकेत है। जब ज्ञान हो जाता है तो यह दुःखमय संसार भी ब्रह्म-स्वरूप दिखाई देने लगता है।

यह कविता अद्वैत-दर्शन से प्रभावित है।

"वह आत्मा और यह जग-दर्शन" कह कर कवि इस कविता को अन्योक्ति का रूप दे देता है।

२८—नौका-विहार

"शान्त . मृदुल लहर।"

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चांदनी। अपलक अनन्त=आकाश मेघावरण से हीन है। सैकत-शय्या=रेत की शय्या। दुग्ध-धवल=दूध के समान सफेद। तन्वंगी=कृशांगी। विरल=निर्बल। क्लान्त=व्यथित। करतल=हथेली। तार-तरल=ताराओं से सुशोभित। विभा=प्रकाश। वर्तुल=गोल।

भावार्थ—चाँदनी रात है। सर्वत्र शान्ति छायी हुई है। आकाश मेघों से रहित है। संसार मौन है। गर्मी के कारण दुर्बल, थकी हुई और व्यथित, दूध के समान सफेद गंगा रेत की शय्या पर लेटी हुई है। वह गंगा तपस्वी की बालिका के समान पावन है। गंगा में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा ही उसका मुख है। उसके हाथ मुख की आभा से कान्तिमान हो रहे हैं। उसके वक्षस्थल पर लहरों के रूप में कोमल बाल बिखरे हुए हैं। उसके गोरे शरीर पर तारों से खचित नीले आकाश का नीला वस्त्र है। गंगा में गोल-गोल लहरें उठ रही हैं। उनमें चाँदनी का प्रकाश पुञ्जीभूत होकर उन्हें साड़ी की सिकुड़न सा रूप दे रहा है।

"शशिमुख से" प्रायः स्त्रियाँ अपने मुख पर हाथ रखकर बैठा करती हैं। "चाँदनी"; कविता में भी कवि ने उसे इसी रूप में चित्रित किया है। इस छन्द में पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण है। गंगा का मानवीकरण है।

चाँदनी रात सघन।

शब्दार्थ—सत्वर = शीघ्र। सस्मित=हँसती हुई, चमकदार। रत-पुलिन=

चाँदी के किनारे। निर्भर=पूर्ण। प्रमन=प्रमुदित।

भावार्थ—चाँदनी रात के प्रथम-पहर में हम शीघ्र ही नौका लेकर चल दिए। चमकती हुई रेत रूपी सीपी में चांदनी का मोती सुशोभित था। हमने नाव की पालें चढ़ालीं और लंगर उठा दिया। हमारी नौका पाल रूपी परों को खोल कर सुन्दर हँसिनी के समान धीरे-धीरे तैरने लगी। शान्त जल के स्वच्छ जल में किनारे पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित होकर एक क्षण भर के लिए दुहरे ऊँचे दिखाई देने लगते थे। किन्तु दूसरे ही क्षण जल चञ्चल हो उठता था और किनारों के प्रतिबिम्ब के डाँवाडोल होने से किनारों की वास्तविक ऊंचाई दिखाई देने लगती थी। कलाकांकर का राजमहल जल में निश्चिन्त होकर सो रहा था और उसके नेत्रों में ऐश्वर्यशाली स्वप्न सज रहे थे। कालाकाँकर के मानवीकरण द्वारा कवि ने उस महल के रहने वालों का चित्र खींचा है।

"निश्चल जल के—" में कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है।

नौका से **रुक-रुक।**

शब्दार्थ—विस्फारित = नेत्रों को फाड़े हुए। अविरल=निरंतर। रुपहरे कचों = चाँदी से बालों में। तिर्यक् मुख=टेढ़ा मुख-मुख का एक भाग।

भावार्थ—नाव के चलने से गंगा में लहर उठती थी। उसमें प्रतिबिम्बित सम्पूर्ण आकाश हिल उठता था। तारों का समूह जल के भीतर प्रकाश करके नेत्र फाड़-फाड़ कर कुछ खोज रहा था। चपल लहरें तारे रूपी दीपों को अपने आँचल में छिपाकर इधर-उधर फिर रही थीं। जब कोई नाविका दीप लेकर चलती है, तो दीपक को बुझने से बचाने के लिए वह उन्हें दुपट्टे की ओट में कर लेती है। सामने ही शुक्र की शोभा जल में प्रतिबिम्बित होकर परी के समान तैर रही थी। बार-बार उसकी काँति चांदी के बालों सी लहरों में छिप जाती थी। जब गंगा में लहरें उठती थीं तो कभी दशमी का तिरछा चांद प्रकट हो जाता था और कभी उनमें छिप जाता था। कवि वर्णन करता है कि दशमी का तिरछा चन्द्रमा मुग्धा नायिका के समान बार-बार रुककर लहरों का घुंघट तनिक हटा अपना मुख दिखला जाता था। सर्वत्र मानवीकरण की

शोभा दर्शनीय है ।

अब पहुँची कोकी को विलोक ।

शब्दार्थ—चपला=चंचल नौका । कगार=किनारा । अराल=तिरछी । ऊर्मिल=लहरों से युक्त ।

भावार्थ—अब वह चंचल नाव नदी के बीच जा पहुँची । चाँदी सा चमकने वाला किनारा छिप गया । दूर देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो दो बाँहों के समान दोनों किनारे धारा के कोमल शरीर को आलिङ्गन-पाश में बाँध लेने के लिए विकल दिखाई देते हैं । स्वच्छ आकाश विशाल नीले नेत्र के समान था और क्षितिज पर दिखाई देने वाली वृक्षावली उसकी टेढ़ी भौंह के समान दीख रही थी । जिस प्रकार माँ के हृदय पर बच्चा सोता है, उसी प्रकार पास ही गंगा में एक द्वीप दिखाई दे रहा था । गंगा की लहरें उससे टकरा-टकराकर लौट रही थीं । इतने में कोई पक्षी उड़ता है । कवि पक्षी से अत्यन्त नाटकीय ढङ्ग से पूछ उठता है—वह कौन पक्षी उड़ा ? क्या कोक कोकी की छाया देखकर अपने विरह के दुख को दूर करने के लिए उससे मिलने को उड़ रहा है ?

"पतवार घूमा सहोत्साह ।"

शब्दार्थ—प्रतनु-भार=हल्की । स्फार=तीन ।

भावार्थ—अब पतवार घुमा दिया और हल्की नाव धारा के विपरीत चलने लगी । नौका डाँड रूपी चंचल हाथों को फैलाकर भाग के मोतियों को मोती के हार के समान बिखराती हुई चलरही थी । जैसे कोई बालिका अपनी चंचलता में मोतियों के हार को तोड़कर मोती बिखेर दे । पतली रेखाओं के समान खिंची हुई चंचल लहरें चाँदी से साँपों के समान नाच रही थीं । उस फेनिल जल की लहर रूपी लताओं में शत-शत चन्द्रमा और तारे फूलों के समान खिल-खिल कर बिखर रहे हैं । अब नदी की गहराई कम हो गई इसलिए हम लग्गी से थाह ले-लेकर धीरे-धीरे घाट की ओर बढ़े ।

ज्यों-ज्यों अमरत्व दान ।

शब्दार्थ—शश्वत्=सनातन । आस्तित्व-ज्ञान=आत्मज्ञान । जीवन=जीवन, जल--श्लेष ।

भावार्थ—जैसे-जैसे नौका घाट की ओर बढ़ने लगी हृदय में अनेक विचार उठने लगे। संसार की गति भी इस धारा के समान ही है। जिस प्रकार जल का उद्‌गम अमर है, उसका प्रवाह नित्य रहता है और सदैव उसका सागर से मिलन होता है उसी प्रकार जीवन भी निरन्तर उदित होता है, गतिमान रहता है और फिर विराट पुरुष में विलीन हो जाता है। आकाश की नीलिका सनातन है, चाँदनी का बिखरना सनातन है और लहरों की क्रीड़ा सनातन है। हे संसार के संरक्षक! जन्म और मरण रूपी दोनों किनारों के बीच जीवन रूपी नौका का विहार सनातन है। मैं अपनी वास्तविक सत्ता को भूल गया था। जल की यह सनातन लीला मुझे भी अमरता प्रदान करती है—इस ओर संकेत करती है कि मैं भी अक्षय हूँ।

प्रकृति से सन्देश ग्रहण करने की परम्परा प्राचीन है। अन्तिम छन्द में वही दृष्टिगत होती है।

२९—चांदनी

नीले नभ पर जग जीवन।

शब्दार्थ—अनिमिष=अपलक। जीवन=जीवन, जल—श्लेष।

भावार्थ—आकाश रूपी कमल पर शरद् ऋतु की हँसती हुई चाँदनी सुशोभित है। उसने किरण रूपी कोमल हाथों पर चन्द्रमा रूपी मुख रखा हुआ है। वह अकेली, चुपचाप और अपलक बैठी हुई है।

उसकी स्थिर दृष्टि चराचर को मोहित कर लेती है। उसकी नीली चंचल दृष्टि मानस में शत-शत भाव तरंगित कर देती है। खिली चाँदनी में सागर में ज्वार-भाटा आने लगता है। यहाँ कवि मानवी रूप में इतना खो गया है कि चाँदनी का चित्रण धूमिल पड़ गया है।

"वह फूली उर स्पन्दन।

शब्दार्थ—कुड्मल = कली।

भावार्थ—चाँदनी फूली हुई बेला का ऐसा वन है जिसमें न दण्डी है, न पत्ते और न कलियाँ। उसमें तो केवल शुभ्र कान्ति है जिसमें दसों दिशाएँ डूब गई हैं।

वह नदी के किनारों पर सोई हुई है। सोते समय सांस की गति मन्द पड़

जाती है। उधर वायु बन्द है। नदी की लहरें ही चाँदनी रूपी सोई हुई नायिका के हृदय का कम्पन है।

अपनी छाया में ... भर कर।

शब्दार्थ—निभृत=एकान्त।

भावार्थ—जिस प्रकार कोई सुन्दरी अपनी शोभा में छिपी सी पर्वत की चोटी पर खड़ी हो जाए और उसकी अपार कान्ति सागर की लहरों में अनेक रूपों में फरफुटित हो, उसी प्रकार अपनी ज्योति में छिपा हुआ चाँद पर्वत की चोटी के ऊपर विद्यमान है और नीचे सागर की लहरों में उसकी दीप्ति के अनेक चित्र बन रहे हैं।

दुल्हिन रात्रि के समय एकान्त शय्या पर पति के साथ सोने को जाती है वह शोभा से वेष्ठित होती है और लज्जा के भार से दबी होती है। इसी प्रकार दिन की ज्योति चाँदनी रूपी दुल्हिन बन कर रात्रि में एकान्त कोमल शय्या पर आई है। किन्तु वह लजा में डूबी है। यहाँ मानवी रूप अपेक्षतः अधिक निर्दिष्ट एवं स्पष्ट है।

"जग के ... जीवन-गुंजन कल।"

शब्दार्थ—मुकुल=कली। परिमल=सुगन्धि। द्युति-पत्त = प्रभा रूपी पत्ते अलि=भ्रमर।

भावार्थ—चाँदनी धुँधले स्वप्नों के हार गूँथा करती है। रात में मनुष्य अस्फुट स्वप्न देखा करता है। उसका आँचल करुणा के आँसू से सदैव भीगा रहता है। निरन्तर ओस गिरा करती है। इस छन्द में चाँदनी को वियोगिनी नायिका के समान दिखाया है जो कल्पना में नव-नव मिलन के दृश्य सँजोया करती है और वियोगाश्रुओं से जिसका अंचल सदैव भीगा रहता है। चित्र सुकुमार एवं मार्मिक है।

चाँदनी कोमल कलियों को चूमकर उनमें ओस के मोती जड़ देती है। उसके लहर रूपी चंचल हाथों में चाँदी से चमकते हुए चपल तारागण सुशोभित हैं।

वह सुगन्धि का एक छोटा बादल है जो निरन्तर वायु में लीन रहता है। वह सुख के उद्वेलित समुद्र के समान है जिसमें हृदय रूपी किनारे डूब जाते हैं

चाँदनी के खिलने पर हृदय में सुख की अनुभूति होती है और सागर तरंगित हो उठता है।

चाँदनी अलसाई हुई कमल की कली के समान है। दिन की काँति रूपी पत्ते सम्पुटित हो गए हैं। उसके हृदय में संसार रूपी भ्रमर सो रहा है, अतः उसकी गुंजार मौन है। रात्रि के समय कमल-दल बन्द हो जाते हैं। उसमें भ्रमर सो रहता है और उसकी मधुर गुंजार भी शान्त हो जाती है।

"वह नभ के साश्रु-नयन क्षण।"

शब्दार्थ– गोपन सम्भाषण=गुप्त वार्तालाप। संसृति=सृष्टि। अस्पृश्य=जो छुई न जा सके।

भावार्थ—वह आकाश के प्रेम भरे कानों में एक गुप्त बात के समान है प्रेमी प्रेमिका आँखों ही आँखों में एक दूसरे के प्रति अपना सब कुछ समर्पण कर देते हैं। यह चन्द्रिका उन प्रेमियों का मूक समर्पण है। यह वर्णन दुरूह एवं प्रभावहीन है। कवि केवल चाँदनी की अदृश्यता एवं नीरवता का गुण प्रदर्शित करना चाहता है।

वह आकाश की विशाल हथेली पर सृजन की एक बूँद है जिसके अभिव्यक्त होने पर सारा विश्व उसमें डूब जाता है। 'चन्द्रमा' ही आकाश रूपी हथेली पर सृजन की एक बूंद है। चाँदनी उसकी असीम सुषमा है।

रात्रि के समय जीवन का कोलाहल धीरे-धीरे विलीन हो जाता है। चाँदनी चाहे अज्ञात है किन्तु शेष बची रहती है। वह शब्दहीन पवित्र आशय के समान है। बिना बोले ही मनुष्य के मन के भाव मुख पर ज्योतित हो उठते हैं। कवि केवल चाँदनी की नीरवता का वर्णन करना चाहता है।

वियोगिनी नायिका चुपचाप, स्थिर पलकों से अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती रहती है। यह चाँदनी वियोगिनी की प्रतीक्षा के समान है। चाँदनी ऐसी ज्योति है जो अदृश्य एवं अस्पृश्य है। वह जीवन की उस अवस्था के समान है जिसमें मनुष्य चुपचाप आंसू बहाता है। चांदनी नीरव है और ओस के आँसू गिरा रही है।

वह शशि किरणों से जीवाशय।"

शब्दार्थ—शुचि=पवित्र।

भावार्थ—कवि कहता है कि वह चाँदनी चुपके से चांद की किरणों का सहारा लेकर मेरे आँगन में उतरी। अपनी शोभा में आलोकित वह चाँदनी मेरे हृदय में लीन हो गई। एक प्रकाश में दूसरा प्रकाश लय हो जाता है।

वह मेरे नेत्रों के सामने बिखरी थी। सभी वस्तुओं के रूप और रंग छिप गए। वह मेरे हृदय की पावन अनुभूति के समान ही शान्त, निर्मल एवं शुभ है। प्रथम दो पक्तियों में उस अवस्था की छाया दिखाई देती है जिसमें प्रेमी प्रेमिका को देखकर सब कुछ भूल जाता है।

वह है क्योंकि हम वस्तुओं को आलोकित देखते हैं। किन्तु शून्य में देखने पर वह कुछ भी नहीं दिखाई देतीं। इसलिए वह अनिर्वचनीय है। संसार उसमें डूबा है। वह संसार में बिखरी है। वह साकार चेतना के समान है। किन्तु जीव इस समय सुषुप्तावस्था में अचेत है। अन्तिम छन्द में कवि अद्वैत के स्वरों में ब्रह्म का वर्णन करता सा प्रतीत होता है। वह ब्रह्म है भी क्योंकि यदि वह न हो तो सब शून्य हो जाय। किन्तु वह इस रूप में नहीं है जैसे अन्य वस्तुएँ हैं। अतः वह नहीं है। ब्रह्म अवाङ् मनसगोचर है। बह संसार का सत्य आधार है। संसार की सत्ता उसी की सत्ता है। उसमें जीव की इच्छाओं और आशयों का संहार हो जाता है।

विशेष—पंत जी कभी कभी बिशेष रूप से प्रकृति-चित्रण में केवल हल्के सादृश्य के आधार पर ही विस्तृत चित्र खड़े कर देते हैं। ऐसे चित्र प्रभावहीन एवं दुरूह हो जाते हैं। इन में कवि की प्रखर कल्पना के दर्शन तो होते हैं, किन्तु भाव-तत्व का अभाव रहता है। अर्थ की धूमिलता का दूसरा कारण है प्रस्तुत प्रकृति वर्णा की उपेक्षा कर अप्रस्तुत मानवी स्वरूप के स्पष्टीकरण का सूक्ष्म प्रयत्न। प्रस्तुत कविता में 'वह नभ के—" "झंकार विश्व-जीवन की···· "वह एक अनन्त प्रतीक्षा···" आदि छन्दों का धुँधलापन प्रथम कारण से है, और "वह स्वप्न—जड़ित नत चितवन—" की अस्पष्टता दूसरे कारण से।

३०—पतझर

"द्रुत झरो हो विलीन।"

शब्दार्थ—स्रस्त-ध्वस्त=नष्ट-भ्रष्ट। जीर्ण=फटे हुए। मधुवात=बसन्त की वायु। बीत-राग=सार रहित। च्युत=गिरे हुए।

भावार्थ—कवि कहता है कि हे जगत के पुराने पत्तो! तुम शीघ्र झड़ जाओ। तुम सड़-गल गए हो, तुम सूख गए और निस्सार हो गए हो। तुम बर्फ तथा गर्मी के कारण पीले पड़ गए हो! बसन्त की वायु से तुम्हें गिरने का भय लगा रहता है। तुम्हारा सौन्दर्य उड़ चुका है। तुम पुराने हो गए हो।

यह छन्द एक अन्योक्ति का सुन्दर उदाहरण है। रूढ़ि ही पुराना पत्ता है युग की चाल के कारण सुन्दर संस्कार ही रूढ़ियाँ बन जाते हैं। नवीन विचारों से उन्हें नाश का भय होता है।

पुराना जड़ युग अब मरे हुए पक्षी के समान है। इसीलिए संसार रूपी घोंसला कलरव और श्वासों से हीन है। संसार में हर्ष और उत्साह का वेग नहीं है। जिस प्रकार मरे हुए पक्षी के गिरे हुए पंख धीरे-धीरे झर कर मिट्टी में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी लय हो जाओ।

"कङ्काल जाल प्याली।

शब्दार्थ—मञ्जरित=मञ्जरियों से पूर्ण वसंत, संसार का ऐश्वर्य। पिक=कोयल।

भावार्थ—जब पुराने सड़े पत्ते झर जाएंगे तब सूखे वृक्षों की डालियों में बसन्त के आने पर नए-नए लाल पल्लव फूट पड़ेंगे। जब रूढ़ियां नष्ट हो जाएँगी तब संसार में नवीन शक्ति का संचार होगा। पुराने पक्षी मर जाएंगे नए पक्षी आएँगे और हरे भरे उपवनों को कलरव से गुञ्जित कर देंगे। जब मनुष्य रूढ़ियों से मुक्त हो जाएगा, तब उसके प्राणों में नया जोश और नया जीवन लहलहा उठेगा।

बसन्त के आने पर आम मञ्जरियों से लद जाएँगे। कोयल अपने मादक संगीत से प्रेम का नया संदेश देगी। जब संसार फिर से प्रगति की ओर अग्रसर होगा, तो चेतना रूपी कोयल अपनी मादक, प्रेम भरे संगीत की मदिरा से नवीन युग की प्याली को भर देगी। उनमें नवीन स्फूर्ति लहलहा उठेगी।

विशेष—प्रगति का पहला कदम है पुराने कुसंस्कारों से मुक्त होना। कवि अब प्रगति पथ पर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है।

पतझर के बाद कवि "वसन्त" का दृश्य प्रस्तुत करता है।

३१—बसन्त

"चंचल पग   प्रवाह ।"

शब्दार्थ—सुलगा फाल्गुन का······=एक दीपक से अनेक दीपक जलाए जाते हैं। उसी प्रकार बसन्त ने दीप-शिखा के चरणों से फाल्गुन के सूने पन को अनन्त सौन्दर्य की असंख्य दीपशिखाओं के रूप में प्रदीप्त कर दिया है।

सौरभ की शीतल ज्वाला=सुगन्धित पवन शीतल होता है किन्तु वियोगियों के हृदय में दाह भर देता है। सभी के हृदय में कामाग्नि जगा देता है।

भावार्थ—फाल्गुन के सूनेपन को अपार मधुरिमा के रूप में प्रज्वलित करके दीप-शिखा के चरणों को धरता हुआ बसन्त घरों में, मार्गों में तथा वनों में सर्वत्र ही फैल गया है। बसन्त का मानवीकरण है।

सुगन्धित एवं शीतल वायु बहने लगी। उसने सब के प्राणों में कामाग्नि का संचार कर दिया। वसुन्धरा को सुषमा में बोरता हुआ बसन्त आ गया है।

"पल्लव   स्नेह प्राण ।"

शब्दार्थ—माँसल=स्वस्थ, नवीन। प्रणय-गान=प्रेम का गीत।

भावार्थ—बसन्त के आने पर नए-नए रक्तिम कोंपल फूटने लगे। पत्तों में नवीन हरियाली बिखर गई। विविध वर्ण के पुष्प रूपी नीले-पीले दीपक ज्योतिमान हो उठे। अधरों जैसी लालिमा गुलाबों में खिल उठी। पुष्पों के दल काले और पीले धब्बों से अलंकृत हो उठे।

"अधरों की······" समासोक्ति द्वारा नायक के चुम्बन की ओर भी संकेत है जिसे पाकर नायिका के कपोल गुलाब सी लालिमा में डूब जाते हैं।

बसन्त के आगमन पर चराचर प्रेम से व्याकुल हो उठे। कलिका भ्रमरों से मधुर संयोग के स्वप्न देखने लगी। भ्रमर ने प्रेम-गीत गुंजारना आरम्भ कर दिया। समासोक्ति के द्वारा यहाँ भी नायिका और नायक की मनोदशाओं का चित्रण है।

"काली कोकिल   आया बसन्त ।"

भावार्थ—बसन्त के आने पर उसकी दूती कोयल दशों दिशाओं में घोषित कर देती है कि बसन्त आ गया। कोयल के स्वरों में वियोगियों को दग्ध करने

की शक्ति है। उसकी तान उनके हृदय में वेदना की ज्वाला उत्पन्न कर देती है

कवि पिया से सम्बोधन करके कहता है कि बसन्त काल की सुषमा की यह अनेकरूपता तथा कोकिल आदि का मद्भरा संगीत, हृदय में जिस प्रेम को जाग्रत करते हैं, उसी की छाया स्वरूप यह बसन्त आया है।

विशेष—"पतझर" कविता के बाद ही कवि ने 'बसन्त' कविता रखी है। और 'पतझर' अन्योक्ति है, इसलिए कई लोग 'बसन्त' कविताको भी अन्योक्ति मानना चाहेंगे। किन्तु कविता में उसका अन्योक्ति स्वरूप कहीं भी भासित नहीं होता। इसे केवल प्रकृति-चित्रण के उद्दीपक रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है।

३२—सृष्टि

"मिट्टी का ... सागर अपार।"

शब्दार्थ—स्कन्ध=तना।

भावार्थ—मिट्टी के नीचे, अन्धकार में सरसों और कोदों के दाने से भी क्षुद्र एक बीज छिपा है। किन्तु न तो वह उस अन्धकार में खो जाता है और न ही वह मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो जाता है। वरन्

उस छोटे से बीज में पत्ते, डालियाँ, तना और जड़ आदि छिपे हुए हैं। उसमें हरियाली का पूरा एक संसार छिपा है। उसमें अनेक रूप, रंग और फल-फूल छिपे हैं।

उसने अपने भीतर बड़ के वृक्ष सा विशाल आकार छिपा रखा है। उसमें एक संसार छिपा है, एक आश्चर्य छिपा है। वह बीज सचमुच एक बूँद में अनन्त सागर को भरे है।

बन्दी उसमें ... तुच्छ चीज।

शब्दार्थ—सत्व = सत्ता। पोत=घर।

भावार्थ—जिस प्रकार एक बीज से बिराट वृक्ष का जन्म होता है, उसी प्रकार अव्यक्त ब्रह्म से ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। कवि कहता है कि कोई भी सृजन की गुत्थी को न सुलझा सका। वह जो बीज रूपी क्षुद्र स्थल है, उसमें अनन्त का वास है और वह जीवन-शक्ति से भरा हुआ है।

मिट्टी के नीचे अन्धकार में एक बीज सोया हुआ है। किन्तु उस बीज का

प्रकाश उसके भीतर ही है, उसे बाहर के अन्धकार से कोई डर नहीं है। वह छोटी सी चीज ही अमर वस्तु है।

विशेष—बीज से वृक्ष की उत्पत्ति के वर्णन में कवि ने सांकेतिक ढङ्ग से अव्यक्त ब्रह्म से संसार की उत्पत्ति की ओर रहस्यात्मक संकेत किया है।

३३—कलरव

"बाँसों का झुरमुट ... सने।"

शब्दार्थ—झुटपुट=धुँधलापन। श्रम-जर्जर=परिश्रम के कारण निर्बल।

भावार्थ—संध्या की धुँधली छाया में बाँसों के समूह में चिड़ियाँ टी-वी-टी-टुट्-टुट् गा रही हैं। वे चिड़ियाँ अपने हृदय के मधुर स्वप्नों को प्रेम और वेदना के गीतों में भर-भर कर परिश्रम से क्लान्त-व्यथित चराचर पर बिखरा रही हैं।

"ये नाप रहे ... साथ पला।"

शब्दार्थ—व्यजन = पंखा।

भावार्थ—ये मजदूर थके होने के कारण डगमगाते चरणों को धरते हुए घर की ओर चले जा रहे हैं। इनका जीवन दुःखों से लदा हुआ है। उनके पाँव थकावट के कारण भारी हैं। कवि दयालु पक्षियों से कहता है कि तुम गीत गा-गाकर इनके ताप और खिन्नता को दूर करो।

संध्या सुनहली कान्ति बिखेर कर और सुगन्धित वायु पंखा झलकर इन श्रान्त-व्यक्तियों में स्फूर्ति का संचार कर रही हैं।

चिड़ियों का चहचहाना, संध्या और वायु के प्रेरणामय व्यापार तो लौकिक हैं। किन्तु काव्य अलौकिक कला है और सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा हैं। लौकिक कला पीड़ितों का ताप दूर करने का प्रयत्न करती है। काव्य कला को भी जीवन को सुखद बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। कवि का यही आशय आगे की पंक्तियों में और भी स्पष्ट हुआ है।

"गा सके ... आवे रवि।"

शब्दार्थ—विश्री = श्री हीन।

भावार्थ—कवि चाहता है कि मेरा हृदय भी विश्व की इस खिन्न संध्या में पक्षियों के समान उत्साह भरे गीत गाए जिससे फिर से सूर्य का उदय हो और

प्रभात हो जाए। कवि की वाणी युग परिवर्तन कर दे।

३४—मानव

"सुन्दर हैं रूप रंग।"

शब्दार्थ—विहग=पक्षी। वेष्ठित=घिरा हुआ। प्ररोह=अंकुर।

भावार्थ—पक्षी सुन्दर हैं, फूल भी सुन्दर हैं किन्तु हे मानव तुम सबसे अधिक सुन्दर हो। तुम संसार भर कि सुन्दर वस्तुओं के सौंदर्य से बने हो, तुम अनन्य हो। तुम्हारा शरीर अग्नि से तेजोमय यौवन से युक्त है, तुम्हारी त्वचा कोमल है, तुम्हारे अङ्ग सुन्दरता के अंकुर हैं। उन अङ्गों का वर्ण इतना ललाम है कि समस्त प्रकृति और अन्धकार एवं प्रकाश का वर्ण भी उसके सामने तुच्छ है।

"धावित शोभन।"

शब्दार्थ—कृश=पतली। पृथु = विशाल। प्रलम्ब=दीर्घ। पीनोरु=सबल जंघाएँ। स्कन्ध=तने।

भावार्थ—तुम्हारी नीली और पतली शिराओं में भी अधिक उत्साह वर्द्धक रक्त की धारा बह रही है। तुम्हारी आंखें तो लावण्य के दो संसार हैं। तुम्हारे स्वर में संगीत की नैसर्गिक मधुरिमा है। मनुष्य का विशाल उर तालाब के समान है। नारी के उभरे उरोज कमल के समान हैं। दीर्घ प्रेम-बन्धन के समान तुम्हारी सशक्त भुजाएं हैं। तुम्हारी सबल जंघाएं जीवन रूपी वृक्ष के तने हैं। तुम्हारे हाथ, पाँव, अंगुलियाँ सुन्दर हैं। तुम पाँव से लेकर सर तक आकर्षक हो।

"यौवन की स्वभाव पूर्ति।"

शब्दार्थ—माँसल=प्राणवान। युग्मों का=प्रेमी-प्रेमिका। उद्यम अजस्र=निरन्तर साधना। पार्थिव=लौकिक।

भावार्थ—हे मानव! तुम में यौवन की अपार शक्ति एवं मधुर गुण हैं। नव-विवाहिता पति-पत्नी एक दूसरे के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। इस आत्म-समर्पण में अपार हर्ष और समस्त मधुरिमा पुञ्जीभूत है। मानव में आशाएं-अभिलाषाएं हैं, ऊंची ऊंची कामनाएं हैं, बाधाओं को पराजित करने वाली निरन्तर साधना, विश्वास और विवेक के गुण हैं, अचल श्रद्धा

और सच्चा प्रेम है, सहृदयता, त्याग और सहानुभूति की दिव्य मानसिक विभूतियां हैं, ये ही विश्व की सभ्यता के आधार लौकिक स्तम्भ हैं। ये ही स्वर्गीय संस्कृति का वाहन करने वाली हैं। ये सभी विभूतियों मानव की स्वभाव-सिद्ध संपत्ति हैं।

मानव का तुमको मानव !

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास।

भावार्थ—मनुष्य को मनुष्य पर विश्वास करना चाहिए। उन्हें एक दूसरे के निकट आना चाहिए। उन्हें संगठित होकर मनुष्यता की उन्नति करनी चाहिए। उन्हें विज्ञान और ज्ञान के क्षेत्र में नए कदम बढ़ाने चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि सब में मुलतः एक ही चेतना का तार झंकृत है। कवि मानव से कहता है कि तुम्हें तो भगवान का वरदान प्राप्त है। तुम सदैव नवीन वस्तुओं का उपभोग करो। नवीन सिद्धियाँ प्राप्त करो। यदि तुम सच्चे अर्थों में मानव बने रह सको तो तुम्हें संसार में किसी भी चीज की कमी नहीं रहेगी।

विशेष—कवि कल्पना के झीने परों पर उड़ना छोड़कर, प्रकृति सौंदर्य की अनन्य उपासना से भी आगे बढ़कर मानव के सौंदर्य-गान में लीन दिखाई देता है। मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनना है। यही उसका चरम लक्ष्य है, परम सफलता है।

३५—ताज

"हाय रति।"

शब्दार्थ—अपर्थिव=अलौकिक। विषराण=विषद-ग्रस्त। संग-सौध=संगे-मरमर। रति-प्रेम।

भावार्थ—कवि के सामने एक ओर ताज का वैभव है और दूसरी ओर शोषित जनता की करुण दशा। इस दारुण विषमता को देखकर उसका हृदय क्षुब्ध होकर पुकार उठता है—जब सारा संसार विषाद में डूबा हुआ अचेत पड़ा हो तब मृत्यु की ऐसी अलौकिक और दिव्य आराधना करना कितने दुःख की बात है ! शव को तो संगेमरमर के वैभवशाली महल में रखा जाए, और जीवित मनुष्य नंगा, भूक से व्याकूल और निराश्रित रहे। हे मनुष्य तुझे

जीवन से ऐसी भी क्या घृणा हो गई है जो तू आत्मा का तिरस्कार कर प्रेत और छाया के प्रेम में मस्त है।

"प्रेम अर्चना ईश्वर।"

शब्दार्थ—प्रेम-अर्चना = प्रेम की पूजा।

भावार्थ—कोई कह सकता है कि ताज महल के रूप में शाहजहां का दिव्य प्रेम प्रकाशित हुआ है। इस पर कवि कहता है कि क्या प्रेम की आराधना हमें यही सिखाती है कि हम मृत्यु को गले लगा लें और संसार के मनुष्यों का शोषण कर उन्हें हड्डियों के ढांचे भर रहने दें? लाश को हम मनुष्य का रूप प्रदान करें और मनुष्य को चलती-फिरती लाश बना दें? यह प्रेम की पूजा नहीं है। यह तो मनुष्य का अज्ञान है। ताजमहल बीते हुए युग की रूढ़ियों का प्रतीक है। आज भी मूर्ख मनुष्य उससे प्रेम करते हैं, उसके प्रति आकर्षित होते हैं। हम जीवन के इस अमर सन्देश को भूल गए हैं कि मरे हुए व्यक्तियों का सम्बन्ध तो मरे हुए व्यक्तियों से ही है, और ईश्वर की विभूतियां जीवित मनुष्यों के लिए हैं। मानव का लक्ष्य मानव की उन्नति ही होनी चाहिए।

३६—नवदृष्टि

कवि को जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में जो नवदृष्टि प्राप्त हुई है, उसी का इसमें चित्रण है।

"खुल गये ललाम।"

शब्दार्थ—प्रास=अनुप्रास। अयास=सहज-ढंग से।

भावार्थ—कवि कहता है कि अब छन्द के बंधन टूट गए हैं। अनुप्रास आदि अलङ्कारों का आकर्षण भी विलीन हो गया है। अब कविता सभी प्रकार के बन्धनों से स्वतन्त्र है और युग की भावनाओं को मुखरित करती हुई अकृत्रिम रूप में प्रकट होती जा रही है। संसार से ही कवि को सुन्दर भावों की प्राप्ति होती है, उसे कहीं दूसरे लोक में—कल्पना लोक में अब नहीं विचरना पड़ता। जीवन का संघर्ष ही प्रिय लगता है। साधना में ही सुख है।

"सुन्दर सुन्दर।"

भावार्थ—पहले कला को सत्यं, शिवं, सुन्दरं की कसौटी पर कसा जाता

था। किन्तु कवि कहता है कि वे तो कला के कल्पित मान-दण्ड हैं। वे अब अपने आदर्श सूक्ष्म रूप को त्याग कर भौतिक जीवन में घुल मिल गए हैं। अब तो मानव का वास्तविक स्वरूप ही मानव का काम्य लक्ष्य बन गया है। यह लक्ष्य ही अपूर्ण जीवन को पूर्ण करता है और कुरूप भावनाओं को मंजुल बनाता है।

विशेष—इस कविता में कवि पुराने आदर्शों को कल्पित कह कर ठुकरा देता है, और मानव स्वभाव का एक नया आदर्श संसार के सामने रखता है।

३७—जीव प्रसू

"ताक रहे हो ... भू को।"

शब्दार्थ—जीव प्रसू=जीवों को जन्म देने वाली।

भावार्थ—कवि स्वर्ग की ओर ताकने वाले आदर्श वादियों से कहता है—क्या तुम इस आकाश को देख रहे हो, जिस की नीलिमा मृत्यु के घने अन्धकार के समान है, जो अपलक, दृष्टि हीन मृत्यु के नेत्र के समान है, जो गति हीन, चेतना हीन और जड़ है ? धरती को देखो। जीवों को जन्म देने वाली धरती माता की ओर देखो !! हरियाली से भरी, पल्लवों की मधुर ध्वनि से पूरित, सघन कुञ्जों से सुशोभित, भ्रमरों की गुञ्जार से मुखरित, पुष्पों से अलंकृत धरती को देखो !!! तुम कितने मूर्ख हो जो ऐश्वर्य और सुषमा से युक्त इस धरती को त्याग कर, जड़ अचेत आकाश की आशा लगाए हो।

"कोमल ... पुण्य प्रसू !

शब्दार्थ—शाद्वल = घास।

भावार्थ—कोमल लहराती हुई घास ही धरती माँ का आंचल है, कल-कल करती हुई इसमें पावन नदियां वह रही हैं। यह पुष्पों से लदी हुई है, वायु द्वारा सुगन्धित है, पक्षियों के संगीत से लहरा रही है, सुन्दर पशुओं की बोलियों से ध्वनित है। इस पर देवताओं और मुनियों के भी वन्द्य मानव-चरणों के चिन्ह हैं। स्वर्ग के सुखों से पूर्ण, पावन मनुष्यों को जन्म देने वाली इस धरती को देखो।

इस कविता में कवि स्वर्ग और बहिश्त आदि के विश्वासों का उन्मूलन कर, धरती को ही स्वर्ग के रूप में चित्रित करता दिखाई देता है।

३८—चींटी

शब्दार्थ—पिपीलिका पांति=चीटियों की पंक्ति।

भावार्थ—कवि पूछता है क्या तुम ने कभी चींटी को देखा है ? वह जो सीधी काली रेखा के समान है जो अन्धकार के डोरे के समान हिलती हुई, एक ही गति से जा रही है वही चींटियों की पंक्ति है। देखो तो सही वह किस प्रकार निरन्तर कार्य करती रहती है। निरन्तर एक-एक कण चुनती रहती है।

"गाय चराती वह सुनागरिक !"

शब्दार्थ—गाय=वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि चींटियों की अपनी गाएँ होती हैं।

......वाल्मीकि=बिल। डिम्ब सद्म=बच्चों के घर।

भावार्थ—चींटी गाय चराती है, उसे धूप खिलाती है। बच्चों की निगरानी करती है। शत्रु से डटकर लोहा लेती है। सेना तैय्यार करती है। घर आंगन और मार्गों को साफ करती है। वह देखो उसका सुन्दर बिल है। उसके भीतर किला है, नगर भी है। उसकी निर्माण कला चकित कर देने वाली है। कोई शिल्पी भी उसका वर्णन नहीं कर सकता। उसके नगर में महल हैं, घर हैं, मार्ग हैं, अंगन हैं, गौत्रों के घर हैं, और कई अन्न आदि के भण्डार हैं, बच्चों के घर हैं, सुन्दर शिविर बने हैं, अनेक ड्योढियां बनी हैं, बड़े-बड़े राज मार्ग बने हैं। चींटी सामाजिक प्राणी है। वह मेहनती है। वह अच्छा नागरिक है। इन पंक्तियों में कवि चींटियों की प्रशंसा कर व्यंजना द्वारा मनुष्यों की निन्दा कर रहा है। न तो मनुष्य मेहनती है और न हीं अच्छा नागरिक।

"देखा चींटी को नहीं स्थाणु।

शब्दार्थ—स्थाणु=स्थिर, जड़।

भावार्थ—कवि कहता है—तुमने चींटी को देखा ! उसकी हिम्मत देखी ! वह भूरे वालों की कतरन के समान छोटी है किन्तु वह निडर होकर सारी धरती पर घूमती है। सदैव मेहनत में लगी रहती है। वह सचमुच जीवन की न बुझने वाली चिंगारी है। उसका शरीर तो देखो तिल सा छोटा है। उसके प्राण कितने निर्बल हैं। फिर भी वह दिन भर मीलों चलती है और कभी भी

परिश्रम से घबराती नहीं है। क्या वह भी कभी दम तोड़ देती है? कभी नहीं वह कण के समान, नहीं अणु के समान नहीं परमाणु के समान छोटी है। फिर भी वह सदैव कार्य रत रहती है बेकार नहीं रहती। "कण, अणु, परमाणु" छोटे होते हैं किन्तु उनमें कितनी अपार-शक्ति भरी होती है।

हा मानव ! ... धूलि पर !!"

भावार्थ—चींटी की महिमा को देखकर और मानव की बुरी दशा देखकर कवि दुखी हो उठता है। वह कहता है—हे मानव ? हे शव !! तुम्हारे पास भी तो शरीर है। किन्तु तुम निरन्तर शारीरिक सुखों के उपभोग की चिन्ता में लीन रह कर केवल देह मात्र रह गए हो। जड़ हो गए हो। दावानल में पड़े हुए तिनके के समान भस्म हो रहे हो। हे श्रेष्ठ प्राणी ! तुम इस नश्वर मिट्टी की देह पर ही सब कुछ भूल बैठे।

निद्रा ... मानव को प्रकाम्य।

शब्दार्थ—बालुका भीत = बालू की नींव।

भावार्थ—मनुष्य के लिए तो निद्रा, भय, मैथुन और आहार–ये चार पाशविक वृत्तियाँ ही सब कुछ बन गई हैं। हे मैथुन और आहार के यंत्र मानव तुम्हें धिक्कार है। क्या इन्हीं रेत की नींवों पर तुम मानव-समाज का नवीन अमर विधान बनाना चाहते हो, क्या मनुष्य में इतनी ही शक्ति है कि उसे पशुओं, पक्षियों और पुष्पों से समानता दी जाए? प्राणि शास्त्र के आधार पर क्या तुम यह सिद्ध करना चाहते हो कि मनुष्यता और पशुता में समानता है? क्या× मनुष्य और पशुओं की बाहरी ही नहीं मानसिक समानता भी वाँच्छनीय है?

"मानव को ... उसके भीतर।"

× वाह्य नहीं, आंतरिक साम्य
जीवों से मानव को प्रकाम्य !

(युगवाणी-तृतीय संस्करण–अन्त में प्रश्नवाचक चिह्न नहीं है)

प्रश्नवाचक चिह्न से रहित पाठ ही शुद्ध है। अर्थ सीधा है। मनुष्य को पशुओं के शरीर से नहीं वरन् उनके मन के उत्साह और शक्ति की समानता करनी चाहिए।

भावार्थ—कवि उपरोक्त सभी मतों का खण्डन करता हुआ कहता है—मानव के सामने आदर्श होने चाहिए। उसे संस्कृति की आवश्यकता है, आत्मोन्नति की अपेक्षा है। यदि मनुष्य-मनुष्य में भीतरी साम्य नहीं है, यदि सब एक से शिक्षित और संस्कृत नहीं हैं तो वाह्य-विधान की एकता उसके लिए बन्धन स्वरूप ही है। अन्तर्चेतना से हीन मनुष्य का मूल्य चींटी के समान भी नहीं है क्योंकि चींटी चेतन है और मानसिक उत्कर्ष से रहित मनुष्य जड़। चींटी जीवित है, जीवन का प्रकाश करती है, वह मनुष्य जीवन का भी श्रेष्ठ नायक है क्योंकि वह स्वतन्त्र है, उसने अपना निर्माण स्वयं किया है। किन्तु सभी विभूतियों से सुशोभित मनुष्य साक्षात ईश्वर है। उसका भाग्य उसके भीतर ही है। जो वह चाहे कर सकता है बन सकता है केवल हृदय में दृढ़ उत्साह और इच्छा-शक्ति होनी चाहिए।

३९—दो लड़के

मेरे आँगन में ... ढाले सच्चे।

भावार्थ—टीले पर मेरा घर है। मेरे आँगन में प्रायः दो छोटे से लड़के आ जाते हैं। उनका शरीर नंगा रहता है, रँग साँवला है, वे माँसल हैं, स्वाभाविक सुन्दरता से भरे हैं, मिट्टी से शरीर भरा रहता है किन्तु वे बहुत फुर्तीले हैं। वे शीघ्रता के साथ टीले के इधर-उधर उतर कर सिगरेट के खाली डिब्बे चमकीली पन्नी, फीते के टुकड़े, मासिक पत्रों के मुख्य पृष्ठों की नीली-नीली तस्वीरें आदि सुन्दर वस्तुएँ कूड़े के ढेर पर से चुनकर ले जाते हैं और भीतरी खुशी से बन्दर के समान नाँचते हैं। छः-सात साल के नाटे कद के वे स्वस्थ बालक फिर आँगन के उस पार भाग जाते हैं। उनकी देह सुन्दर है, नेत्रों को और मन को मोह लेती है। वह भी मानवपुत्र हैं इसलिए हृदय में उनके प्रति ममत्व जाग उठता है। ये पासी के बच्चे मानव-पुत्र हैं। इनका रोम-रोम सच्चे मानव के साँचे में ढला है।

अस्थि-माँस के ... तुझे धरा पर।

शब्दार्थ—अधिवास=रहने का स्थान।

भावार्थ—यह संसार हड्डी और माँस के इन पुतलों का ही घर है। यह आत्मा का निवास स्थान नहीं है क्योंकि वह तो सूक्ष्म है और अमर है जबकि

यहाँ की प्रत्येक वस्तु स्थूल और अनित्य है। इस अनित्य हाड़-माँस के पुतले के सामने आत्मा क्षुद्र है। इस संसार में रहने का उसे ही अधिक अधिकार है जो सबसे अधिक दुर्बल है। किन्तु इस संसार में तो आग का भय है, बाढ़ का उत्पीड़न है, तारों के टूटकर गिरने का भय है, भयंकर तूफ़ान आते रहते हैं। फिर भला सुकुमार शरीर वाला मनुष्य इस पर कैसे रह सकता है। प्रकृति बड़ी निष्करुण है और जीवन सहज ही नाश हो जाने वाला है। संसार में रहने के लिए मनुष्य को उपयुक्त साधनों की आवश्यकता है। क्यों न सभी मनुष्य संगठित होकर संसार में अलौकिक मानव-संस्कृति का निर्माण करें? धरती पर जिन्दगी का वैभवशाली महल खड़ा हो जाए। मानव के हित के लिए उसका एक साम्राज्य बने। जहाँ क्षणिक जीवन की मिट्टी सुरक्षित रह सके और मनुष्य के हृदय की इच्छाएं पूर्ण हों। जिस साम्राज्य में मनुष्य एक दूसरे को मानव-सुलभ प्रेम-दान देता हुआ रह सके। हे मानव-ईश्वर ! तुझे धरती पर फिर अन्य किस स्वर्ग की कामना होगी? यह साम्राज्य ही स्वर्ग होगा।

विशेष—आरम्भिक चित्रण यथार्थ से ओत-प्रोत है। बाद में कवि आत्मा को भौतिक शरीर के सामने नगण्य मानता है। कवि के लिए पूर्ण मानव ही ईश्वर है।

'अक़सर' और 'क़बरों की' प्रयोगों से कवि के विकास की दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है। जन-जीवन को जन-भाषा में मुखरित करना ही वह अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य मानता है।

४०—झंझा में नीम

"सर् सर्   अर्......।"

शब्दार्थ—श्वसन-स्पर्श से=वायु के स्पर्श से।

भावार्थ—घने नीम के लम्बे, पतले और चंचल पत्ते वायु का स्पर्श पाकर सर्-सर् मर्-मर् ध्वनि करते हुए पुलकित होकर हिल-हिल उठते हैं। हवा के चलने से नीम के पत्ते काँप उठते हैं और मर्मर ध्वनि करने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वृक्ष रूपी चोटी से अत्यन्त शोर मचाता हुआ ध्वनि रूपी झरना धरती की ओर बह निकला हो।

"झूम-झूम   पल-पल।"

भावार्थ—भयंकर आकार वाला सम्पूर्ण नीम का वृक्ष झूम-झूमकर, झुक-झुककर, सिहर-सिहर कर सर्-मर् चर्-मर् ध्वनि करता है।

वायु के निरन्तर चलने से सभी पत्ते एक दूसरे में मिलकर हरियाली में लीन हो जाते हैं और धातु के पत्तों के समान बजने लगते हैं। और तब नीम के सभी पीले, डरे हुए, सड़े हुए पत्ते अपने स्थानों से च्युत होकर, दुख की ठण्डी साँस भर कर क्षण-क्षण गिरा करते हैं।

विशेष—अनुकरणात्मक शब्दों का तथा चित्र-भाषा का प्रयोग इस कविता की विशेषता है।

४१—याद

"विदा हो गई   विषाद है नीरव।"

शब्दार्थ—विनत=झुके हुए।

भावार्थ—संध्या अपने झुके हुए मुख पर पतला आँचल डालकर, मेरे एकान्त आँगन में प्रिया की मूक-मीठी स्मृतियाँ भर कर चली गई। डूबता हुआ सूर्य ही संध्या का झुका हुआ मुख है और धूमिलता का आँचल है। आकाश में असाढ़ के मेघ अभी भी सुनहली आभा लिए वर्त्तमान हैं। रक्तिम मेघ ही संध्या का फहराता हुआ केसरी वस्त्र है। मैं बरामदे में शय्या पर लेटा हुआ था। मेरे सभी अङ्ग पीड़ित थे। बादलों का मूक दुःख ही मेरे मन का साथी बना। दुःख में प्रकृति भी दुःखी दिखाई देती है।

"सक्रिय यह   अम्बर।"

शब्दार्थ—सक्रिय = गतिशील। भेकी = मेंढकी। बर्ह भार = पूंछ का भार।

भावार्थ—उन मेघों से उमड़-उमड़ कर मेरे मन में दुःख, भावी की निराशा और अनेकानेक भाव उठ-उठकर मुझे व्यथित कर रहे हैं। प्रकृति में मधुर मिलन के व्यापार चल रहे हैं। कवि अकेला है। उसकी पीड़ा और भी उद्दीप्त हो उठती है। विरह में व्याकुल मेंढक मेंढकी को पुकार रहा है। उधर मोर भी पूछ के पंख पसार कर, मनोहर नृत्य करके मोरनी को मुग्ध कर रहा है।

बादलों से घिरे आकाश में सुख सी बिजली फैल जाती है और मेरे हृदय में मिलन की मधुर स्मृति का संचार हो जाता है। बादलों का गम्भीर गर्जन धरती की छाती को कड़का देता है। इतने में मेघ बरस पड़ते हैं—मानो सैकड़ों धाराओं के रूप में आकाश ही धरती से मिलने के लिए उतर आया हो।

"भीन-भीनी निश्चल।"

भावार्थ—वर्षा के कारण धरती से भीनी-भीनी भाप उठ रही है। वह मेरी साँसों में मिलकर हृदय में स्मृतियों की एक अन्य सुगन्धि भी भर रही है। नवीन असाढ़ की संध्या के समय, मेघों के कोमल अन्धकार में, सैकड़ों भावों से आकुल होकर मैं एकान्त शय्या पर लेटा हूँ। एक अत्यन्त मनोरम स्मृति बिजली के समान क्षण भर के लिए चमक कर हृदय में वास करने वाली तुम्हारी मूर्ति की याद कर देती है।

४२—महात्मा जी के प्रति

"निर्वाणोन्मुख विजयी साधारण!"

शब्दार्थ—निर्वाणोन्मुख=नाशोन्मुख। प्लावित=व्याप्त। अभिभव=पराजय वरेण्य=श्रेष्ठ।

भावार्थ—जब दीपक बुझने को होता है तो एक क्षण भर के लिये वह अमन्द ज्योति बिखरा देता है, और फिर अन्धकार में विलीन हो जाता है। महात्मा गाँधी नाशोन्मुख आदर्शों का अन्तिम प्रकाश है जिसने एक क्षण भर के लिये सारे विश्व को आलोकित कर दिया है। इसके पश्चात् उन आदर्शों का नाश अवश्यंभावी है। बीते हुए युगों के आदर्शों के नाश में ही मानव की सफलता है। इस नए युग में प्राचीन आदर्श निष्प्राण हो चुके हैं। इसीलिए महात्मा जी की पराजय जनता की अमर विजय है। महात्मा गाँधी की असफलता से यह सिद्ध हो गया कि ये आदर्श आज के युग के लिए नरर्थक हैं। यह सिद्ध होना ही जनता की विजय है, जनता की उन्नति का प्रतीक है। अब जनता पुराने आदर्शों के जाल को काट कर नई संस्कृति का निर्माण करेगी।

कवि महात्मा जी से सम्बोधन करके कहता है—हे मानव आत्मा के प्रतीक तुम आदर्शों से भी महान हो, अपने उद्देश्यों से भी बढ़कर महिमाशाली हो

अपने यश से भी अधिक गौरवशाली हो। तुम अमर हो। तुमने व्यक्तिगत सिद्धियाँ प्राप्त नहीं कीं। तुमने तो जनता की उन्नति की कामना में जीवन लगा दिया है। हे पुरुषोत्तम। आज तुम हार गए और तुम्हारी इस हार में ही जनता की विजय है।

"युग-युग की निष्फल।"

भावार्थ—तुमने विगत संस्कृतियों के स्थायी सार को चुनकर संसार के कल्याण के लिए नवीन संस्कृति की नींव डालनी चाही थी। किन्तु अंग्रेज साम्राज्य ने बीते युगों की संस्कृति रूपी पत्थर को ठुकरा दिया है। उन्होंने तुम्हारे आदर्शों को अस्वीकार कर दिया है। इस अस्वीकृत में ही मानव की मुक्ति, छिपी है।

तुम पिसे हुए भारत देश के अडिग नेता हो तुम ध्रुव के समान दृढ़-प्रतिज्ञ और धैर्यशाली हो। तुमने अपनी आत्मशक्ति से देश की जनता की लाश में प्राण शक्ति फूँक दी। संसार भर में एक सर्वथा नवीन संस्कृति का निर्माण होना था। तुम्हारा राम-राज्य का स्वप्न व्यर्थ ही बिखर नहीं गया। वह अवश्यपूर्ण होगा किन्तु तुम्हारे आदर्शों के अनुकूल नहीं क्योंकि तुम्हारे आदर्श तो सार हीन हैं।

"विकसित व्यक्ति वाद हो रही निर्मित।"

भावार्थ :—तुमने जिन आदर्शों को ग्रहण किया वह व्यक्ति की साधना द्वारा उसे सुलभ थे किन्तु वह सामान्य जनता के हित के नहीं थे। इसलिए व्यक्तिवाद के आधार पर खड़े इन आदर्शों का नाश निश्चित था। आज का संसार सामन्तकाल के खंडहर के रूप में विद्यमान हैं। उसमें कोई वैभव नहीं आलोक नहीं, सर्वत्र खिन्नता और ह्रास है। हे भारत के हृदय तुम असफल हुए। और तुम्हारी असफलता के साथ ही बीते युगों की संस्कृति का निर्बल हृदय भी चूर-चूर हो गया है।

बीती हुई संस्कृतियों और आदर्शों की पराजय निश्चित थी क्योंकि उनके भवन वर्गों और व्यक्तियों के आधार पर खड़े थे, सामान्य जनता के आधार पर नहीं। बीते युगों के आदर्श सुनहले जाल के सामन हैं। किन्तु आज मनुष्य उनको छिन्न,भिन्न करके एक नबीन संस्कृति का निर्माण कर रहा है जो

सामान्य जनता की नींव पर आश्रित है।

"किए प्रयोग जाग्रत ?"

शब्दार्थ—भावादर्श=कल्पित आदर्श। अश्वत्थ=पीपल का पेड़। वस्तु विभव=भौतिक उन्नति। वस्तु सत्य=भौतिक वाद।

भावार्थ—हे महात्मन! तुमने अपने इन कल्पित आदर्शों को सामूहिक जीवन के लिए हितकारी सिद्ध करने का प्रयत्न किया। तुमने सत्य, अहिंसा आदि आदर्शों का जन-सामान्य पर प्रयोग किया। किन्तु तुम इन आदर्शों को जनता के लिए शुभ न सिद्ध कर सके। यह संसार तो ऐसा पीपल का वृक्ष है जिसकी जड़ें धरती में फैली हैं और जिसकी संस्कृति रूपी अनेक शाखाएं हैं। जिस प्रकार पीपल की शाखाएँ प्रति वर्ष नए पल्लवों से मुखरित होती हैं, उसी प्रकार युग परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृति के नए आदर्शों का जन्म होता है। जनता की समृद्धि तो भौतिक उन्नति पर ही आश्रित है।

यदि तुम भौतिकवाद को ही स्वीकार कर लेते तो यह भारत, चाहे दरिद्र ही था, फिर भी तुम्हारा विरोध करता। भारतवासी तो मध्ययुग के नैतिक आदर्शों में पले हैं और उन्हीं सिद्धान्तों ने ही इनका शोषण किया है। किन्तु जब तक वे स्वप्न से निस्सार इन आदर्शों की अवास्तविकता एवं सारहीनता जान न लें, तब तक भला वे कैसे जाग सकते हैं ?

"सफल तुम्हारा चिर पावन।"

शब्दार्थ—अचिर=अस्थिर। प्रेषक=उत्पन्न करने वाली।

भावार्थ—हे सत्य का अनवेषण करने वाले! तुम्हारी सत्य की खोज सफल हुई। उसकी सफलता इसी में है कि उसने धर्म और नीति के सिद्धान्तों को, दर्शन-शास्त्र के मतों को, शासन विधानों को अस्थिर सिद्ध कर दिया है। इन सिद्धान्तों, मतों और विधानों का निर्माण करने वाली तो युग विशेष की परिस्थितियाँ ही होती हैं। जैसे-जैसे युग की परिस्थितियां बदलती हैं, वैसे ही ये सब वस्तुएँ बदल जाती हैं। परिस्थितियों के साथ ही साथ मानव के गुणों और मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। गत युग के मूल्य आज कौड़ी काम के हैं। आज तो नए मूल्यों के निर्माण की आवश्यकता है।

हे संसार के पूज्य महात्मन्! तम पूर्ण पुरुष हो। तुम श्रेष्ठ मानव हो,

तुम सच्चे अहिंसक हो। तुम भी अपने कर्त्तव्य से मुक्त हुए और जनता बीते हुए युग के आदर्शों के बन्धन से मुक्त हुई। तुम अपलक मनश्चक्षुओं के समान मनुष्य का भविष्य देख रहे हो। आज तुम्हारे चरणों से धरती सदैव के लिए पवित्र होगई है।

विशेष—"अधोमूल अश्वत्थ" गीता में भगवान ने कहा है—

ऊर्ध्वमू लमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेदस वेदवित् ॥" १५–१

"संसार पीपल का वृक्ष है जिसकी पुराणपुरुष रूप जड़ उपर हैं, शाखाएँ नीचे लटक रही हैं और वेद जिसके पत्ते हैं। जो यह जानता है वही वेदों को जानता है। कवि इससे बिल्कुल विपरीत बात कहता है। अँग्रेज सेनाओं के पीछे हटने में भी बहादुरी थी। कवि को महात्मा जी की असफलता में ही कल्याण दिखाई देता है।

४३—भारत माता

भारत माता ... प्रवासिनी।

शब्दार्थ—बिषण्ण=दुखी।

भावार्थ—भारत माता गांव में रहने वाली है। अधिकाँश भारतीय जनता गाँवों में बसी हुई है। लहलहाते खेतों के रूप में माँ का धूल भरा नीला आँचल फैला हुआ है। गंगा और यमुना रूपी आँसू की धाराएँ उसके नेत्रों से निरन्तर प्रवाहित रहती हैं। वह मिट्टी की मूर्ति सी जड़ और उदास दिखाई देती है।

उसके नेत्रों में दीनता छलकती है। वह स्थिर नेत्रों से नीचे ताक रही है। दीर्घ काल से उसके होठों पर मूक रुदन विखरा है। उसका मन युगों की निराशा से खिन्न है। वह अपने घर में ही उपेक्षित है।

"तीस कोटि ... दासिनी।"

शब्दार्थ—निरस्त्र=निराश। लुंठित=कुचला जा रहा है। सहिष्णु=सहनशील। शरदेन्दु=शरद् ऋतु का चन्द्रमा।

भावार्थ—भारत मां की तीस करोड़ सन्तान आज नग्न है। वह भूखी है, पिसती जा रही है, निराश है, मूर्ख, असंस्कृत निरक्षर और दरिद्र है। माता

ने विवश होकर अपना मस्तक झुका लिया है। वह वृक्षों के नीचे वास करती है। असंख्य भारतीयों के पास रहने को मकान नहीं हैं।

माँ का सुनहला अन्न विदेशी पांव के नीचे रौंद रहे हैं। धरती के समान सहनशील उसका मन भी आज खिन्न और क्षुब्ध है। उसके अधर रुदन में कांप रहे हैं। उसकी हँसी छिपी हुई है। शरद् ऋतु के चन्द्रमा की शुभ चाँदनी के समान हँसने वाली हमारी माँ को आज परतन्त्रता के राहु ने ग्रस लिया है। उसने उसकी सारी संपत्ति और विभूतियाँ ढक ली हैं।

"चिन्तित भृकुटि जीवन विकासिनी।"

भावार्थ—उसकी भौंहों में चिन्ता घिरी है। उसका भविष्य अन्धकार में डूबा है। उसके झुके हुए नेत्र मेघ भरे गगन के समान बरस रहे हैं। उसके मुख की शोभा मेघो में छिपे चन्द्र के समान है। गीता का प्रकाश करने वाली हमारी माँ आज किंकर्त्तव्य विमूढ़ है।

आज उसका तप और संयम सफल हुआ। वह अहिंसा रूपी अमृता का दूध पिलाकर मनुष्यों के भय को दूर कर रही है और संसार की निराशा का उन्मूलन कर रही है। हमारी भारत माता संसार की माँ है और मानव मात्र की उन्नति चाहने वाली है।

विशेष—कवि ने परतन्त्रता के दुख से पीड़ित भारतवासियों की करुण दशा का अत्यन्त मार्मिक उद्‌घाटन किया है। शैली सशक्त एवं प्राञ्जल है।

४४–ग्राम युवती

"उन्मद यौवन अधरों के तट।"

शब्दार्थ—श्लथ=अलसाए हुए। दशन = दाँत।

भावार्थ—मादक यौवन से भरी हुई ग्राम युवती असाढ़ की नवीन घटा के समान सुन्दर है। उसका रंग घटा सा काला है। वह गज गामिनी घटा के समान ही अलसाए हुए चरणों से धीरे-धीरे इठलाती हुई साँप से टेढ़े-मेढ़े और पतले रास्ते पर आ रही है।

वह अपने पीछे हटते हुए वस्त्र को सर पर रख रही है। अपनी बिखरी अलकों को सँभलती है। और नीची नजर से घड़े जैसे स्तनों को देखकर तुरंत

लज्जित हो जाती है। वह चपला अबला जब खिलखिला कर हँसती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई निर्झर शुभ्र झाग से भर कर दातों से निकल कर अधर रूपी तटों पर फूट पड़ा हो।

"वह मग में   पलक पट।"

भावार्थ—जब वह अपने पति के पाँवों की ध्वनि सुनती है तो पीछे देख कर, मार्ग में रुककर तथा झुककर अपना दुपट्टा ठीक करती है। जब उसका प्रेमी और प्रार्थी ग्राम का कोई युवक उसे अपलक नयनों से देखता है तो वह हर्ष और आश्चर्य में डूबकर तुरंत पलक रूपी वस्त्र मूँद लेती है। आखें बन्द कर लेती है और मुख पर आँचल डाल लेती है।

"पनघट पर   उर पर धर घट!"

शब्दार्थ—उबहनी=रस्सी। युग=दो।

भावार्थ—पनघट पर उसे देखकर नर-नारियाँ मोहित हो जाते हैं। जब वह गागर को जल से भर कर रस्सी खींचती है, तो घड़े के साथ ही साथ उसकी चोली से उभर-उभर कर रस के घड़े से दोनों स्तन भी खिचते हैं। घड़ा खींच लेने के पश्चात् सर पर घड़ा रखकर और वक्षस्थल पर आञ्चल डाल कर जल छलकती हुई, रस बिखेरती हुई, बल खाती हुई घर को जाती है।

"कानों में   सिंगार।"

भावार्थ—वह कानों में अड़हुल का पुष्प लगा लेती है, या कुंई, कनेर या लाल गुलाब का फूल लगाती है। हरसिंगार के फूलों से अपने बालों का अलंकृत कर कोमल मौलसिरी के हार पहन कर, गौओ के साथ वन में फिरती है। कोयल और चातक की आवाज में आवाज मिलाती है। एकाँत वन में वह कुंद, अमलतास, आम की मंजरियों, सहजन और पलास से अपना सिंगार करती है।

"तन पर   पकी बाली।"

भावार्थ—उसके शरीर में लालाम यौवन भरा है। उसके मुख पर पसीने की बूंदें हैं और गर्मी में काम करने के कारण उसका मुख लाल हो गया है। सिर पर सुनहले अन्न की डलिया रखे हुए छाती मटकाती हुई, कमर लचकाती हुई मेड़ों पर आ जा रही है। वह वर्षा में और सर्दी में सदैव कार्य किया

करती है। उस स्त्री का वर्ण काला है। होठों में पकी बाली को दबाए हुए वह अत्यन्त तेज गति से चलती है।

"रे दो दिन कुछ क्षण।"

भावार्थ—किन्तु उसकी जवानी बहुत अल्प समय तक ही रहती है। वह एक क्षणिक स्वप्न के समान टूट जाती है। दुखों में पिस कर और मुसीबतों में दब कर उसका शरीर काँतिहीन, बलहीन हो जाता है। असमय ही उसका यौवन धन लुट जाता है। जिस प्रकार कोई तिनका कुछ क्षणों के लिए सरिता के किनारों से खेलता है और फिर बह जाता है, उसी प्रकार उसकी जवानी भी दो चार क्षण उसके शरीर में प्रकाशित हो फिर विलीन हो जाती है।

विशेष—शब्द चयन सुन्दर एवं सशक्त है। ग्राम-युवती का चित्र प्रस्तुत हो जाता है। उसके दुर्भाग्य का चित्रण भी प्रभावोत्पादक है।

४५—ग्राम-चित्र

"यहाँ नहीं है संस्कृति से निर्वासित।"

शब्दार्थ—विद्युत्-दीप = बिजली के लट्टू। पंक = कीचड़।

भावार्थ—गाँव में ऐश्वर्यशाली जीवन की चहल-पहल नहीं है। यहाँ तो वन की सुगन्धि और मर्मर ध्वनि से भरी हुई खिन्न वायु चला करती है। यहाँ का प्रातःकाल भी असहाय और म्लान है, सन्ध्या में भी उदासी भरी है। दुपहर के समय भी यहाँ स्वप्नों की छाया सी निराशा भरी. धूमिलता छाई रहती है। गांव के रहने वाले मनुष्य ही नहीं वहां का वातावरण भी नीरव और करुण है। प्रकृति का पूर्व पीठिका के रूप में करुण उद्घाटन है। रात में दिन सी चकाचौंध पैदा कर देने वाले बिजली के लट्टू कहीं नहीं जल रहे हैं। यहाँ तो अन्धकार है जिसे गाँववासियों का भय और भी घना कर देता है। यहाँ के रहने वाले क्षुद्र मनुष्य वानरों से लगते हैं। वह अनन्त काल से इसी दयनीय दशा में चले आरहे हैं। वे सदैव अन्न और वस्त्र के अभाव से दुःखी रहते हैं, वे असभ्य हैं, मूर्ख हैं और कीचड़ में पले हुए हैं। नहीं-नहीं, यह मनुष्यों का स्थान नहीं है यह तो कोई भयङ्कर नरक है। भारत का गाँव

सभ्यता और सँस्कृति से हीन है।

"झाड़ फूँस के विवर ... जीवन्मृत !!"

शब्दार्थ—विवर=बिल। उडगण=तारों का समूह। विषण्ण=विषाद-ग्रस्त। जीवन्मृत=जिन्दा लाश।

भावार्थ—जीवन के निर्माण करने वाले व्यक्ति यहाँ झाड़-फूंस के बिलों में रहते हैं। बुद्धि-जीवी नर और नारियाँ कीड़ों के समान रेंगते दिखाई देते हैं। यहाँ का सारा वातावरण दरिद्रता और मजबूरियों से आक्रान्त है। घर में लड़ाई है, खेत में लड़ाई है और मार्ग में भी लड़ाई। यहाँ के वासी सदैव और सर्वत्र आपस में लड़ा करते हैं। यहाँ सूरज और चाँद खिलखिलाते हैं, तारे मुस्कराते हैं, पक्षी आनन्द-विभोर होकर गाते हैं, प्रतिपल बिजली की ज्योति में रंगे बादल नया रूप धारण करते हैं, यहाँ की वनस्पतियाँ और हरियाली सुन्दर है। यहाँ के फूल, ओस की बूंदें, कोयल और आम की डालियाँ सभी ही तो प्रसन्न हैं। नीला आकाश है, लहलहाती धरती है, सूर्य का विस्तीर्ण प्रकाश है, चाँदनी की शीतलता है। प्रकृत्ति का कण-कण यहाँ हँस रहा है। केवल एक मनुष्य ही ऐसा है जो विषाद ग्रस्त और चलती-फिरती लाश के समान है।

विशेष—ग्रामीण जीवन की यथार्थ दशा का करुण चित्र है।

४६—धोबियों का नृत्य

"लो ... होली का दिन।"

भावार्थ—होली का दिन है। धोबी शराब के नशे में चूर है। एक गुजरिया नाचकर सब को रिझा रही है। उसके पैरों में घुँघरे बँधे हैं। नट की कमर में घंटियाँ वज रही हैं। गुजरिया फिरकी के समान तेजी से घूम-घूमकर नाँच रही है। नट की कमर में सैकड़ों बल पड़ रहे हैं। ढोल, हुडुक और मजीरे बज रहे हैं।

"वह काम शिखा सी ... उत्सव अवसर।"

भावार्थ—गुजरिया काम की लौ के समान थिरक रही है। नट की कमर की लचक ही इच्छा का भँवर है। गुजरिया के नितम्ब काँप-काँप कर घंटियों

में प्रणय की गूँज पैदा कर रहे हैं। उसका लहँगा फहरा रहा है, ओढ़नी उड़ रही हैं। उसकी चोली में भरे हुए गेंद दिखाई देने लगे। वह गुजरिया स्त्री नहीं वरन स्त्री के वेश में पुरुष है। इस ढोल और मँजीरे के स्वर की चोट से सब के हृदय की अतृप्त लालसाएँ जाग रही हैं। उत्सव के अवसर पर अपने प्रिय मनुष्यों को वह गुजरिया नृत्य द्वारा लुभा रही है।

विशेष—ध्वनि-सौन्दर्य दर्शनीय है। भाषा में भी नृत्य की सी गति और प्रवाह है।

४७—ग्राम श्री

"फैली खेती में ... छिपाए बीज लड़ी।"

शब्दार्थ—किंकिणियाँ = घण्टियाँ। तैलाक्त = तेल से भीग हुई। तीसी= अलसी। छीमियाँ = मटर आदि की फलियाँ।

भावार्थ—दूर तक खेतों की हरियाली दिखाई देती है। उस पर चाँदी की जाली के समान सूर्य की किरणें पड़ रही हैं।

हरे तिनके में हरियाली खून सी छलक रही है। नीली धरती पर स्वच्छ नीला आकाश झुका हुआ है।

गेहूँ की बालियों के आने पर धरती रोमांचित सी दिखाई देती है। अरहर की सुनहली घंटियाँ बहार दिखा रही हैं। अरहर की फली सूख कर घंटी के समान बजने लगती हैं।

पीली-पीली सरसों खिली हुई है। उसके स्पर्श से वायु में तेल की सी सुगन्धि आ रही है। और उधर देखो। हरी पृथ्वी से अलसी की नीलम सी नीली कली ऊपर उठी है।

मटर विविध वर्णों के फूलों के रूप में हँस रही है। और मखमली पेटियों से उसकी फलियाँ बीजों को भीतर छिपाए खड़ी है।

"फिरती हैं ... लड़की तुलसा।"

शब्दार्थ—वृंत्त = फूल के नीचे जो पत्ता होता है उसे वृंत्त कहते हैं। चित्तियाँ = धब्बे। गजी = शकरकन्दी।

भावार्थ—रंग-बिरगी तितलियां रंग-बिरंगे फूलों पर मँडरा रही हैं।

ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं फूल ही हर्षित होकर एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर उड़कर जा रहे हों।

आम की डाली सफेद और सुनहली मंजरियों से लद गई हैं। ढाक और पीपल के पत्ते झर रहे हैं। कोयल मतवाली होकर गीत गा रही है।

कटहल महकने लगे। जामुन की कलियाँ आ गईं। जंगल में झरबेरी भी फूल उठी। आड़ू, नीबू, दाड़िम, आलू, गोभी, बैंगन और मूली सभी फूल उठे।

पीले और मीठे अमरूदों में अब लाल-लाल धब्बे पड़ गए। सुनहले और मीठे बेर पक गए। वृक्ष की डालें अंवली से जड़ गईं।

पालक लहलहा उठी। धनियाँ की सुगन्धि बिखर गई। लौकी और सेमी की फलियां प्रकट हो गईं। कोमल टिमाटर लाल हो गए। और मिरचों की बड़ी हरी थैलियाँ भी दिखाई देने लगीं। शकरकन्द को पाला मार गया। और अरहर के फूल झुलस गए। मालिन की लड़की तुलसा अब दिन भर बन्दर भगाया करती है।

"बालाएँ गजरा   तरबूजों की खेती।"

भावार्थ—कृषक-बालाएँ गजरे बनाती हुई बार-बार हँस पड़ती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो घंटियाँ बार-बार बज रही हैं।

जब खेत लहराते हैं तो उस पर कहीं छाया पड़ती दिखाई देती हैं और कहीं धूप। ईखों के खेतों के ऊपर काँस सी सफेद झण्डियाँ लहरारही हैं।

यौवन के नद में भरी हुई युवतियाँ अरहर के ऊँचे खेतों में आँखमिचौनी खेलती हैं। प्रेमी युवकों के चुम्बन पाकर वह अपनी थकावट दूर करती हैं।

बाग के छोटे-छोटे पेड़ों पर पड़े हुए छप्पर बहुत सुन्दर लगते हैं। गेहूँ की बालों पर मोती के दानों सी ओस की बूँदें पड़ी हैं।

प्रातःकाल इतना घना कुहरा छा जाता है कि उसमें सारा संसार डूब जाता है। कुहरे को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश धरती पर आ गया हो। फिर जब कुहरा हटता है तो खेत, बाग, घर और वन बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं। पहले कुहरा नीचे से साफ होता है फिर ऊपर से। इसलिए पहले खेती आदि का निम्न भाग दिखाई देता है और फिर ऊपर

का, इस प्रकार वे सब वस्तुएँ ऊपर उठती सी दिखाई देती हैं।

गंगा के किनारे की रेत में रेत के साँपों से युक्त तट पर सूर्य की किरणों के पड़ने से अनेक रंग झलकते हैं। रेत की टेढ़ी-मेढ़ी लाइनें ही रेत के साँप हैं। तट पर दूर तक छाई हुई तरबूजों की खेती बहुत सुन्दर लगती है।

"अँगुली की हरता जन मन।"

शब्दार्थ—पीला = पीलक पक्षी जिसका बदन पीला, चोंच लाल और पर काले होते हैं। वनचर = वन में घूमने वाले। धरित्री = धरती। सद्यस्नात= हाल की नहाई हुई। मरकत=पन्ना।

भावार्थ—कुछ बगुले अँगुली की कंघी से अपनी कलंगी ठीक कर रहे हैं। जल में सुर्खाब तैर रहे हैं। मगरौठी किनारे पर सोई रहती है।

सामुद्रिक पक्षी जल में डुबकियाँ लगा रहे हैं। धोबिन अपनी पीली चोंचें धो रही हैं। अबाबील, टिटहरी और बया उड़-उड़कर इच्छानुसार कीचड़, कीड़े और तिनके चुन रहे हैं।

नीले आकाश में पीलो के समूह मँडरा रहे है। कभी उनके पंख काले दिखाई देते हैं, कभी भूरे और कभी सफेद। सूर्य की किरणों के पड़ने से एक ही रंग कई रंगों में उद्भासित हो जाता है।

वृक्षों पर लटके हुए पक्षियों के घोंसलों को वन में घूमते हुए लड़कों ने देखा। उन्होंने पतली टहनियों की शोभा को उजाड़ कर पत्रहीन वृक्षों के समान करदिया। वे बालक पत्थर मार-मार कर उन घोंसलों को गिराने लगे, जिससे पतली टहनियों के पत्ते झड़ गए।

शिशिर की वायु भँवर के समान चलती है जिसमें पड़कर पत्ते आँगन में उड़ने लगते हैं। जब आकाश के हल्के बादल दूर हो जाते हैं तो सुन्दर ऋतु को धारण करने वाली धरती सद्यस्नात सी दिखाई लगती है। इन पंक्तियों में समासोक्ति द्वारा ऋतुमती सद्यस्नाता नायिका की ओर भी संकेत है।

हरे-हरे वृक्ष-पौदे शरद्काल की धूप में सुखी होकर आलस में आकर सोए से प्रतीत होते हैं। वे उसी प्रकार स्वप्नों में खोए दिखाई देते हैं जिस प्रकार ओस भरी रात में तारे स्वप्न में खो जाते हैं।

सारा गाँव पन्ने के खुले हुए डिब्बे के समान है। जिस पर आकाश रूपी नीलम का ढक्कन है। शरद् काल के अन्त में वह अपनी शान्त, सुखद अनन्य शोभा से मनुष्यों के मन को हर लेता है।

विशेष—गाँव के एक रूप का उद्घाटन 'ग्राम चित्र' में और दूसरे चित्र का स्फुरण 'ग्राम-श्री' में हुआ है।

४८—गंगा

"अब आधा जल ... जीवित।"

शब्दार्थ—विश्रुत = प्रसिद्ध। निर्गत = निकली हुई। प्रथित = प्रसिद्ध, विशाल।

भावार्थ—संध्या के समय गंगा का वर्णन है।

गङ्गा का आधा जल शान्त और पीला है और आधा भाग तरङ्गित और नीला है। उसके शरीर पर संध्या का प्रकाश ढीले रेशमी वस्त्र के समान सिमटा हुआ है। गीले वदन पर वस्त्र सिमट जाता है और उसमें से शरीर झलकता है। उसी प्रकार गङ्गा के एक भाग में ही प्रकाश है, और उसमें से भी गङ्गा की उज्ज्वलता विकीर्ण हो रही है।

गङ्गा में प्रातःकाल और संध्या काल की सुनहली आभा पड़ती है, फिर विलीन हो जाती है। गङ्गा में रात की चाँदनी और दिन का प्रखर-प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है और फिर लय हो जाता है। यह कौन जान सकता है कि गङ्गा इनको—चेतना के युग रूपी क्षणों को—कहाँ बहाकर ले जाती है। कई युग क्षणों के समान बीत गए, किन्तु गंगा समान गति से बहती जा रही है।

यह विशाल हिमालय पहाड़ से निकली है। किरणों से प्रकाशित चंचल लहरें इसमें उठा करती हैं। यमुना गोमती आदि अन्य नदियों से मिलकर यह सागर में मिलकर सागर बन जाती है।

प्रसिद्ध एवं विशाल नगरों को अपने किनारों पर संभाले हुए यह भौगोलिक गङ्गा प्रसिद्ध है। किन्तु यह जड़ है। इससे मिली हुई एक अन्य जन-चेतना की भी गंगा है।

"वह विष्णु पदी ... अङ्कित।"

शब्दार्थ—स्रुता=बही हुई। कंचुक = केंचुली। सैकत=रेत।

भावार्थ—वह चेतना की गङ्गा विष्णु के पाँवों से निकली है, शिव के मस्तक से बही है, वह भीष्म को जन्म देने वाली है, वह महर्षि जाह्नव की पुत्री है, वह देव गङ्गा है वह स्वर्ग की गंगा है, वह सगर के पुत्रों का उद्धार करने वाली प्रसिद्ध गंगा है।

वह गंगा ही वास्तविक गंगा है, यह भौगोलिक गंगा तो उसकी छाया मात्र है। वह जन-चेतना की प्रतीक है और यह केवल भासित होने वाली गङ्गा है। वह आत्मा का उद्धार करने वाली ज्ञान-ज्योति की नदी है। यह मिट्टी में गिरी हुई उसकी केंचुली के समान है।

यह गंगा तो पर्वत से निकली हैं किन्तु वह दिव्य गंगा मानव-हृदय से फूटी है। उसमें बुलबुलों के समान अनेक युग विलीन हो चुके हैं। वह आज संसार के रेतीले जड़ किनारों को स्निग्ध करने के लिए फिर से उद्बुध हो उठी है।

मानव मात्र की इच्छा-आकांक्षाओं को समाहित कर वह गंगा अपार-सागर बन चुकी है। वह दसों दिशाओं रूपी किनारों में नवीन जीवन का राग छेड़ देगी।

अब आकाश पर चन्द्रलेखा उदित हो गई है। गंगा का नीला जल उर्मिल हो रहा है। उसकी लहरों पर चांद की सफेद किरणें कुछ लिख रही हैं।

विशेप—प्रस्तुत कविता कवि के मानसिक विकास के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्व पूर्ण है। (देखिए भूमिका) एक भौतिक गंगा है और दूसरी चेतना की गंगा।

४९—१९४०

"समर भूमि पर करती नर्तन।"

शब्दार्थ—शोणित=रक्त। रंजित=रंगे हुए। दुर्धर=अजेय। वह्नि=आग। सत्व-लुब्ध=सत्ता के लोभ में पड़े हुए।

भावार्थ—मनुष्य के रक्त से रंगे चरणों को युद्ध भूमि पर रखते हुए, भयंकर तोपों की गर्जन से सम्मानित होकर, कम्पन और स्पन्दन के वाहन पर बैठ

कर, विमान रूपी विशाल पंखों से निरन्तर विष की ज्वाला बरसाता हुआ यह अजेय नव-वर्ष एक प्रचण्ड सम्राट के समान आ रहा है।

एक ओर तो ब्रिटिश आदि साम्राज्य वादी शक्तियाँ युद्ध की पूर्ण तैयारी करके डटी हुई हैं। उधर प्रतिक्रिया के रूप में उभरी हुई क्षुब्ध शक्तियाँ-हिटलर आदि युद्ध के लिए आमन्त्रित कर रही हैं। सभी राष्ट्र सत्य और न्याय की खाल ओढ़े, सत्ता को अधिगत करने के लोभ में लड़ रहे हैं। सभी कहते हैं कि हम सत्य की रक्षा के लिए और न्याय के प्रसार के लिए लड़ रहे हैं। किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। सभी देश अधिक से अधिक सागरों पर अधिकार करना चाहते हैं क्योंकि इससे उनके व्यापार में उन्नति होगी। सागर की तरंगों पर उन राष्ट्रों की यही क्रूर स्पर्धा नाच रही है।

"धू-धू करती उत्तर यौवन।"

शब्दार्थ—बाष्प-शक्ति=भाप की शक्ति, रेल आदि। विस्फोटक=बम। तुमुल=घोर। वत्सर=वर्ष। दुर्धर्ष=अजेय।

भावार्थ—रेलें धू-धू करती हुई सेनाएँ तथा सैनिक सामान इधर-उधर ले जा रही हैं। बिजली की ध्वनि दिशाओं को चूर-चूर किए दे रही है। अस्त्र शस्त्र तैयार करने के बिजली के अनेक कारखाने भयंकर गर्जन कर रहे हैं। बम गिर-गिरकर सामंतवादी सभ्यता के खण्डहरों को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। जनता का ऐश्वर्य शाली भविष्य घोर वर्ग-संघर्ष में छिपा हुआ है। जिस प्रकार प्रलयंकर मेघों पर फूल सा इन्द्रधनुष प्रकट होकर भविष्य के कल्याण को प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार प्रलयंकर युद्ध से घिरे हुए संसार में नया वर्ष इन्द्रधनुष से पुल के समान सुशोभित है। नवीन वर्ष शान्त और सुखद भविष्य का संकेत करता है।

कवि कहता है हे अजेय वर्ष तुम आओ और विनाश के साथ-साथ नव-निर्माण भी लाओ। तुम बीसवीं सदी का अपार-ज्ञान और विज्ञान लेकर, अलौकिक शक्ति और सौंदर्य लेकर आओ।

५०–वाणी

"तुम वहन निःशब्द द्वार।"

शब्दार्थ—भव-कर्म = संसार की दशा, मनुष्य-जीवन। अब्द=वर्ष।

भावार्थ—कवि वाणी से सम्बोधन करके कहता है कि मैं यही चाहता हूँ कि तुम मेरे विचारों को जनता के हृदय तक पहुंचा सको। अब तुम्हें अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं है।

आज मानव संसार विषमताओं से आक्रान्त है। संसार का नव निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक जनता में एकता की भावना न हो। एकता के अभाव के कारण ही संसार का वातावरण दुःख से लदा हुआ है और कोई प्रगति भी नहीं हो रही है।

तुम अलङ्कार से अलग रह कर शब्द रूपी पंखों को मार कर जनता के मन रूपी आकाश के भीतर दूर तक उड़ान भर सको। तुम्हें अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं।

आज संसार विवेक हीन है। उसमें फिर से नवोत्साह का गीत संचरण करने लगे। मनुष्यों की कुण्ठित बुद्धि में नवीन स्थितियों के अनुरूप ही गुण प्रसार करें। तुम जड़ और चेतन के बन्धन से ऊपर उठकर भविष्य की अवस्था को मूर्तिमान कर दो। अब तुम्हें अलंकारों की कोई आवश्यकता न रहेगी।

आने वाले वर्षों में युग की दशा, विधान और उसके सत्य को शब्दों में चित्रित करके और जनता के हृदय में अन्धकार को प्रकाश की किरणों में समेट कर तुम मानव की जड़-चेतना के द्वारा खोल सको। तुम्हें किसी भी अलङ्कार की आवश्यकता नहीं है।

विशेष—कवि प्रथम कविता में "भाव" नहीं "विचार" कहता है। उसमें बौद्धिकता की प्रधानता हो गई है। अलङ्कारों की उपेक्षा और प्रगति का मोह दोनों प्रदर्शित हैं।